

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180756

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83.1/C 55V Accession No. G.H. 718

Author चौहान, सुभद्राकुमारी

Title विवेचनात्मक गल्प विहार 1945

This book should be returned on or before the date
last marked below.

विवेचनात्मक गल्प-विहार

संकलनकर्त्री

सुभद्राकुमारो चौहान

भूमिका-लेखक

रामानुजलाल श्रोवास्तव

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९४५

विषय	पृष्ठ
भूमिका—श्रीरामानुजलाल श्रीवास्तव	४७
१—दो बेलों की कथा—श्री प्रेमचन्द	१
२—दिल जागता है—श्री सुदर्शन	१७
३—ताई—श्री विद्वत्भरनाथ शर्मा 'कौशिक'	३४
४—पुरस्कार—श्री जयशंकर 'प्रसाद'	४७
५—बुढ़ू का कांटा—श्री चंद्रधर शर्मा गुलेरी	६१
६—दुखवा में कासे कहूँ मेरी सजनी—श्री चतुरसेन शास्त्री	९१
७—एक घण्टा—श्री पद्मलाल पुत्रालाल वस्त्री	१०३
८—गंगा, गंगदत्त, गांगी—श्री पाण्डेय बंजन शर्मा 'उग्र'	१०७
९—श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'	१०९
१०—कोटर या कुटीर—श्री सियारामशरण गुप्त	१३४
११—शरणागत—श्री वृन्दावनलाल वर्मा	१४२
१२—गं० बिलवासी मिश्र—श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा ..	१५१
१३—अपराध—श्री विनोदशंकर व्यास	१५५
१४—एक दिन—श्री जैनन्दकुमार	१६३
१५—शत्रु—श्री सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन 'अज्ञेय' ..	१६८
१६—खिटावन का नरक—श्री भगवतीचरण वर्मा	१७२
१७—गँड़ेरी—श्री यशपाल	१७७
१८—अनीत के चल-चित्र—श्रीमती महादेवी वर्मा	१८४
१९—तीन बच्चे—मुभद्राकुमारी चौहान	१९३

भूमिका

‘छोटी कहानियों’ की लम्बी भूमिका लिखना कुछ बेमेल-सा तो है, परन्तु जिन कारणों से ऐसा करने के लिए विवश होना पड़ा है, आशा है वे युक्तियुक्त समझे जावेंगे।

यदि परिभाषा लिखकर ही ‘कहानी’ का अंतरंग समझाया जा सकता, तो बहुत खोज-ढूँढ़ के बाद वह परिभाषा, जो अपने घर ही में मिल गई है, इस कार्य को अत्यंत संक्षिप्त कर देती। वह यह है—

‘सुनता हूँ बड़े गौर से हस्ती का फिसाना।

कुछ स्वाब है, कुछ अस्ल है, कुछ तर्ज-बर्बा है॥’

कहानी है, जीवन की कहानी है, कुछ कल्पना है (Romanticism) कुछ वास्तविकता है। (Realism) और कुछ है कहने का तरीका। (Expressionism)।

परन्तु परिभाषा जान लेना, लक्षण, नियम जान लेना, उदाहरण पढ़ लेना कहानी का मर्म समझने के लिए पर्याप्त नहीं है। कवि लिखता है, छन्दों का प्रयोग करता है, लक्षण, नियमों का पालन करता है। छन्दों, लक्षणों और नियमों का ज्ञान प्राप्त कर लेना कविता को समझने में; यदि परिश्रम और प्रतिभा है तो स्वयं कवि बनने में; सहायता पहुँचायेगा। परन्तु छन्द, लक्षण, नियम और उदाहरण के परे भी एक वस्तु है—कवि। उसे समझने के लिए उसके अंतरंग को समझना पड़ेगा, उसके हृदय के प्रवाह को समझना पड़ेगा, उसकी हँसाने या रुलाने की चेष्टा को समझना पड़ेगा।

यह युक्ति संगीत में और भी अधिक स्पष्ट है। स्वर-ताल के परे गीत की लय सुलाना चाहती है या जगाना, यही संगीतज्ञ की पकड़ है।

हिन्दी में अब विवेचना की प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो गई है कि वह कहानी के सम्बन्ध में केवल ‘वस्तु’, ‘पात्र’, ‘कथोपकथन’ आदि के ज्ञान

से संतुष्ट नहीं रह सकती। इन सबका ज्ञान कहानी लिखने और पढ़ने के लिए उत्तम ही नहीं—अनिवार्य भी माना जा सकता है। अन्य उन्नत देशों की तरह कहानी लिखने की विधियों पर हिन्दी में भी पूर्ण और स्वतंत्र ग्रंथ तैयार हो सकें, तो वे निश्चय उपयोगी सिद्ध होंगे। परन्तु विधि और पद्धति के परे, कहानी-लेखकों की विचार-धारा क्या है, कहानियों का प्रवाह किन-किन दिशाओं की ओर है, कहानी का सर्वांगीण रूप क्या है,—हिन्दी इन प्रश्नों का उत्तर चाहती है। इन्हीं प्रश्नों को सम्मुख रख श्रीमती सुभद्राकुमारी जी ने यह संकलन तैयार किया है।

मैं यह आरम्भ में ही मान लेता हूँ कि जिस प्रकार कविता के क्षेत्र में, अनेक आचार्यों-द्वारा विचार-प्रवाह का सर्वांगीण रूप का शास्त्रोक्त विवेचन हो चुका है, उस प्रकार कहानियों के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक और स्वतंत्र गवेषणा, सर्वांगीण इतिहास प्रस्तुत कर देना, मेरी सामर्थ्य के बाहर है। श्रीमती सुभद्राकुमारी जी ने यह कार्य मुझे केवल इसलिए सौंपा है कि कहानियों के संकलन के लम्बे अवसर में, विचार-विनिमय के लिए, उन्हें किसी सुयोग्य साहित्यिक का सहयोग प्राप्त नहीं हो सका—मेरी अकुशाग्र सहायता से ही उन्हें संतोष करना पड़ा। मैंने इस कार्य को इस आशा से स्वीकृत कर लिया है कि कहानियों के विचार-प्रवाह की वैज्ञानिक विवेचना के इस दुर्बल प्रयास को, आगे चलकर, हिन्दी के समर्थ आलोचक और विद्वान् उतना ही पुष्ट और परिष्कृत कर देंगे, जितना कि काव्य-विभाग हो चुका है।

इस भूमिका में मैंने, आवश्यकतानुसार, आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की विवेचना-प्रणाली का अनुकरण किया है। उनका पारिभाषिक शब्द भी अपनाये हैं।

भारत-वेद-उपनिषदकाल

संसार एक ओर तो पाँच तत्वों का और दूसरी ओर 'कौन ? कहाँ ? कैसे ? क्यों ?' आदि प्रश्नों का बना है। न ये पाँच तत्व

अपने विभिन्न रूपों का प्रदर्शन करने से बाज आते हैं और न मनुष्य कौन, कहाँ, कैसे और क्यों से ।

ये प्रश्न एक मनुष्य-द्वारा दूसरे मनुष्य को दी गई चुनौती है । संपत्ति-शास्त्र के अनुसार माँग है । 'डिमांड' है । हमारे लिए उक्त शास्त्र ने यह गुत्थी सुलभा दी है कि जब माँग होगी तब पूर्ति, 'सप्लाई' भी अवश्य ही होगी ।

प्रथम परिचय प्राप्त होते ही मनुष्य ने पूछा—'यह पानी क्या है, हवा क्या है, आग क्या है' आदि ।

उस समय संसार का जन्म ही हुआ था । वह मूरदास का 'बाल-गोपाल' या वर्द्धसवर्थ का वह शिशु था जिसका अस्तित्व स्वर्ग के समीप है । वह स्वर्ग, भगवान्, देवता के पद (टर्म्स) में ही सोचता था । तत्कालीन विद्वानों ने उत्तर दिया—'ये सब देवता हैं और इनके ऊपर भगवान् हैं ।'

मनुष्य ने पूछा—'इतका हम करें क्या ?'

उत्तर—'इनकी प्रार्थना करो, स्तुति करो ।'

प्रश्न—'कैसे ?'

इस माँग को पूरी करने के लिए मंत्र बनाये गये—जल्द याद हो जायँ, या जल्द भूल न जायँ—इसलिए छन्दोबद्ध । और यहीं से साहित्य का श्रीगणेश हुआ—इसी भारत में—संसार के आदि ग्रन्थ, वेदों से ।

मनुष्य ने मंत्र-धर्म की यह संपत्ति सहेजना शुरू किया । यह मनुष्य का स्वभाव है कि जो कुछ प्राप्त करता है, तुरंत उसे सहेजना आरम्भ कर देता है—खो न जाय, इधर-उधर न हो जाय । रूप, रंग, गुण के अनुसार अलग-अलग नाम, जाति आदि का विभाजन होने लगा और यहीं से साहित्यिक समीक्षा प्रारम्भ हुई ।

यदि मनुष्य का क्या और कैसे एक जाता तो हम सब आराम से मंत्र पढ़-पढ़कर जिन्दगी काट देते और आज न गेहूँ का कष्ट होता न

पेट्रोल का। मनुष्य—जिज्ञासु प्राणी, अधीर प्राणी—देवताओं के भाव-मूलक अस्तित्व से उत्र उठा। मंत्र पढ़ते-पढ़ते वह थक गया पर इन देवताओं के दर्शन न हुए। वह आकार के लिए व्याकुल हो उठा। मंत्रों पर मे उमकी आस्था उठने लगी। एक बड़ी भारी माँग उपस्थित हो गई। तब विद्वानों ने भाल्लाकर कहा—‘तुमने नहीं देखा तो हम क्या करें? हमने तो देखा है—लो सुनो!’

और उपनिषदों में ब्रह्म से परिव्याप्त जगत् का संलोप रूप से मनो-रंजक चित्रण कर, उन विद्वानों ने कथा का बीज रूप उपस्थित कर दिया।

इस प्रकार कथा, आदि रूप में, भावमूलक को वस्तुमूलक, निराकार को साकार और कठिन को सरल करने के लिए अवतीर्ण हुई।

यह इतिहास के पाँच से दस सहस्र वर्ष पहले की बात है। गणना में दो-चार हजार वर्षों की गलती भी हो सकती है। इस काल के पहलू भी हिंसक पशुओं से रक्षा करने की विधियों पर कथायें प्रचलित थी, परन्तु प्रस्तुत विवेचना में उनका समावेश निष्फल है।

पाश्चात्य विद्वानों ने इस काल को श्रुति (मिथिकल) काल कहा है। जान ड्रिकवाटर लिखते हैं:—

*ग्राम-गीत और कथाओं का समस्त संसार में जो मिलता-जुलता रूप दृष्टिगोचर होता है, उसमें बढ़कर अनुरंजन का विषय और क्या हो सकता है? इन गीतों और कथाओं में पूर्व और पश्चिम एक-दूसरे के समीप देख पड़ते हैं। इस समानता को लेकर अनेक सिद्धान्त स्थिर किये गये हैं। एक सिद्धान्त यह है कि समानता केवल संयोग की बात है। इतनी बड़ी बात को संयोग-मात्र मान लेना हास्यास्पद है। दूसरा सिद्धान्त यह है कि भारतीय, ईरानी, यूनानी, रूमी आदि सभी आर्य वंश, सभी का आदि साहित्य एक था—जब वे अलग-अलग देशों को गये, तब अपना गीत और कथाओं का साहित्य भी साथ लेते गये।

यह सिद्धान्त अधिक प्रामाणिक जान पड़ता है परन्तु विचित्रता तो यह है कि अनार्य चीनी और रेड इंडियनों के बीच भी इसी प्रकार के गीतों और कथाओं का चलन है। कदाचित् सबसे अधिक समाधान इस निष्कर्ष से प्राप्त होगा कि इन गीतों और कथाओं का विषय मनुष्य-मात्र की स्वाभाविक संपत्ति, जन्म-सिद्ध संपत्ति है। आरम्भ में मनुष्य का इन पदों में सोचना अनिवार्य था।'

पहले तो आदि-युग को श्रुति-काल मानने में हमें घोर आपत्ति है। पाश्चात्य विद्वान् दो कारणों से इसे श्रुति-काल कहते हैं। पहला यह कि उनका इतिहास उस काल का साक्षी नहीं है। यह उनके इतिहास की गलती है काल की नहीं। दूसरा यह कि अधिकतर घटनाएँ असम्भव-सी प्रतीत होती हैं। साहित्य घटनाओं के सम्भाव्य पर अवलम्बित नहीं होता—वह कल्पना के सौंदर्य और प्रभाव की सजीवता पर निर्भर है। साहित्यिक दृष्टि से वह उर्वशी जो युग-युग से कवियों की कल्पना को आन्दोलित करती आ रही है, असत्य नहीं कही जा सकती। स्वयं जॉन ड्रिक्वाटर ने इस बात को माना है कि इस काल के गीतों और कथाओं ने न केवल होमर वरन्, भ्राउनिंग, टेनीसन, वाइरन, शेर्ली आदि कवियों की रचना-सामग्री दी है तथा बड़े से बड़े चित्रकार की कूची से भी उन गीतों और कथाओं के पात्रों का सौंदर्य फूट पड़ा है।*

हमारा विश्वास है कि आदि काल में आर्यों ने केवल सत्य की कल्पना ही नहीं की थी वरन् उस पर मन, वचन और कर्म में विश्वास भी किया था। उनका विश्वास विशुद्ध श्रद्धा की धारा में प्रवाहित होता था। उनके मंत्र-गीत या कथाएँ श्रद्धा की ओर गतिशील थीं। श्रद्धा के अंतर्गत आगे चलकर, साहित्य ने जिम भक्ति और प्रेम का आविष्कार और विभाजन किया है, वह भी उस समय आवश्यक नहीं था। इस प्रकार

* आउट लाइन ऑफ लिटरेचर पृष्ठ, ३१

कथाओं का आदि युग मनुष्य को श्रद्धा के द्वारा विश्वास की ओर पहुँचने का मार्ग सरल और स्पष्ट करता था।

आदि-युग आर्यों का युग था। श्रद्धा की आदि भावना आर्यों द्वारा प्रतिपादित की गई थी। इस स्थल पर ड्रिकवाटर साहब की यह दलील उद्धित होती है कि आर्यों का आदि-निवास एक ही था। लोकमान्य तिलक 'आर्कटिक' या उत्तर ध्रुव के आस पास आर्यों का आदि-निवास मानते हैं। पाश्चात्य विद्वान् मध्य एशिया, अर्थात् काश्मीर के उत्तर गिलजिट प्रांत के आस पास आर्यों का आदि-निवास मानते हैं। आधुनिक अनुसंधानकर्त्ता (Researchscholars), विशेषकर भारतीय विद्वान्, विशेषकर मोहेंजोदारो या (और) तक्षशिला के समर्थक भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत को आर्यों की आदि-भूमि मानते हैं। श्री० बाबू सम्पूर्णानन्द जी ने अपनी पुस्तक 'आर्यों के आदि-देश' में पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रांत के आस पास आर्यों का आदि-निवास माना है।

हम दलील के लिए ये सभी अनुसंधान स्वीकृत कर लेते हैं। आर्यों का आदि-निवास उत्तर-ध्रुव, मध्य एशिया या पश्चिमोत्तर प्रदेश कुल भी रहा हो, यह निर्विवाद सत्य है कि कथा-आख्यान की आदि-कल्पना आर्यों की थी। हम यह भी मान लेते हैं कि यूनानी आदि आर्यों के वंशज (Common stock) थे और वे ये कल्पनायें पश्चिम संसार में ले गये। पर हम यह नहीं मान सकते कि ये कल्पनायें मनुष्य की स्वाभाविक विचार-धारा थीं क्योंकि यूनान के पड़ोसी रूम ने यह स्वीकृत किया है कि उसे ये भावनायें यूनानियों से ही नहीं, वरन् मध्य-पूर्व से भी मिली थी।

भारत-रामायण-महाभारत-पुराण-काल

वेद-उपनिषद्-काल तथा इतिहास-काल (जो बुद्ध से आरम्भ होता है) के बीच में संस्कृत-साहित्य ने कला की सभी दिशाओं में पूर्णोन्नति कर ली थी, यद्यपि इन अंगों और उपांगों का दिग्दर्शन काव्य की परिधि में ही होता था।

मनुष्य की माँगेँ बढ़ती जाती थीं। उसी अनुपात में माँगेँ की पूर्ति हो रही थी। आदि आर्य, देवताओं और उनके परे ब्रह्म की पूजा करते थे। ये ही उनके पूर्व-पुरुष और आदि-पुरुष थे। इस बीच में वेद उपनिषद्कार अनेक महात्मा हुए। जनता ने इन्हें भी पूर्व-पुरुष मानकर इनकी पूजा की। इसी काल में राम, कृष्ण आदि महापुरुष भी हुए जो शीघ्र ही पूर्व-पुरुष के रूप में पूज्य हो गये इस प्रकार मंत्र-धर्म के पश्चात् वह हिन्दू-धर्म, सनानन धर्म स्थापित हुआ जिसकी नींव पूर्व-पुरुषों की पूजा है। धर्म के साथ ही साथ उच्चकोटि का साहित्य भी खड़ा हो गया—रामायण, महाभारत और पुराण।

अन्य गुणों के अतिरिक्त इन ग्रन्थों में महाकाव्य, कथा (आधुनिक उपन्यास) और आख्यान (आधुनिक कहानी) के गुण वर्तमान हैं। श्रीमद्वाल्मीकि रामायण में धारावाहिक कथा-प्रवाह के साथ ही साथ, विषय को स्पष्ट करने के लिए, जगह-जगह आख्यान मिलते हैं, जैसे, ऋष्यशृंग का आख्यान, गंगा और पार्वती का आख्यान, अहल्या का आख्यान, बालि और सुग्रीव का आख्यान आदि। इसी प्रकार या तो विषय के क्रम को पूरा करने के लिए, या महापुरुषों के विशिष्ट गुणों को चित्रित करने के लिए या किसी क्लिष्ट सिद्धान्त को समझाने के लिए महाभारत तथा पुराणों में भी आख्यान और दृष्टान्त भरे पड़े हैं।

इस प्रकार कहानियों की प्रथा प्रचलित हो गई। अब उनका प्रवाह भक्ति और प्रेम की ओर चल पड़ा। उस समय छोटी पुस्तक लिखना विद्वत्ता के प्रतिकूल समझा जाता था। इसलिए छोटी कहानियों का अलग-अलग लिखा जाना किसी प्रकार संभव नहीं था। परन्तु पुस्तकों के अंतर्गत जो आख्यान समवेष्टित थे, वे घर-घर प्रचलित हो गये और इतने रोचक सिद्ध हुए कि यूनान और रूम तक अपनी छटा दिखाने लगे।*

* आउट लाइन ऑफ़ लिटरेचर, पृष्ठ ३०

जॉन ड्रिकवाटर लिखते हैं कि यूनानी 'श्रुति-युग' की 'व्यूपिड और साइक' की कहानी भारतीय रति और कामदेव की कहानी से एकदम मिलती-जुलती है तथा स्केण्डेनेविया की तत्कालीन कहानी 'फ्रेजा और ओड्डर' पुनरवा और उर्वशी के एकदम समान है।

यह समानता संयोग-मात्र नहीं है। रति और कामदेव आर्यों की उद्दाम कल्पना के प्रतीक हैं। उर्वशी-सम्बन्धी साहित्य तो इस युग में भी महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समान प्रतिभाशाली कलाकार को स्फूर्ति प्रदान करता रहा है। तब ड्रिकवाटर साहब की यह दलील मान लेना कि ये कल्पनायें, ये पात्र और आख्यानों का सुविस्तृत कथानक (details) युग-युग और देश-देश में मनुष्य-मात्र की जन्म-सिद्ध संपत्ति रही है—उतना ही हास्यास्पद है जितना आख्यानों की समानता को संयोग-मात्र मान लेना।

यह बात सर्वमान्य है कि स्केण्डेनेविया में आज तक ऐसी भाषा बोली जाती है, जिसकी समानता अन्य किसी भाषा से उतनी नहीं है जितनी संस्कृत से। स्वामी दयानन्द ने स्वयं स्केण्डेनेविया को 'स्कन्दनाभ' का बिगड़ा हुआ रूप माना है। ड्रिकवाटर साहब भी आगे लिखते हैं*—

‘जान हमें पूर्व से ही मिलता है।’ इन प्रमाणों से जो निष्कर्ष निकलता है वह यह है कि रति और उर्वशी की कल्पना और कथाएँ दूसरे देशों के मस्तिष्क की स्वाभाविक उपज नहीं थी, वरन् भारत से शिक्षा के रूप में प्राप्त संपत्तियाँ थीं।

ड्रिकवाटर साहब की स्वाभाविक भावनावाली दलील केवल उसी हद तक मान्य है कि सब देशों और सब जातियों के मनुष्य आदि काल में सूर्य को देवता मानते, फिर चाहे वे चीनी हों या रेड इंडियन। संयोग-वाली दलील, जिसे ड्रिकवाटर साहब ने हास्यास्पद कहा है, इस हद

* आउट लाइन ऑफ़ लिटरेचर, पृष्ठ १३२।

तक मान्य है कि आदि काल में लोग मूर्ख को केवल देवता ही न मानते पर यह भी विश्वास करते कि वह देवता रथ पर बैठकर परिक्रमा करता है।

रामायण-महाभारत-पुराणकाल कथा-आख्यानों का स्वर्णयुग था। उनका सामूहिक प्रवाह भक्ति और प्रेम की ओर था, यद्यपि साहित्यिक रस-विभाजन के सब उदाहरण उनमें मिलने थे। साहित्य का यह उज्ज्वल विकास धर्म के आश्रय में हुआ था।

भारत-बुद्ध-काल

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि आख्यानों का उद्देश्य क्रम को समझाना और सिद्धान्तों को समझाना था। बुद्ध-काल में, जहाँ से इतिहास आरम्भ हो जाता है, यह उद्देश्य पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है। गौतमबुद्ध ने अपने उपदेशों के अंतर्गत, सिद्धान्तों को जनसाधारण को समझाने के लिए जिन दृष्टान्तों का उपयोग किया है, वे 'जातक' के रूप में वर्तमान हैं। यह प्रश्न कि कहानी जितनी बड़ी हो हिन्दी के आधुनिक कहानी-संग्रहों में विचाराधीन है। 'जातक' यह उत्तर देने है कि कहानी इतनी छोटी भी हो सकती है। इन दृष्टान्तों (फ़ेबल्स और पैरोबल्स) से कहानी-कला के नवीन विकास का पता चलता है। पाश्चात्य देशों पर इनका बहुत गहरा असर पड़ा है। बाइबिल के पैराबल्स और जातक कथाओं में उसी प्रकार की समानता है जैसे ऊपर रति और कामदेव तथा 'वापिड और साइक' की बतलाई गई है। ईसप की कहानियाँ तो लगभग जातक का अनुवाद ही हैं। इनके अतिरिक्त इटली और फ्रांस में भी फ़ेबल्स और पैरोबल्स का ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा।

सी० एच० कोनरेड राइट अपनी पुस्तक—ए हिस्ट्री ऑफ़ फ्रेंच लिटरेचर में लिखते हैं:—

‘ईसप की कहानियों का इटालियन, फ्रेंच और अंगरेज़ी में अनुवाद हुआ।’ (पृष्ठ ६१)

‘चौदहवीं सदी में इन कहानियों की संख्या बढ़कर लगभग पचास हजार हो गई।’ (पृष्ठ ६७)

‘इटालियन कहानी लेखक बोकेशियो तथा प्रथम अंगरेज कवि चासर की कुछ सर्वप्रसिद्ध रचनायें इन्हीं प्रचलित कहानियों पर निर्भर हैं।’ (पृष्ठ ७०)

पिछले कुछ हजार वर्षों में उपासना के आकार का इतना अतिक्रमण हो गया था कि जनता स्वयं खोई-खोई-सी फिरती थी, अतएव जनता ने मुधार (Reformation) की मांग की। गौतमबुद्ध ने जनता को साकार से निराकार की ओर खींचा। भक्ति और प्रेम की भावना में जिस हिन्दू-धर्म का विकास हुआ था, उससे बौद्ध-धर्म विभिन्न था। बौद्ध-धर्म में नीति और सदाचार की भावना सर्वोपरि थी। जातक के दृष्टान्त नीति के मार्ग को स्पष्ट करते हैं।

इसके बाद ही, गुप्त-काल में, नीति-सम्बन्धी वे दो कहानी-पुस्तकें लिखी गईं, जिनमें आधुनिक कहानी का सम्पूर्ण रूप देखने को मिलता है—हितोपदेश और पंचतंत्र। ‘दि बेस्ट शार्ट स्टोरीज़ ऑफ़ दि वर्ल्ड’ (संसार की सर्वप्रसिद्ध कहानियाँ) पुस्तक हितोपदेश की कहानियों के उद्धरण से प्रारम्भ होती है।

ऊपर कई बार कहा गया है कि कहानियों का मुख्य उद्देश्य जन-साधारण को धर्म और नीति के सिद्धान्त समझना था। आख्यान या कहानियाँ जनता की वस्तुएँ थीं। बौद्ध-धर्म के प्रचार-काल में जनता ने इन कहानियों-द्वारा हिन्दू-संस्कृति को कितने अंश तक सुरक्षित रक्खा इसका ठीक-ठीक अनुमान कर लेना तो कठिन है, पर इसमें संदेह नहीं कि घर घर प्रचलित कहानियों ने हिन्दू-धर्म, सभ्यता और संस्कृति को न केवल बौद्ध वरन् इस्लाम और ईसाई धर्मों के आक्रमणों से अपनी रक्षा करने में बहुत बड़ी सहायता पहुँचाई है। तत्वों और सिद्धान्तों को साकार बनानेवाली कहानियाँ जनता की चीजें थीं। उसने उन्हें खूब सँभालकर रक्खा और उनसे पूरा-पूरा लाभ उठाया।

जातक में अनेक कहानियाँ भूत-प्रेतों के सम्बन्ध में भी हैं। बौद्ध-धर्म तिब्बत, चीन और जापान में नीति-धर्म नहीं बरन् पूजा-पाठ, शंख-घड़ियालवाला कर्मकाण्डी धर्म बन गया है। भारत में तो दो-तीन सौ वर्ष के भीतर ही वह तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत की ओर झुक गया।

बुद्ध-काल के इस पतन का जो प्रभाव जनता की रुचि पर पड़ा, उसका पता तत्कालीन 'कथा-सारितसागर' कहानी-ग्रन्थ से चलता है। यह पुस्तक आगे आनेवाले सुदीर्घकाल तक विस्तृत (Romantic period) स्वच्छन्दतावाद काल की द्योतक है। इसमें स्त्री-स्वभाव की दुर्बलताओं के सम्बन्ध में अनेक कुरुचिपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं। इसमें भूत-प्रेत-पिशाचों का भी काफ़ी उल्लेख है। कथा-आख्यानो का प्रवाह श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, विश्वास आदि का मार्ग छोड़कर, इस पुस्तक में सर्वप्रथम कौतूहल और सांसारिक-प्रेम की ओर बहा है।

इस दुर्दशा के अवसर पर जनता ने फिर सुधार (Reformation) की माँग की और शंकराचार्य, रामानुजाचार्य आदि दार्शनिकों ने फिर से सनातन-धर्म का तात्त्विक विवेचन किया और समस्त देश में उसका पुनरुद्धार किया। इस प्रकार जनता की वेद-पुराणकालीन कथा-संपत्ति फिर जीवित हो उठी और सन् १००० ई० तक धार्मिक और सामाजिक प्रेरणाओं को प्रभावित करती रही।

अरब और ईरान

जो देश अब तक भारत से शिक्षा प्राप्त करने आते थे, अब वे स्वयं शिक्षक बनने की आकांक्षा करने लगे। भारत की अनेक देवी-देवताओं की कल्पना जिसे हम आज-कल मध्य-पूर्व कहते हैं, और जो लगभग भारत की ही राजनीतिक सीमा में था, उसमें पहुँच ही नहीं चुकी थी, बरन् पुरानी होती जा रही थी। देवी-देवताओं के अतिक्रमण से उन देशों में भी असंतोष फैल रहा था। सुधार की माँग हो रही थी। गौतमबुद्ध के बाद ईसामसीह ने समीप-पूर्व (मिडल ईस्ट) के देवी

देवताओं को समाप्त कर दिया। इनमें यूनान की सबसे अधिक शक्ति हुई क्योंकि उसने करीब-करीब भारत के टक्कर के देवी-देवता बना लिये थे। यूनान से रूम बहुत प्रभावित हुआ था। कदाचित् इसी लिए प्रतिक्रिया के रूप में वह ईसाई धर्म का प्रधान केन्द्र बन बैठा। कहानी के क्षेत्र में इस तबदीली का यही असर हुआ कि यूनान और रूम में क्यूपिड और साइक के आख्यान के बदले फ़ेबल्स और पैरोबल्स फैल गये।

परन्तु यद्यपि इतिहास में ईसाई-धर्म इस्लाम से पुराना है, तथापि भारत पर, इस्लाम का प्रभाव ईसाई-धर्म से पहले पड़ा। इसलिए यूनान और रूम की चर्चा अभी छोड़कर, अरब और ईरान का उल्लेख करेंगे।

लगभग सन् ५०० ई० में इस्लाम ने अरब के देवी-देवताओं को समाप्त कर भुधार (Reformation) प्रस्तुत किया। इस्लाम-धर्म सभ्यता और संस्कृति की लहर-मात्र न था, वह एक समूचा तूफ़ान था। सौ दो सौ साल में ही उसने पूरे मध्य-पूर्व पर अधिकार कर लिया और सन् ८०० ई० के लगभग भारत पर आ टूटा।

आज हम प्राचीन संस्कृत-साहित्य और यूनानी साहित्य में अधिक समानता देखते हैं और अरबी तथा ईरानी साहित्य में कम। इसका क्या कारण है ?

केकय अफ़ग़ानिस्तान का ही प्राचीन नाम था। हिन्दू-काल की कथाओं में उसके भारतीय धर्म और समाज के एक अंग होने का पर्याप्त वर्णन है। ख़ैबर की घाटी में बौद्ध-मंदिरों के अवशेष यह प्रमाणित करते हैं कि वह बौद्ध-धर्म-द्वारा भी प्रभावित हुआ था।

ईरान के सूर्योपासकों (पारसियों) का भारत में आवाद होना सभी जानते हैं। उनमें और आदि सूर्यवंशियों में क्या समानता है, यह किसी अंश तक उनके धर्म-ग्रन्थ 'जेण्ड अवेस्टर' से ज्ञात हो सकता है, पर हमें केवल कहानियों से प्रयोजन है। इस ग्रन्थ के तीसरे भाग में दृष्टान्त तथा कथाएँ वर्तमान हैं जो पौराणिक आख्यानों से मिलती-जुलती हैं।

अरब मूर्तिपूजक थे, यह सर्वमान्य सत्य है। मक्का का क़ाबा देव-मंदिर था और उसमें अनेक मूर्तियाँ थी।

हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मध्य-पूर्व महाभारत का एक राजनीतिक तथा सांस्कृतिक विभाग था। जो कथा-आख्यान भारत के थे, वे उनके भी थे। उन्हें अलग लिखने की आवश्यकता नहीं थी। जब हिन्दू-धर्म का विरोध हुआ तो अरब-ईरान में कथा-आख्यान पराई संपत्ति समझे जाकर उसी तरह दबा दिये गये, जैसे वे बौद्धों-द्वारा दबाये गये थे।

समुद्र पार होने के कारण यूनान भारत का राजनीतिक भाग तो नहीं था परन्तु वह भारतीय संस्कृति के प्रभाव की सीमा (स्फियर ऑफ़ इन्फ्लुएन्स) के अन्तर्गत था। उस संस्कृति से प्रभावित हो उसने मिलते-जुलते कथा-आख्यान अपने लिए अलग बना लिए थे। ईसाई-धर्म के आक्रमण के बाद भी वह इन्हें अपनी साहित्यिक संपत्ति समझता रहा और उनकी रक्षा करता रहा, जैसे स्वयं भारत ने बौद्ध, इस्लाम और ईसाई धर्मों के आक्रमणों के समय किया। क्योंकि यह साहित्य हिन्दुओं की मौलिक कल्पना था, उस पर उनका दृढ़ विश्वास था, इसलिए बार-बार आक्रमण होने पर भी भारत में उसका पुनरुद्धार होता रहा। क्योंकि वह साहित्य यूनानियों की केवल अनुगमन चेष्टा थी, उस पर उनका विश्वास दुर्बल था, इसलिए वे उसका पुनरुद्धार करने में असमर्थ रहे।

यह दलील कि सिकन्दर के आक्रमण ने यूनानियों को भारतीय संस्कृति समझने की विशेष सुविधा दी, अन्य विभागों के युक्ति संगत हो सकती है, परन्तु कथा-क्षेत्र में यह मान्य नहीं है क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण के समय ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व यूनान का कथा-साहित्य (मिथिकल लिटरेचर) तैयार हो चुका था। यूनानी महाकाव्य 'इलियड' और 'ओडेसी' जिनकी कथा-वार्ता महाभारत से साम्य रखती है, ईसा के नौ सौ वर्ष पूर्व कवि होमर द्वारा रचित माने जाते हैं।

अनेक गद्य-पद्य कथा-आख्यानों का नायक मजनू अरबी था। वह ऐतिहासिक व्यक्ति था। वह स्वयं कवि था। उसका काव्य-ग्रन्थ आज भी विद्यमान है।

अलफ़ लैला, जिसे मध्य-पूर्व की कहानियों का 'महाभारत' (एन-साइक्लोपीडिया) भी कह सकते हैं, अरब और ईरान के सहयोग से प्राप्त हुआ है। यद्यपि खलीफ़ा हारूँरशीद ईरान के बादशाह थे और उन्हीं के मनोरंजनार्थ ये कहानियाँ प्रारम्भ की गई थीं, तथापि अरबों ने उनमें स्वरचित कहानियाँ भी सम्मिलित कर दी हैं। कुछ विद्वान् अलफ़ लैला को कथासरितसागर का रूपांतर मानते हैं।

दास्तान अमीर हमजा, शीरी-फ़रहाद आदि गद्य-पद्य कथा-आख्यान भी अरब और ईरान में लिखे गये हैं।

अरबों ने यद्यपि युद्ध में विजय प्राप्त कर ईरान को अपने आधीन कर लिया था, तथापि सांस्कृतिक रूप में वे ईरानियों से बहुत पीछे थे। वशीभूत ईरानी अपना साहित्य उनको सिखाने लगे। लैला-मजनू की ऋटना यद्यपि अरब की थी, परन्तु उसका साहित्यिक परिमार्जन ईरान में हुआ। अलफ़ लैला-सम्बन्धी अरबी प्रयास साहित्यिक अनुगमन की चेष्टा-मात्र है। इस सम्बन्ध में टी० जी० टकर अपनी पुस्तक 'दि फ़ारेन डेट ऑफ़ इंग्लिश लिटरेचर', पृष्ठ १२८ में लिखते हैं—

'जब अरबों ने ईरान पर कब्ज़ा कर लिया तब उन्हें ज्ञात हुआ कि ईरानी सांस्कृतिक क्षेत्र में उनसे आगे हैं। इसलिए अरबी-साहित्य ने ईरानियों के काव्य से जी खोलकर ऋण लिया।'

इस प्रकार अरबी ईरानी साहित्य इतना सम्बद्ध है कि दोनों पर एक साथ विचार किया जा सकता है।

ऊपर जिन पुस्तकों का उल्लेख हुआ है, उनके दो उद्देश्य थे—
कौतुक और वर्णन-शैली-द्वारा मनोरंजन और सांसारिक प्रेम का प्रचार।
अरबी-ईरानी कथा-साहित्य का यह एक प्रचंड प्रवाह है। इसका असर

भारत पर एक बड़े अंश में हुआ, जिसकी चर्चा अन्य प्रवाहों के अन्वेषण के बाद की जायगी।

इस्लाम-धर्म का सबसे रोचक और कठण अंश कर्बला का युद्ध है। यह वीर-गाथा अरब, ईरान और हिन्दुस्तान के साहित्यों में प्राप्य है। कथा शोक-गीतों (मर्सियों) में लिखी गई है। सबसे पहिला शोक-गीत स्वयं हज़रत इमाम हुसैन की बहन ने उनके शव के समीप जाकर कहा था। अरबी-साहित्यिकों ने अनेक शोक-गीतों की रचना की। ईरानी साहित्यिकों ने उनमें भी अधिक शोक-गीत, इस सम्बन्ध में लिखे। परन्तु इस्लाम के इस मर्म-स्थल को उत्कृष्टतम शोक-गीतों से परिपूर्ण और परिष्कृत करनेवाले लेखक भारतीय हैं, जिनमें कहाकवि अनीस और दबीर के नाम सर्वश्रेष्ठ हैं। इनकी रचनायें संसार के उत्कृष्टतम साहित्य से टक्कर ले सकती हैं। ये शोक-गीत हैं पर इनका प्रवाह वीर-गाथाओं के अनुकूल है।

ईरानी भारतीयों से प्रभावित होने के कारण उनके मूल-धर्म अर्थात् पूर्वजों की पूजा, के सिद्धान्तों में परिचित थे। ईरान के प्रथम और प्रसिद्ध कवि फ़िरदौसी ने 'शाहनामा' शीर्षक ग्रन्थ में ईरान के पूर्ववर्ती बादशाहों का वर्णन किया है। यह ग्रन्थ कविता में है और अपने विषय का उत्कृष्ट ग्रन्थ माना जाता है।

ऊपर लिखा जा चुका है कि ईरानी संस्कृति अरबी से आगे थी। ईरान के तत्त्व शास्त्रियों (सूफ़ियों) ने किसी अंश तक इस्लाम का दार्शनिक विरोध भी किया। इस साहित्य में गद्य और पद्य दोनों हैं और गद्य में अनेक आख्यान और दृष्टान्त भी हैं। इनकी रचनाओं का प्रवाह निराकार ब्रह्म के अस्तित्व पर विश्वास दिलाने की ओर था। पूर्व और पश्चिम दोनों ही इनके द्वारा पर्याप्त परिमाण में प्रभावित हुए।

ईगन और अरब ने आश्चर्य, कौतुक, चमत्कार तथा सांसारिक प्रेम सम्बन्धों कहानियाँ अधिक और दार्शनिक (सूफ़ी) कहानियाँ न्यून मात्रा में

लिखीं। ध्यान देने योग्य बात यह है कि अधिकतर कहानियाँ गद्य में लिखी गई।

ईरान और अरब के साहित्यिक उत्थान के सम्बन्ध में पाश्चात्य विद्वानों ने या तो कम लिखा है या अवहेलनात्मक ढंग से लिखा है। डिक्रवाटर साहब न संसार की साहित्यिक-प्रगति का इतिहास लिखने समय अरबी और फ़ारसी की चर्चा ही नहीं की। संसार का नाम लेकर पाश्चात्य विद्वान् अधिकतर यूरोप की ही चर्चा तथा यशोगान करते हैं।

अरबी-फ़ारसी जाननेवाले भारतीय विद्वान् यदि केवल कहानियों की दृष्टि से इन साहित्यों के प्रमुख अंश हिन्दी में प्रस्तुत करें, तो यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ होगा। इनके ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण मैं हिन्दी और अंगरेजी के माध्यम से प्राप्त धुंधले रेखा-चित्रों का ही उपयोग कर पाया हूँ। आशा है प्रथम प्रयास के नाते यह सक्षिप्त विवेचना क्षम्य होगी।

मिस्र जो विश्वमारी सभ्यता का केन्द्र रह चुका है, चीन जो सभ्यता का भूला (Craddle) माना जाता है और जापान (एशिया का सर्वोच्च नक्षत्र) ज्ञानाभाव के कारण छूट रहे हैं। आशा है उदीयमान लेखक इसकी पूर्ति करेंगे।

भारत सन् १००० से १८०० तक

सन् १००० से हिन्दी साहित्य का इतिहास काल आरम्भ हो जाता है। इस समय से सन् १८०० तक वह काल माना गया है जो कहानियों के लिए अन्धकार युग (Dark Ages) है। इसका मतलब केवल यही है कि आधुनिक काल में हम कहानियों का जो रूप मानते हैं, उस रूप में कहानियों की रचना नहीं हुई। इसका यह मतलब कदापि नहीं है कि जिस गद्य-पद्यात्मक सर्वांगीण रूप में कथा, आख्यान, कहानियों की चर्चा होती आई है, वह रूप इस काल में विलुप्त हो गया था।

हम देख चुके हैं कि भारतीय कहानी-कला धर्म और दर्शन के तत्त्वों को जन-साधारण के समीप लाने के लिए; श्रद्धा-भक्ति, प्रेम, विश्वास की भावनायें जाग्रत करने के लिए आविष्कृत हुई थीं।

भारतीय आदर्शों के पतन के समय उसमें कौतुक, आश्चर्य और सांसारिक प्रेम का कुछ समावेश हुआ। जैसा कि कथासारितसागर से प्रकट होता है। ये भाव मध्य-पूर्व में जाकर पूर्ण रूप से फूले-फले और मुसलमानी आक्रमणों के साथ भारत में इन भावों की एक तीव्र लहर बहने लगी।

सन् १००० से १२०० तक अधिकतर मुसलमानी आक्रमणों का समय था। इस काल में, तत्कालीन डिंगल में, अनेक वीर-गाथायें लिखी गईं, जैसे धृष्टीराजरासो, हमीररासो आदि।

आपसी लड़ाइयों के वर्णन में भी कवि अपने-अपने पक्ष के वीरों की कथायें ओजस्वी भाषा में लिखते रहे, जैसे आल्हा-ऊदल की कथा।

ये वीर-गाथायें मध्यदेग में घर-घर प्रचलित थीं। राजपूतों की जो असंख्य कथायें पठित और कथित रूप में आज तक जनसाधारण की संपत्ति हैं, वह इन वीर-गाथाओं का ही फल है। प्रवाह की दृष्टि से यह पूर्व-पुरुषों की पूजा का ही आदि धर्म है जो आगे राष्ट्रीयता का रूप ग्रहण करेगा।

सन् १२०० और १४०० के बीच भारत पर ईरानी सूफ़ी कवियों का प्रभाव पड़ा। मुसलमान दिल्ली के आस-पास अपना राज्य स्थापित कर चुके थे। बार-बार हारने के कारण अपने प्राचीन आदर्शों के प्रति जनता का विश्वास शिथिल पड़ रहा था। ऐसे समय में कुछ विद्वानों का पुनः जनता को निराकार के नवीन सूफ़ी आदर्शों की ओर आकर्षित करना स्वाभाविक था। यद्यपि इन विद्वानों के सिद्धान्तों में भारतीय तत्त्वशास्त्र का समावेश भी था परन्तु उनमें सूफ़ी मत का प्रभाव अधिक था, क्योंकि उस समय यह मत नवीनतम आकर्षण (क्रैज) हो रहा था।

इनमें कवि कबीर और जायसी प्रसिद्ध हुए। कबीर ने तो विशुद्ध तत्त्वशास्त्र द्वारा उपासना का उपदेश दिया, परन्तु जायसी ने 'पद्मावत' नामक पद्यबद्ध प्रेम-कथा लिखकर सूफी शैली और भावना का प्रचार किया। 'पद्मावत' ही के समान "मुग्धावती", 'मृगावती', 'मधुमालती' और 'प्रेमावती' आदि पद्यबद्ध कथायें भी इसी काल में रची गईं।

इस काल का आरम्भ मुल्ला दाऊद की नूरक और चन्दा की प्रेम-कथा से मानना चाहिए, जो अलाउद्दीन खिलजी के राजत्वकाल में लिखी गई। प्रेमकथा की यह परम्परा उन्नीसवीं शताब्दी तक चलती रही।

इन कहानियों में ईरान (अल्फ़ लैला आदि) की शैली नितान्त स्पष्ट है। परियाँ, राक्षस (जिन्न), मनुष्यों का उड़ना आदि इन कथाओं में विशेष रूप से चित्रित हैं। कौतूहल और सांसारिक प्रेम इन कथाओं का चरम उद्देश्य जान पड़ता है, यद्यपि प्रेम उतना वासनामय नहीं है, जितना यूरोप के प्रभाव से आगे दृष्टिगोचर होगा।

सन् १४०० से लेकर १६०० तक वह समय है जिसमें विदेशी प्रभाव के प्रति विरोध की भावना प्रबल हुई। स्वामी रामानन्द जी के प्रभाव से पूर्व-पुरुष राम और श्री वल्लभाचार्य जी के प्रभाव से कृष्ण की पूजा देश में फिर आस्था प्राप्त करने लगी और महात्मा सूरदास और तूल्सीदास की अमृतवाणी ने तो राम और कृष्ण को साक्षात् भगवान् के रूप में फिर से घर-घर और हृदय-हृदय में स्थापित कर दिया।

इस प्रकार कथा-आख्यान की विचार-धारा ने दो मार्ग ग्रहण कर लिए—एक तो सूफी प्रेम-मार्ग और दूसरा राम और कृष्ण की उपासना का भक्ति-मार्ग। इनमें रामकृष्ण की उपासना की कथायें प्रमुख रहीं और सूफी कथायें गौण।

सन् १६०० से १८०० तक मुस्लिम-विजित भारत में कुत्सित प्रेम और शृंगार की भावना का साम्राज्य रहा। शाही दरबार ईरानी साहित्य के प्रभाव से शृंगार-प्रियथा ही। उर्दू-गद्य-पद्य साहित्य में ईरानी आदर्शों

के अनुकूल सांसारिक प्रेम का तूफान आ गया था। हिन्दू-शासक भी बादशाह का अनुगमन करने लगे। उनके दरबारों में विलासिता खूब खुलकर खेलने लगी। हिन्दी, जो इस समय दरबारों की नेरी थी, शृंगार-रस में डबती-उतरानी एक निषिद्ध दिशा की ओर बढ़ने लगी।

इसका यह अर्थ नहीं है कि हिन्दी या उर्दू साहित्य में सुलेखकों और सुकवियों का पूर्णभाव था। इसका यह अर्थ भी नहीं है कि समूचा देश ऐन्द्रिकता की ओर बढ़ रहा था।

विशुद्ध प्रेम, वीरता और त्याग के, इस काल में भी, अनेक उज्ज्वल उदाहरण मिलते हैं। वीरवर प्रताप, शिवाजी और छत्रसाल लगभग इसी यग में हुए और उनकी अनेक लिखित और पत्रित कथायें बड़े, छोटे, शहरी, देहाती, पंडित, अपढ़ सभी के अनन्यतम प्रेम की सामग्रियाँ बन गईं। सोलहवीं शताब्दी के अन्त में ब्रजभाषा गद्य में पुष्टि मार्ग के आचार्यों द्वारा चौरासी वैष्णवन की वार्ता और दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता लिखी गई। यद्यपि ये ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन-चरित्र हैं, तथापि इनकी सैली कथा आख्यानों के ही समान है।

ईरानी स्वच्छन्द (Romantic) कहानियाँ इस योग्य नहीं थीं कि हिन्दी के तत्कालीन शृंगारी कवि उन्हें पद्यबद्ध करने को उत्साहित होने। हिन्दी में गद्य का इस समय प्रचार नहीं था, या नाम-मात्र को था। इसलिए साहित्य में तो ईरानी कहानियाँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं परन्तु कथित रूप में वे देश भर में फैल गई थीं। अलफ़ लैला, ग़ुल-बकावली, लैला मजनू, शीरी-फरहाद आदि की कहानियाँ जगह-जगह कही और सुनी जाती थीं। कुछ भारतीय प्रेमियों की स्वच्छन्द कहानियाँ भी कही और सुनी जाती थी, जैसे माधवानल, कामकन्दला। प्रेस का आविष्कार होने ही इनके मृद्वित संस्करण भी मिलने लगे और जनता में बिकने लगे। इस कोटि की अन्य कहानी-पुस्तकें जैसे बेंताल-पच्चीसी, सिहासन-बत्तीसी, त्रियाचरित्र आदि भी ढूँढ़-खोजकर निकाली गईं और जनता को बेची जाने लगीं। इनसे भी निम्न कोटि की कुछ मौलिक

पुस्तकें भी लिखी गई जिनका साहित्य में कोई स्थान नहीं है परन्तु जनता उन्हें पढ़नी अवश्य है। जैसे किम्सा साढ़े तीन यार।

इस स्थल से मुग़लम साहित्यिक प्रभाव शिथिल और पाश्चात्य प्रभाव प्रबल होता है। यह भारत के पतन और योरप तथा अमेरिका के उत्थान का समय था। योरप और अमेरिका के कहानी-क्षेत्रों की सैर कराने के पहले हम अत्यन्त संक्षेप में अद्य तक जो लिखा जा चुका है, उसका मिहावलोकन करना चाहते हैं।

कहानियों का जन्म मसार के साथ ही साथ हुआ। आरम्भ में उनका उद्देश्य कठिन को सरल करना था, तत्त्व को साकार करना था। भारत के उत्थान-काल में उनकी प्रवृत्ति सत्य और सुन्दर की ओर रही। उन्होंने कोटि-कोटि हृदयों में सत्य और सुन्दर की भावना उत्पन्न की। भारत पर अनेक विपत्तियाँ आईं परन्तु जनता के हृदय में वास करने-वाली कहानियों ने उन पर सदैव विजय-लाभ की। यह इन कहानियों का ही प्रभाव था, यह इन कहानियों-द्वारा प्रतिपालित भक्ति-प्रेम और विश्वास ही था, जिसने, समय-समय पर, भारतीय संस्कृति का पुनरुद्धार करने में कवियों और महात्माओं को सफल बना दिया।

स्वर्गीय लाला लाजपत राय ने अपनी पुस्तक—‘दुखी भारत’ में लिखा है कि अँगरेजों के शासन-काल के आरम्भ में भारत में शिक्षा-प्रचार की एक स्वनिर्मित योजना मौजूद थी। यह योजना इतनी सफल थी कि कोई भारतीय, चाहे पुरुष हो या स्त्री, अशिक्षित नहीं रहने पाता था।

आज समस्त पाश्चात्य संसार के शिक्षा-विधान ‘कहानी-द्वारा-शिक्षा’ की रट लगाये हुए हैं। न जाने कितनी विधियाँ, न जाने कितने उपाय आये दिन प्रस्तुत किये जाते हैं। जैसा आप आगे देखेंगे, समस्त पाश्चात्य संसार का साहित्य-विभाग भी आज कहानियों की चिल्लाहट मचाये हुए है।

मेरी विनम्र धारणा यह है कि भारत जनता की शिक्षा में कहानियों की उपादेयता को युग-युग से जानता आया है। जिन महाकाव्यों के टुकड़े-टुकड़े, स्वतन्त्र कहानियों के रूप में, भारतीय माताओं ने अपने पुत्र-पुत्रियों को सुनाया है, जिन पूर्व पुरुषों के आख्यान कथावाचकों ने गाँव-गाँव जाकर भक्त-मंडली को सुनाया है, जिन सती-सावित्री की कहानियों को तिथि, पर्व, त्योहारों पर आपस में एक-दूसरे को सुनाकर कन्या पत्नी और पत्नी माता बनी है, वे सब भारत की सबसे जबर्दस्त शिक्षण-संस्थायें हैं। एक तो हिन्दी ऐसी भाषा जो कोई भी चलते-फिरते सीख ले, दूसरे कहानियों-द्वारा शिक्षा का इतना देशव्यापी और प्रभाव-शाली आयोजन, फिर स्वर्गीय लाला जी के वक्तव्य पर कैसे अविश्वास किया जा सकता है ?

हाँ, इस स्वनिर्मित योजना में और आधुनिक अनन्यतम वैज्ञानिक योजना में कुछ भेद अवश्य है। भारतीय योजना सिखाती थी कि थोड़ा जानो, पर उम पर विश्वास करो। वैज्ञानिक योजना सिखाती है कि सब कुछ जानो पर विश्वास किसी पर मत करो। यह पतनोन्मुख पूर्व ही की नहीं, उद्दिष्ट पश्चिम की भी हार है।

यूनान

पहले लिखा जा चुका है कि भारतीय पौराणिक और बौद्धकालीन कथा-साहित्य का यूनान पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था। देवी-देवताओं की कल्पना और तत्संबंधी कहानियाँ यूनानी मिथिकल साहित्य में कुछ हेर-फेर के साथ अब भी वर्तमान हैं और बुद्ध-कालीन फ्रेवल्स और पैरो-बल्स का तो अरब में लुकमान ने और यूनान में ईसप ने बहुत कुछ अनुवाद ही कर लिया था। कथासरित्सागर के प्रभाव से भी यूनान बच नहीं सका। कोनरेड राइट साहब अपने फ्रेंच-साहित्य के इतिहास, पृष्ठ ६९ में एक ऐसी कहानी की चर्चा करते हैं जिसमें एरिमटोटल ने सिकन्दर को स्त्री-स्वभाव की चंचलता और घातकता से सावधान रहने का

उपदेश दिया परन्तु वह खुद एक स्त्री के चंगुल में फँस गया और फल-स्वरूप अपने हाथ-पैर ब्रँधवाकर तथा घोड़े की पीठ पर लदाये जाकर एक भारतीय वेण्या के साथ रवाना कर दिया गया ।

टी० जी० टकर अपनी पुस्तक 'दि फ़ारेन डेट ऑफ़ इंग्लिश लिटरेचर', पृष्ठ १३१ में स्पष्ट लिखते हैं—'यूनानी स्वच्छन्द (Romantic) साहित्य जो दूसरी सदी में आरम्भ होता है, परन्तु जो वास्तविक रूप से चौथी सदी में दृष्टिगोचर होता है; पूर्वीय वातावरण से भरा हुआ है। उसकी व्युत्पत्ति यूनानी मस्तिष्क में नहीं, वरन् पूर्वीय मस्तिष्क में है।'

इस प्रकार यद्यपि यूनान ने भारतीय कथाओं से अपना भण्डार भरा और अन्य निकटवर्ती देशों (रूम, स्पेन, फ़्रांस) को उनके रूपान्तर का अवसर दिया, तथापि उसने उन्हें आधुनिक रूप देने का प्रयत्न नहीं किया। यह प्रयत्न रूम से आरम्भ हुआ। ईसाई-धर्म के आक्रमण के साथ ही वह बाइबिल-सम्बन्धी साहित्य तैयार करने में लग गया। उसने इस सुधारपूर्ण (Reformatory) सामग्री का भी अपने लिए विशेष अनुसंधानिक उपयोग नहीं किया। सामग्री को यूनानी भाषा में परिवर्तित कर उसने रूम रवाना कर दिया और रोम ही उस धर्म का केन्द्र हुआ। इस तरह यूनान को यदि पौराणिक, बौद्ध और ख्रिस्तीय साहित्य का डाकखाना कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

रूम (इटली) और स्पेन

यह भूमिका कहानियों का विकास होकर उपन्यास होती जा रही है। कहानियाँ जीवन की व्यवच्छेद कड़ियाँ (Links) हैं। सबको जोड़ दीजिए—जीवन का एक चित्र खड़ा हो जायगा। उपन्यास समूचा जीवन है जो अपने पात्ररूपी कृटिमियों का हाथ पकड़े एक पराकाष्ठा (Climax) की ओर बढ़ता है। इसी प्रकार भूमिका में कहानियाँ

लिखस न होकर पात्र हो रही है। उपन्यास दुःखान्त होगा या सुखान्त यह अभी पाठकों की कल्पना (Guess) पर छोड़ा जाता है।

रूपक बाँधने की आवश्यकता इसलिए हुई कि अब उन घटनाओं का क्रम, जिन पर आधुनिक कहानियों का विश्वास अवलम्बित है, सैकड़ों वर्षों को टुकड़ाते, रौंदने, इस तीव्र वेग से बढ़ेगा, इस पट्टा से वेब बदलेगा कि गायद संजीवनी से मोचने-समझने का अवसर ही न मिले।

लीजिये सन् ४०० से सन् १३०० तक एक ही कलम से कहानियों के इतिहास पर पर्दा पड़ता है—यह है अन्धकार युग (Dark Ages)। उस युग से तुलना कीजिये जो भारत पर भी झीत चुका है। योरप का अन्धकार युग लगभग सन् १६०० तक माना जाता है, परन्तु सन् १३०० में कहानियों ने रूम में फिर सिर उठाने का प्रयत्न किया था।

साहित्य इतना गतिहीन नहीं है, मनुष्य इतना धैर्यवान् नहीं है कि कुम्भकर्ण और रिपवान विकल की नींद को उपहासास्पद बनाते हुए स्वयं हजार-बारह सौ साल की लेट लगा जाय।

विचार-धाराओं का संघर्ष इतना तूफानी होता है कि घोरतम युद्ध उसकी बराबरी नहीं कर सकता। एक धारा जब दूसरी पर विजय पाती है, तब उसे ऐसा रौंद देती है, दबा देती है कि वह सैकड़ों साल सिर नहीं उठा सकती। बुद्ध की विचार-धारा, इस्लाम की विचार-धारा से आर्यों की विचार-धारा में जो विकार उत्पन्न हुए, सैकड़ों वर्षों के जो अन्धकार-युग उपस्थित हुए, उन्हें आप देखने आये हैं।

ख्रिस्तीय विचार-धारा ने भी योरप में ऐसा ही व्यवहार किया। पहले उसने यूनानी और रूमी विचारों को दबाया। फिर कई सौ वर्षों में उसने ईसा का निराकार मार्ग छोड़कर, ईसा को ही भगवान् बनाकर उनके चारों ओर पूजा-पाठ, घंटा-घड़ियाल का कर्मकाण्डी धर्म खड़ा किया। जनता जो नवीन विचारों को अपनाने में बड़ी कुशल है, उन्हीं विचारों के पोष-पंथी होते ही अब उठी और अपने स्वभावानुकूल सुधार (Reformation) की चिन्ताहट मचाने लगी। पन्द्रहवीं सोलहवीं शताब्दी

में सेण्ट लूथर ने इस माँग की पूर्ति की। उन्होंने ईसाई-धर्म के अन्तर्गत प्रोटेस्टेण्ट अर्थात् विरोधी दल कायम किया। यह दल इतना विरोधी निकला कि उसने हजार-वारह सौ साल की साहित्यिक प्रगति को पैरों से कुचलकर स्पष्ट स्वर में एलान कर दिया कि यह अन्धकार युग (Dark Ages) था; इस युग में कोई प्रगति नहीं हुई। यह पाश्चात्य विद्वानों का गम्भीर और विचारपूर्ण मत है।

हमारे हिन्दी-साहित्यिक जो पिछले पचास वर्ष के मंकीर्ण और वास्तवपूर्ण जीवन में अमर लेखक और मुर्दा लेखक, आचार्या और सम्राटों की चर्चा में समय और शक्ति का ह्रास किया करते हैं, तनिक साहित्य की, कहानियों की प्रगति को विचार-प्रवाह के उत्थान और पतन की पृष्ठ-भूमि में देखें और सोचें कि सर्वांगीण परिस्थिति के अध्ययन के बाद आधुनिक हिन्दी का कितना साहित्य रचा गया है !

हाँ, तो सन् १३०० में १६०० तक इटली और स्पेन में कहानियों का पुनरुद्धार हुआ। इटली में गिओवनी बोकेथियो (Giovanni Boccaccio) १३१३-१३७५ और मैट्टियो ब्रैण्डेलो (Matteo Bandello) १५५४-१५७३ नामक प्रसिद्ध लेखक हुए। पहले ने डीकेमेरान (Decameron) शीर्षक पुस्तक लिखी जिसमें १०० कहानियाँ थीं। दूसरे ने नोवेल (Novelle) पुस्तक लिखी, जो नावेल या उपन्यास का श्रीगणेश था।

ये कहानियाँ योरप में इतनी उत्कृष्ट मानी गई कि आदि आंग्ल कवि चासर ने इनके आधार पर अपनी कैंटरबरी टेल्स (Canterbury Tales) लिखीं और आंग्ल साहित्य-सम्राट् शेक्सपियर ने इनके आधार पर आल्स वेल दैट एण्ड्स वेल (All's well that ends well) रोमियो जूलियट (Romeo Juliet) मेज़र फ़ार मेज़र (Measure for measure) ओथेलो (Othello) आदि नाटक लिखे (देखिये पृष्ठ २१७, टी० जी० टकरकृत 'दि फ़ारेन डेट ऑफ़ इंग्लिश लिटरेचर')।

टी० जी० टकर साहब ने अपनी इसी पुस्तक के पृष्ठ १२५ में इन कहानियों की मौलिकता के सम्बन्ध में यह लिखा है—

‘उस सब साहित्य को, जिसका दावा यह था कि वह आदि साहित्य है, (योरपीय) मध्य-युग ने, ऐतिहासिक प्रमाणों की न्यूनता रहते हुए भी, एक मामूली नाम ‘रोमन्’ दे दिया था। (यही Romance की उत्पत्ति है)। यह नाम कितनी स्वच्छन्दता में उपयुक्त था और कहानियों की व्युत्पत्ति कितनी विभिन्न देशीय थी, उसका पता हम वान में चलता है कि सब मामूली ‘जैस्टा रोमेनोरम’ (Gesta Romanorum) नामक ग्रन्थ में, तेरह या चौदहवीं शताब्दी में गड़मगड़ा कर दी गई। इस विचित्र सग्रह में आदि इतिहास, सन्तों का चरित्र और पूर्विय (Oriental) कहानियाँ, बिना किसी वर्ग-विभाजन या पारस्परिक प्रतिवाद का ख्याल किये, भर दी गई थी। यह ‘जैस्टा’ इटली के बोकेशियो से लेकर दैंग्लैंड के चासर तक के लिए खला हुआ भण्डार था जिसमें वे बेधड़क अपनी कवितायें और प्याट लिया करते थे।’

सोलहवीं सदी स्पेन का साहित्यिक स्वर्ण-युग था। इसी समय में वेण्टीज़ (Cervantes) नामक प्रसिद्ध कथा-लेखक ने अपनी डान क्विज़ोट (Don Quixote) पुस्तक लिखी। यद्यपि यह पुस्तक उपन्यास के नाम में विख्यात है, परन्तु इसकी शैली कहानियों की-सी है। जे० बी० ट्रेण्ड (J. B. Trend) ने अपनी पुस्तक सोलहवीं सदी की स्पेनिश कहानियाँ (Spanish short stories of the 16th Century) की भूमिका पृष्ठ ११ में लिखा है कि डान क्विज़ोट का जो अंश वे उद्धृत कर रहे हैं वह एक स्वतंत्र कहानी के समान है। योरोप की तमाम भाषाओं में इस पुस्तक का अनुवाद हुआ है और इसकी शैली तथा विचार-धारा का अनुकरण किया गया है।

स्पेनिश साहित्य की मौलिकता के सम्बन्ध में टी० जी० टकर साहब अपनी पूर्वोलिखित पुस्तक के पृष्ठ १२८-१२९ में जो कुछ लिखते हैं, उसका सारांश यह है—

‘ईरानी और अरबी काव्य के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि उनमें कहावतों, कहानियों आदि को अभिव्यंजित करने की एक विचित्र शक्ति है। यह शक्ति स्पेन में पूरे जोर से प्रयुक्त हुई है। स्पेन का साहित्य इन्हीं प्रभावों-द्वारा तैयार हुआ है। ईरानियों, अरबों को यह एक बड़ी भारी सुविधा थी कि इधर तो वे यूनानी ईसप की कहानियाँ लेकर अरबी लुकमान की कहानियाँ बना लेते थे और उधर भारतीय पंचतंत्र की कहानियाँ लेकर अरबी कलीला (Kalila) और दिमना (Dimna) बना लेते थे। इन संग्रहों में पशुओं की जिन कहानियों-द्वारा राजकुमारों को शिक्षा दी गई उनका नैतिक धरातल मेसियावेली (Machiavelli) के उपदेशों और सिद्धान्तों से ऊँचा है।

इटली की कहानियाँ आधुनिक काल तक उन्नति करती चली आ रही हैं। कुछ वर्ष पहले लूगी चिरेण्डेलो नामक इटालियन नाट्य-कार और कहानीकार को नोबेल पुरस्कार भी मिला था। उनके दो कहानी संग्रह ‘बेटर थिंक ट्वाइस अबाउट इट आदि’ (Better think twice about it and other stories) और ‘नेकेड ट्रथ आदि’ (Naked truth and other stories) अंगरेजी में उपलब्ध हैं। इनकी शैली पूर्णरूप से आधुनिक है।

स्पेन की कहानियों का संग्रह भोल्टेरी मनी के वाद (Spanish short stories of the 16th Century J. B. Trend) अंगरेजी में देखने में नया आया।

हम देख चुके हैं कि कहानियों की शक्ति, चाहे गद्य में हो या पद्य में, अत्यन्त प्रबल है। हम देख चुके हैं कि कहानियाँ मृत्यु और सौंदर्य का मार्ग छोड़कर मांसारिक प्रेम या स्वच्छन्द (Romantic) मार्ग ग्रहण करती आई हैं। इटली और स्पेन में भी वे इसी क्षेत्र में विकसित होती रही, वल्कि इटली में ‘रोमांस’ नाम की ही उत्पत्ति हो गई। परन्तु इस प्रेम की धारा में भी अलग-अलग देश और काल में थोड़ी-थोड़ी विभिन्नता रही है। भारत की प्रेमाश्रयी शाखा की कहानियों (कहावत

आदि) में स्त्री-पुरुष पात्र वासना से हीन होते थे; वे लगभग आत्मा और परमात्मा के प्रतीक थे। मध्यपूर्व में यद्यपि प्रेम कुछ अधिक सांसारिक हो गया था, तथापि वह स्त्री के शरीर में केन्द्रित न होकर पुरुष के शौर्य को ही अधिक विकसित करता था। शाहजादा अनेक विपत्तियों का सामना कर, अनेक कष्ट भेल पहले अपने त्याग और पराक्रम की परीक्षा देता था। तत्पश्चात् वह शाहजादी को प्राप्त करता था, अपनी पत्नी, अपनी मलका बनाने के लिए, केवल शारीरिक उपभोग के लिए नहीं। इटली और स्पेन में राजपुमार राजकुमारी ही प्रेम-कथाओं के चरितनायक हों, यह आवश्यक नहीं था। साधारण नागरिक या सिपाही भी कहानी का नायक हो सकता था। इस प्रकार राजभवन को छोड़ प्रेम कथा संसार के और निकट आ गई। परन्तु उस नागरिक या सिपाही को भी अपने प्रेम के लिए कुछ त्याग, कुछ साहस करना पड़ता था। साहसिक कार्य शिवेलरी (Chivalry) ही प्रेम का मार्ग माना जाता था। इस काल की यही विशेषता है।

फ्रांस

‘Culturally we have always learnt much from France ; and the stories of Guy de Maupassant probably had an even greater influence upon English writers than upon the French.’

(Introduction to modern short stories by John Hadfield, page viii)

‘सांस्कृतिक दृष्टि से हमने फ्रांस से बहुत शिक्षा प्राप्त की है। गाइ द मुपासाँ की कहानियों-द्वारा शायद फ्रेंच लेखकों से अधिक अंगरेजी लेखक ही प्रभावित हुए हैं।’

(जान हेडफील्ड लिखित ‘माडर्न शार्ट स्टोरीज’ की भूमिका, पृष्ठ ८)

गाइ द मुपासाँ के नाम का जादू हिन्दी-संसार पर भी बखूबी चला

है। परन्तु उसका रचनाकाल केवल सन् १८५० से १८९३ (जीवन-काल) के बीच १८८०-१८९१ ही है।

सर्वेष्टीज का काल सोलहवीं सदी है। अभी दो सौ असी साल बीच में हैं। इस अर्से में कहानियों ने भिन्न-भिन्न रूप बदले हैं। बीच में वे दबी भी पड़ी रही हैं। पाठक अभी से अधीर न हो जायँ।

पहले लिखा जा चुका है कि फ्रांस में फ्रेवल्स और पैरोवल्स ने ऐसा सिक्का जमाया था कि वे पचास हजार की संख्या को पहुँच गये थे। वोकेशियो और बेन्डेलो ने जब लैटिन से रूठ कर इटालियन में जनता के हित के लिए कहानियाँ आरम्भ कीं तब फ्रांस की भी आँखें खुलीं। परन्तु कार्यारम्भ में लगभग दो सौ वर्ष लग गये।

बात यह है कि ग्रीक और लैटिन के पंडित इटालियन, फ्रेंच या अँगरेजी लिखनेवाले को विद्वान् मानते ही नहीं थे। फिर भी जनता की इन भाषाओं में किमी ने महाकाव्य, नाटक या उपन्यास लिखा तो कदाचित् वे उसे एक बार पढ़ भी सकते थे, परन्तु कहानी को वे साहित्य में कोई स्थान देने को तैयार ही न थे। इसलिए इस काल में लेखक कविता या उपन्यास की आड़ में कहानियाँ लिखा करते थे।

फ्रांस में यह श्रेय या ह्रास सर्वप्रथम वोल्तायर (Voltaire)—१६९४ और रूसो (Rousseau)—१७१२ को प्राप्त हुआ।

ये दोनों स्वच्छन्द (रोमांटिक) लेखक थे। स्वच्छन्दता इस कोटि की थी कि सी० एच० कोनरेड राइट अपने 'फ्रेंच साहित्य का इतिहास' पृ० ४८९ में लिखते हैं—

‘वोल्तायर की रचना में अश्लीलता का नग्न अभिनय है, रूसो की रचना में अश्लीलता पर्दे के पीछे अभिनय करती है।’

उस समय फ्रांस के बादशाह किसी वाजिदअली शाह से कम नहीं थे। यह स्वच्छन्दताशाही गौरव के अनुकूल ही थी।

प्रजा नृशंस शासन से पीड़ित हो क्रान्ति की तैयारी कर रही थी। वाल्टेयर और रूसो ने अश्लीलता की आड़ में क्रान्ति की बेधुमार सामग्री

जनता के हाथों सौंपी। वे राजदंड के भागी हुए। वे भागकर जर्मनी और इंग्लैण्ड में रहे। अन्त में क्रान्ति हुई और कुछ काल के लिए, नादिरशाही का अन्त हुआ। साहित्य राजनीति का पथ-प्रदर्शक हुआ।

इस दृष्टि से वोल्तायर के बारे में कोनरेड साहब का मत है, (इतिहास पृ० ५०९)---“He was mainly a populariser— (वह प्रधानतया जनमतवादी था)।

इस प्रकार दो धाराओं का प्रवाह बह रहा था—अग्लील स्वच्छन्द-तावाद और क्रान्तिवाद।

इस समय के स्वच्छन्दतावाद में वासना का स्थान सर्व-प्रधान था।

पहली धारा को हेनरी बेयल (Henry Beyle) ने पराकाष्ठा तक पहुँचाया। उनका कहना था—‘ईश्वर का एकमात्र अपराध यह है कि वह है ही नहीं’—(Gods’ single excuse is that he does not exist)। इस सिद्धान्त पर जिन कहानियों की रचना हुई वे बेइल्वाद (Beylism) द्वारा प्रभावित मानी गई। उसकी परिभाषा थी—‘A brutal cult of self over-riding all obstacles, moral or otherwise, for the sake of pleasure— (सुख की प्राप्ति के लिए, तमाम रुकावटों को हटाकर, वे नैतिक हों या और कोई, अपने को पाशविक रूप से तैयार करना)।

यद्यपि यह धारा कुछ दिनों बाद दूसरे मार्गों से बहने लगी, परन्तु इसका उत्थित प्रभाव आज तक मौजूद है। धर्म हटिगत होता जाता था। मनुष्य साकार पूजा के लिए व्याकुल था। और कोई सहारा न पाकर स्त्री पुरुष और पुरुष स्त्री के शरीर को ही सब कुछ समझने लगा और आज तक पश्चात्य देशों में यही भावना आदर्श है।

इस बीच में दो प्रसिद्ध व्यक्ति और हुए जो मुख्य रूप से उपन्यास-कार और गौण रूप से कहानीकार थे—विक्टर ह्यूगो और अलेक्जेंडर दमा—धारा, ऐतिहासिक स्वच्छन्दतावाद। (Victor Hugo) (Alexander Dumas)

सन् १७९९-१८५० में प्रसिद्ध कहानीकार बेलज़क (Balzac) ने कहानियों की धारा स्वच्छन्दतावाद से यथार्थवाद (Realism) की ओर प्रवाहित की। इस दृष्टि से कहानियों के क्षेत्र में बेलज़क एक भाव-प्रवर्तक हैं। सुदीर्घ स्वच्छन्दतावाद के युग के बाद यह परिवर्तन कदाचित्त रोचक प्रतीत हो।

कोनरेड राइट साहब अपने इतिहास में यथार्थवाद की परिभाषा देते हुए लिखते हैं—

‘यथार्थवाद समाज की गद्यात्मक कल्पना करता है। यथार्थवादी समाज आदर्शों का दासत्व स्वीकृत नहीं करता। वह केवल प्रत्यक्ष सत्य को मानता है। यह अवलोकन के लिए इन्द्रियों के अतिरिक्त और किसी साधन पर विश्वास नहीं करता। वह भावुकता के एवज़ में विज्ञान को, Synthesis के एवज़, analysis को और कल्पना-जगत् की जगह वस्तु-जगत् की प्रधानता देता है।’

कई सौ वर्षों से स्वच्छन्द विहार करनेवाली कहानी-कला के लिए यह परिभाषा बड़ी भयानक है। जिसमें कल्पना नहीं, भावुकता नहीं, रस नहीं, हृदय नहीं वह रोचक या आकर्षक कैसे होगी? इस प्रश्न का उत्तर बेलज़क नहीं दे सके।

राइट साहब के शब्दों में इसका फल यह हुआ—‘यद्यपि बेलज़क ने रोचक बनाने के लिए कहानियों में गन्दे से गन्दे दृश्य चित्रित किये, तथापि वे (कहानियाँ) अस्वाभाविक और पढ़ने में शुष्क तथा नीरस रहीं।’

यह कभी आगे चलकर फ़्लोबेयर (Flaubert) और उनके शिष्य मुपासाँ ने पूरी की। इन्होंने यथार्थवाद को एक कदम आगे बढ़ाकर मानववाद (Humanism या Naturalism) बना दिया।

एल्फ़्रेड एच० उपहम, अपनी पुस्तक टिपिकल फ़ार्म्स ऑफ़ इंग्लिश लिटरेचर (Typical Forms of English Literature) में

मानववाद (Naturalism या Humanism) की परिभाषा इस प्रकार लिखते हैं—

‘जो घटनायें कहानी में वर्णित हैं, उनका चित्र उसी सावधानी से और वैज्ञानिक विधि से खींचा जाता है, जैसा कि यथार्थवाद में, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से लेखक अपने आपको और अपनी सहानुभूति को घटना तथा पात्रों से दूर रखता है।

‘यद्यपि इस वस्तु-प्रधान चित्रण से पाठक की भावुकता पर पर्याप्त प्रभाव नहीं पड़ता तथापि लाभ की बात यह है कि शैली-द्वारा कल्पना ने बड़ी एक-रसता प्राप्त की और लेखक को अल्प विचारों तथा बिखरी हुई अनुभूतियों के चित्रण करने में उत्साह मिला।’

श्रीमती एल० जे० गार्डनर (L. J. Gardiner) अपने आउट लाइन्स ऑफ़ फ्रेंच लिटरेचर (Outlines of French Literature) ग्रन्थ में यथार्थवाद और मानववाद (Humanism) की विभिन्नता इस प्रकार समझाती हैं—

‘यथार्थवादी जो कुछ देखता है, उसे लिख देता है परन्तु वह देखी हुई वस्तु में से पहले अपने मतलब की सामग्री छाँटकर अलग करता है और केवल इस सामग्री को ही कहानी में स्थान देता है। मानववादी बिना चुनाव किये जो कुछ देखता है अपनी रचना में चित्रित कर देता है— सुन्दर और पवित्र—अधिकतर असुन्दर और अपवित्र। वह फ़ोटोग्राफ़र है—चित्रकार नहीं है।’

इस दृष्टि से मुपासाँ की रचनाओं में जो सबसे बड़ी खूबी है वह यह है कि चित्र गन्दा हो या अच्छा (कदाचित् भूठा हो या सच्चा) वह उसे पेश इस ढंग से करता है कि उस पर अविश्वास करने का जी नहीं होता। चित्र से उसकी खुद की सहानुभूति इतनी ज़बर्दस्त है, वह स्वयं उसमें इतना रँग गया है कि पहले इसके कि पाठक सत्यता-असत्यता पर बहस करे, मुपासाँ उसका ध्यान, उसका हृदय लेकर भाग खड़ा होता है। अपनी वस्तुओं और पात्रों के साथ इतनी ही सहानुभूति

प्रदर्शित करने में शरद् बाबू भी सफल हुए हैं। देवदास अच्छा था या रघुनाथ, किरणमयी सती थी या कलंकिनी इन प्रश्नों के पूछने के पहले ही पाठक देवदास या किरणमयी का हो रहता है।

मुपासाँ के साथ अलफ्राञ्जो दादे (Alphonse Dandet) और अनतोले फ्रांस (Anatole France) का भी नाम प्रसिद्ध फ्रेंच कहानी-कारों में आता है।

फ्रांस में कथा-आख्यानो ने यदि राजनीति का पथ-प्रदर्शन नहीं किया तो उसे जबर्दस्त सहायता अवश्य पहुँचाई।

यथार्थवाद और मानववाद की सृष्टि कर फ्रांस ने फिर कहानियों को जनता के निकट पहुँचाया।

फ्रांस ने कहानियों को काम्टे (Comte) के नाम से आधुनिक रूप दिया। कहानियाँ लिखने में वस्तु, पात्र के विधान (Technique), कथोपकथन, वातावरण, चरित्र-चित्रण आदि का विवेचनात्मक समावेश किया।

फ्रांस की कहानियों ने जहाँ पथ-प्रदर्शन का श्रेय पाया, वहाँ उसकी यह त्रुटि भी नहीं भूली जा सकती कि उसके द्वारा इन्द्रिय-लोलुपता को अत्यधिक प्रश्रय मिला।

फ्रांस से इंग्लैंड, अमेरिका और रूस जिस प्रकार प्रभावित हुए उसका वर्णन आगे आयेगा। फ्रेंच-साहित्य की जर्मनी में भी बड़ी रुज्जत थी। वोल्टेयर तो जर्मन बादशाह फ्रेडरिक के दरबार में तीन साल रहा और उनका बड़ा प्रियपात्र रहा। जर्मनी में कहानियाँ भी अच्छी गई और लिखी जाती हैं पर उनका विश्व-साहित्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है।

इंग्लैंड

‘England was won over very slowly to the ideal of the modern short story. Not until Robert

L. Stevenson, who came into prominence in 1877-78, did she find a man who consistently produced stories of this type worthy to rank with the noble achievements of America, Russia and France.'

(Alfred H. Upham in 'The Typical Forms of English Literature,' page 200)

‘इंग्लैंड बहुत धीरे-धीरे आधुनिक कहानियों के पक्ष में परिवर्तित किया जा सका। स्टीवेंसन के, जिनका उत्थानकाल १८७३-७८ था, प्रादुर्भाव के पूर्व, वहाँ कोई भी लेखक ऐसा नहीं था जो लगातार अमेरिका, रूस और फ्रांस के टक्कर की सुन्दर कहानियाँ लिखने में सफलता प्राप्त कर सका हो।’

(एलफ्रेड एच० अहम—दि टिपीकल फार्म्स ऑफ़ दैंग्लिश लिटरेचर, पृष्ठ २००)

इंग्लैंड स्वभाव से अनुदार है। नवीनता को स्वीकृत करने में उसे जितना संकोच है, उतना किसी योरपीय देश को नहीं है।

योरप के साहित्यिक-मध्यकाल में ग्रीक और लैटिन का उस पर जबर्दस्त प्रभाव पड़ा। काव्य और नाटक के क्षेत्रों में उसने क्रम बढ़ाये परन्तु लेखक अँगरेजी में बहुत डरते-डरते लिखते थे, क्योंकि अँगरेजी पंडितों की भाषा नहीं थी। शेक्सपियर के नाटकों को पढ़कर एक पंडित ने कहा था—‘यह मनुष्य इतनी कम ग्रीक और उससे भी कम लैटिन जानते हुए भी नाटक लिख लेता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है।’ एक बार जिन नाटकों और कविताओं को पकड़ लिया, अँगरेज फिर उमी दायरे में लिखते चले आये।

यही कारण है कि यद्यपि कहानियों का आरम्भ आदि आंग्ल कवि चासर ने ही कर दिया था, वे स्टीवेन्सन के काल तक आधुनिक रूप ग्रहण नहीं कर सकीं। कुछ उपन्यासकारों ने—थेकरी, डिकिन्स आदि अपने

कथानकों के बीच-बीच कहानियाँ लिखी परन्तु वे कहानियों के स्वतन्त्र रूप का विकास नहीं कर सके।

अँगरेज़ कहानी-लेखकों में स्काट, हार्डी, किपलिंग और स्टीवेन्सन प्रसिद्ध हैं। इनकी कहानियाँ अधिकतर चरित्र-चित्रण (Portrayal) पर जोर देती हैं, जो नाटक-उपन्यास का प्रधान गुण है, कहानियों का नहीं। फलस्वरूप अँगरेज़ी कहानियाँ अधिकतर लम्बी कहानियाँ हैं।

कहानियों की परिभाषा अँगरेज़ों की दृष्टि में यह है :—

‘The story needs to be nothing but a story, subject only to beauty which is identical with truth.’

(Prof. Hugh Walker)

in Selected English Short Stories.

‘कहानी को केवल कहानी होना ही आवश्यक है—उसमें सौंदर्य अवश्यंभावी है, जो कि स्वयं सत्य का प्रतीक है।’

(प्रो० ह्यू वाकर)

सिलेक्टेड इंग्लिश शार्ट स्टोरीज़ में

यह कविता की कोई पुरानी परिभाषा जान पड़ती है। इससे प्रत्यक्ष है कि अँगरेज़ों ने किसी नई विचार-धारा को नहीं अपनाया। यही कारण है कि उनके कहानी-साहित्य से कोई उन्नत देश प्रभावित नहीं हुआ—अमेरिका तक नहीं जो प्रायः निर्वासित अँगरेज़ों की आबादी है।

अँगरेज़ों की कहानियों में दो दुर्गुण हैं—

(१) कहानियों-द्वारा अन्य देशों, विशेषकर पराजित देशों का उपहास करना, उनकी सभ्यता और संस्कृति की निन्दा करना। ‘अमर’ अँगरेज़ कहानी-लेखक रुडयार्ड किपलिंग ने, केवल भारत को कलंकित करके अपने देश में अमरत्व प्राप्त किया है। उनके प्रभाव से अँगरेज़ी जनता की दृष्टि में भारत केवल शेरों और साँपों का निवासस्थान रह गया है। श्री डाक्टर मेघनाद साहा का कहना है—‘यह प्रश्न इंग्लैंड

में मुझसे बार-बार पूछा जाता था कि मैं भारत में शेरों और साँपों से अपनी रक्षा कैसे करता हूँ।'

(२) यद्यपि कला के नये-नये रूपों को इंग्लैंड नहीं अपना सका, परन्तु प्रेस और पत्र-पत्रिकाओं की माँगों की पूर्ति करने के लिए उसे बाध्य होना पड़ा। कहानियों की अतिक्रमणता का एक बहुत बड़ा कारण प्रेस की शीघ्र-मुद्रण-कला और पत्र-पत्रिकाओं की बाढ़ है। बिना कहानियों के ये दोनों आहत हो जायेंगे। अतएव इंग्लैंड में 'फार्मूला स्टोरीज' थड़ुल्ले से लिखी जा रही हैं, जिनकी परिभाषा यह है—

'निम्नकोटि की कहानियाँ जो हाल-हाल में अमेरिकन प्रेस की माँग के कारण अवतीर्ण हुई हैं। ये कहानियाँ सब एक ही माँचे में ढली होती हैं—अर्थात् मनोरजन-प्रधान और किसी भी विधि या हिकमन से सुखान्त।'

(अर्नेस्ट राइज कृत अमेरिकन शार्ट स्टोरीज)

इन कहानियों में न केवल कला का ह्रास होता है, वरन् वह इन्द्रिय-लोलुपता भी बढ़ती है जिसका साहित्यिक जन्म फ्रांस में हुआ था।

अमेरिका

'There is no other form of literature in which America is so eminent as in the writing of short stories.'

(Prof. Hugh Walker in The contemporary short story, page v.)

'साहित्य के और किसी विभाग में अमेरिका उतना उन्नत नहीं है जितना कहानी-विभाग में।'

(प्रो० ह्यू वाकर—दि कण्टेम्पोररी शार्ट स्टोरी पृ० ५)

• प्रो० ह्यू वाकर अंगरेज हैं। यो तो अंगरेजों ने उच्च कोटि के कहानी-कारों की न्यूनता के कारण अपने अनेक संकलनों में अमेरिकन कहानी-

लेखकों को सम्मिलित कर, जान बचाई है, परन्तु वाकर साहब का यह वाक्य, केवल खशामद नहीं बल्कि अक्षरगतः सत्य है।

आधुनिक कहानियों का यथार्थ आरम्भ लगभग १८४० से है, अर्थात् साहित्य का यह विभाग केवल १०० वर्ष पुराना है। इस अर्थ में कहानी को साहित्य का एक स्वतंत्र अंग मानने की हिम्मत सबसे पहले अमेरिका ने ही की। उसने कथा-साहित्य के तीन विभाग किये हैं—पाँच हजार शब्द तक छोटी कहानी, बारह हजार शब्द तक लम्बी कहानी और बीस हजार शब्द तक या उससे ऊपर उपन्यास।

आधुनिक कहानियों के उद्गम के समय से ही अमेरिका धन-धान्य से भरपूर है। वहाँ सर्वत्र दूध की नदियाँ बह रही हैं। इसलिए उसे कला को उद्देश्यपूर्ण करने की आवश्यकता नहीं हुई। कला का परिमार्जन करना ही उसका चरम उद्देश्य रहा है।

एल्फ्रेड एच० उपहम साहब ने अपनी पूर्वोल्लिखित पुस्तक, पृष्ठ १९९ में यह माना है कि पिछले वर्षों में अमेरिका की कहानियों पर फ्रांस का प्रभाव सर्वाधिक रहा है। पर फ्रांस के यथार्थवाद (Realism) ने अमेरिका में प्रभाववाद (Impressionism) का रूप धारण कर, कला की पूर्ति की। प्रभाववाद का वर्णन वे इस प्रकार करते हैं—

‘लेखक की कल्पना किसी ऐसे चोट करनेवाले स्थल को ग्रहण करती है जो उसके हृदय को अत्यधिक आन्दोलित करती हो। उसकी दृष्टि में जिस काल्पनिक सुख ने उसे गद्गद कर दिया है उसका मूल्य उन उपादानों से अधिक है जिन्होंने कि वह घटना उपस्थित की है। वह सुख (या दुःख) की इस अनुभूति को मुक्तक छन्दों (Lyrics) में न लिखकर कहानी में लिखता है। वह घटना कम काटकर, छाँटकर, सुधारकर कहानी में ढाल देता है। जैसे मुक्तक में एक ही भाव व्यक्त करने का प्रयत्न किया जाता है, उसी तरह कहानी का भाव भी केवल एक ही होता है। अतएव मुक्तक की तरह उसे व्यक्त करने के लिए कहानी को इतनी छोटी होना पड़ता है जितनी कि वह सुन्दरता से सिक्कड़ सके।’

अमेरिका का कहानी-काल हाथर्न और इरविंग (१७८३-१८५९) से माना जाता है, परन्तु जिस लेखक का प्रभाव न केवल अमेरिका वरन् इंग्लैंड, फ्रांस और रूस पर भी पड़ा वह एडगर अलन पो (Edgar Allen Poe) था (१८०९-१८४९)। पो प्रभाववाद का सर्वोत्कृष्ट कलाकार माना गया है। पो की कविता और कहानियों का लोहा साग योरोप मानता है। जासूसी कहानियाँ, जो कौतूहल पर अवलंबित हैं, पो-द्वारा ही शुरू की गईं। अमेरिका में आलोचनात्मक साहित्य का आरम्भ भी उमी ने किया। कहानी-लेखकों के लिए उसका निबन्ध दि फिलॉसफी ऑफ़ काम्पोज़िशन (The Philosophy of Composition) पठन की एक अनिवार्य सामग्री है।

उसकी चर्चा करते हुए डब्ल्यू० पी० ट्रेण्ट और जान इर्मस्कीन अपनी पुस्तक 'ग्रेट राइटर्स ऑफ़ अमेरिका' (Great Writers of America by W. P. Trent and John Erskine) में यों लिखते हैं :—

‘पो कहता है—कविता का उद्देश्य सौंदर्य की विपरीतता को अभिव्यक्त करना है; वह सौंदर्य नहीं जिसे हम चर्म-चक्षु से देखते हैं वरन् वह सौंदर्य जो हम स्वप्न में ही देख सकते हैं। अतएव कविता तथा अन्य उत्कृष्ट कलायें वास्तविकता के घेरे में अवरुद्ध नहीं हैं। कलाकार आदर्श के सृजन के लिए वास्तविकता में हेर-फेर कर सकता है। (पृ० १०४)

× × × ×

‘प्रत्येक सुन्दर कहानी और कविता अन्त से आरम्भ कर आदि की ओर लिखी जानी चाहिए। (पृ० १०६)

× × × ×

‘कुछ एक कहानियों को छोड़कर पो अपनी अधिकतर कहानियों में सम्भाषण का कोई प्रयोग नहीं करता था। (पृ० १०१)

× × × ×

‘पो लगभग अपनी सभी कहानियों में पहले एक थियरम बना लेता

या और फिर एक गणितज्ञ की तरह उसे प्रमाणित करता था। कहानी के पात्रों का प्रयोग वह गणित के अंकों के समान करता था।' (पृ० ९८)

स्मरण रहे कि कहानी की रचना-विधान (Technique) का आरम्भ अमेरिका से ही हुआ था। वहाँ से सबसे अधिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। वहाँ अनेक स्कूल कहानी-लेखक तैयार करने के हैं—शिक्षक-द्वारा तथा डाक-द्वारा। वहाँ का इतना बड़ा कलाकार सब विधानों के प्रतिकूल कहानी को उलटा आरम्भ करने के लिए कहता है, सम्भाषण को अनावश्यक समझता है, मुँह से कहता है कहानी स्वप्न में ही देखी जा सके ऐसा सौंदर्य है और प्रयोग में सबसे गद्यात्मक वस्तु थियरम लकर गणितज्ञों की भाँति हल करने बैठता है।

और भी सुनिए! एच० ई० बेट्स कहते हैं—'आरम्भ से ही मैं वस्तु (प्लॉट) की ओर से उदासीन रहा हूँ।' यदि अमेरिकन लेखक जो हेनरी भी प्लॉट से उदासीन रहते, तो कदाचित् एक भी कहानी न लिख पाते।

रूस के नम्बर एक कहानी-लेखक शेकफ़ कहते हैं—'कहानी का न कोई आदि होना चाहिए न अन्त।' तब किप्लिंग साहब के लिए कहानी-क्षेत्र में कोई स्थान बचा या नहीं?

इन सब विरोधी वक्तव्यों का केवल एक ही मतलब है। अमेरिका न कहानी को उठाकर कला की कोटि में रख दिया और कला की कोई परिभाषा नहीं है।

जिस प्रकार कविता वही है जो जन्मजात कवि लिख दे, उसी प्रकार कहानी भी वही है जो स्वाभाविक स्फूर्ति से प्रकट हो।

भारतीय नाट्यकार द्विजेन्द्रलाल राय ने भी कहा है कि वे दृश्य क्रमवार न लिखकर जो, जिस समय कल्पना में उमड़ पड़ता था, लिख डालते थे।

इन सबसे अधिक सीधी बात जान गाल्सवर्दी ने कही है—'कहानी के लिए यह अनिवार्य है कि उसमें वाक्य-प्रति-वाक्य रोचकता पैदा

करने की शक्ति हो।' बात वही है। वह उपन्यास या महाकाव्य नहीं है जो अध्याय-प्रति-अध्याय या खण्ड-प्रति-खण्ड रोचकता दिखाय। वह गीत है। उसका हर वाक्य चोट करनेवाला होना चाहिए।

उपहम साहब तो कहते ही हैं—'आदर्श कहानी की बनावट 'सानेट' (पद) के समान ठोस होनी चाहिए।' इसका अर्थ हुआ कि उसका शब्द-प्रति-शब्द रोचक होना चाहिए।

और आगे चलकर अमेरिकन लेखक ब्रेट हार्ट (Bret Harte) मार्क ट्वेन (Mark Twaine) ओ' हेनरी (O' Henry) आदि न यही किया।

अमेरिका पाश्चात्य देशों से भी अधिक पश्चिमीय है। वह गति-अवरोध नहीं सह सकता। वह गति (Speed) का बादशाह है। कविता लिखने और पढ़ने दोनों में गति-अवरोध है। उसने कहानियाँ माँगी। इन लोगों ने कहानियाँ दीं।

उसके पास समय कम था। इन्होंने कहानियों को उतनी छोटी कर दिया जितनी वे सुन्दरता से सिकुड़ सकती थीं।

वह रोना नहीं चाहता था। इन्होंने कहानी में हास्यरस लगभग अनिवार्य कर दिया।

वह आत्मगौरव से मत्त था। इन्होंने कहानियों में स्थानीयता का पुट (Local color) दिया।

यहाँ तक तो कुशल थी। जान कुरनोस (John Curnos) अमेरिकन शार्ट स्टोरीज की भूमिका में लिखते हैं—'प्रजातंत्रात्मक देश में साहित्य के रूप को स्थिर करने का अधिकार जनता के हाथों में रहता है। अन्य किसी देश में 'माँग' और 'पूर्ति' का नियम जनमत के अनुकूल इस सीमा तक नहीं पाला गया, जितना अमेरिका में।'

परन्तु जब प्रेस ने माँग की कि हमारी मशीनों की गति के अनुकूल दिन में चार कहानियाँ उगलो, तब अमेरिका में फार्मूला कहानियाँ लिखी जाने लगीं। जिनके कारण कला का दिन-प्रति-दिन ह्रास हो रहा है।

इन कहानियों का सबसे बड़ा दुर्गुण इन्द्रिय-लोलुपता है।

परन्तु क्या प्रेस और जनता एक ही वस्तु है? क्या प्रेस और जनता की पूँजी समान है? यह चवन्नी-जनता तो बड़ी भयानक, बड़ी खूँखार चीज़ है। उसे धोखा देना तो शत-प्रति-शत असम्भव है। चार दिन उसकी पूजा पाकर अपने आपको धोखा दिया जा सकता है, उसे नहीं। फ्रैंक नाग्स का कहना है—‘In the last analysis people are always right’ (जनता की अंतिम विवेचना हमेशा सच होती है)।

इसलिए अमेरिकन कहानियों के बारे में अभी अंतिम धारणा बना लेना उचित नहीं होगा।

विचार-धारा की दृष्टि से अमेरिका प्रभाववाद की ओर गतिशील हुआ। कहानियों के रूप रंग की उसने बहुत-सी तबदीलियाँ कीं जिसके फलस्वरूप वह हालीउड की अभिनेत्री हो गई।

कहानियों का नया मार्ग—फ़िल्मी कहानियाँ—भी अमेरिका में खुला हुआ है पर साहित्य में उसके समावेश करने की इच्छा और सामर्थ्य मुझमें नहीं है।

रूस

‘Everything is subordinated to two main requirements—humanitarian ideals and fidelity to life. This is the secret of the marvellous simplicity of Russian literary art.’

(Thoms seltzer in Best Russian Short stories.)

‘दो प्रधान आवश्यकताओं के लिए प्रत्येक वस्तु को झुकना पड़ता है—मानवीय आदर्श और जीवन के प्रति सच्चाई। यही रूसी साहित्य-कला की चमत्कारपूर्ण सादगी का रहस्य है।’

(टामस सेल्ज़र—वेस्ट रशियन शार्ट स्टोरीज़ में)

जैसा आप ऊपर पढ़ रहे हैं, रूस को वैसा ही पायेंगे। वहाँ जो कुछ है साफ़ है, सीधा है, खरा है—आपको पसंद हो या न हो।

उदाहरण के लिए इंद्रिय-लोलुपता ही ले लीजिए। लोलुपता की यह विश्वव्यापी लहर से रूस बच नहीं सकता था। लोलुपता मानवीय आदर्श की कोटि को पहुँच गई थी। जीवन के सच्चे चित्रण में उसका पग-पग पर स्थान था। तब उसे पाप कह कर मनुष्य को कब तक दंड दिया जाय ? रूस ने ऐसे राजनीतिक नियम बना दिये कि स्त्री-पुरुष का प्रेम स्वच्छन्द हो गया। जो कल तक पाप था वह आज स्वाभाविक घटना हो गई। आपको पसंद हो या न हो।

धर्म रूढ़िगत हो गया था, खोखला हो गया था। उसमें पुण्य से अधिक पाप की प्रेरणा थी। एक कलम से उसकी इतिश्री कर दी गई। आपको पसंद हो या न हो।

और यह सब बहुत अंश में कहानियों द्वारा हुआ।

फ्रांस की रूस में बहुत इज्जत थी। एक ज़माने में जो रूसी फ्रेंच नहीं बोल सकता था, वह शिक्षित नहीं समझा जाता था। इसलिए फ्रेंच कहानियों से रूसियों का प्रभावित होना अनिवार्य था।

रूस की समस्या फ्रांस से मिलनी-जुलती थी। यदि फ्राम के बादशाह लुई वाजिदअली शाह थे, तो रूस के ज़ार वाजिदअली शाह और नादिर शाह दोनों थे। प्रजा त्राहि-त्राहि कर रही थी।

उधर अमेरिका ने फ्रांस के यथार्थवाद को प्रभाववाद में परिवर्तित कर कला का रूप दिया, इधर रूस ने फ्रांस के मानववाद (Humanism) को क्रांतिवाद या प्रगतिवाद का रूप दे दिया।

रूस आधा योरोपीय और आधा एशियाई तो है ही। सबसे पहले काउण्ट टाल्सटाय ने आदि-सभ्यता की ओर लौटने का आदर्श जनता के सम्मुख रक्खा। उनका कहना था कि आदि काल के सादे जीवन और विडम्बनाहीन ईसाइयत को फिर से अपना लेने में ही जनता की मुक्ति है। कुछ-कुछ यही आदर्श महात्मा गांधी ने भी स्थापित किया है।

काउण्ट टाल्सटाय ने इन आदर्शों को सम्मुख रख अनेक उपन्यास और कहानियाँ लिखीं जो संसार भर में यशस्वी हुईं।

सन् १८३४ के लगभग पुश्किन ने भी यथार्थवादी कहानियाँ लिखना शुरू किया। पर उसे अधिक सफलता नहीं मिली। वह स्वच्छन्दतावाद की ओर अधिक भुक्ता था इसलिए उसके यथार्थवाद में रोचकता की कमी पड़ जाती थी।

इस कमी की पूर्ति तुर्जनेव, गोर्की और शेकफ ने की। इन्हें एक विशेष उपाय से सफलता की कुंजी प्राप्त हो गई। पहले ये जनता को क्रांति का उपदेश देने के लिए ठेठ निबन्ध लिखते थे। उन्हें पढ़, सरकार इन्हें जेलों में ठूस देती थी। वहाँ इन्होंने निबन्धों की सामग्री कहानियों में भरने की बात मोची। रिहा होने पर ये प्रयोग अधिक सफल जान पड़े, परन्तु उनमें रोचकता की कमी रह गई।

जैसे-जैसे सरकारी क्रूरता बढ़ती गई वैसे वैसे क्रांति में इनका विश्वास दृढ़ होता गया। अन्त में विश्वास इतना दृढ़ हुआ कि वह बिना वास्तविक क्रांति के ही मूर्तिमान हो उठा। यही कल्पना की पराकाष्ठा है। इस उँचाई से जो कुछ लिखा जायगा, वह कला का उत्कृष्ट रूप होगा।

रूसी माँग के बारे में टामस सेल्जर साहब यह कहते हैं—‘कहानियों को जीवन का सच्चा दर्पण होना चाहिए। कहानियों को जीवन के लिए लाभप्रद होना चाहिए।’

रूसी कहानी-लेखकों के विश्वास के बारे में सेल्जर साहब यह कहते हैं—‘अमेरिकन कलाकार को अपने प्लाट पर उतना विश्वास नहीं है जितना रूसी कलाकार को अपने उद्देश्य (Cause) पर है।’

इस प्रकार अर्ध-एशियाई रूसियों ने हमें वहीं ला पहुँचाया, जहाँ से हमने यात्रा आरम्भ की थी। यही तो वेद-उपनिषद-काल की कहानियों का आदर्श था—भक्ति और प्रेम के संयुक्त रूप श्रद्धा द्वारा आदर्श पर विश्वास।

सब परिभाषाओं, सब विधानों को एक किनारे रख कला यह कहती

है—‘मैं तुम्हारी दासी हूँ यदि तुम उस विषय पर लिखते हो जिस पर तुम कर्म, वचन, मन से विश्वास भी करते हो।’

रूसी और भारतीय आदर्शों में भेद हो सकता है पर उनकी विधि वही है जो आदि काल में भारत की थी।

भारत—आधुनिककाल

हिन्द में गद्य का प्रादुर्भाव कैसे हुआ और कहानियों का विकास किस सीमा तक हो चुका है, आचार्य पंडित रामचन्द्र शर्मा के इतिहास की समुपस्थिति में, वह सब लिखकर मैं पृष्ठ-पेषण नहीं करूँगा।

विचार-धारा की पृष्ठ-भूमि में कहानियों का क्या स्थान है—यह मेरा उद्देश्य था। मेरा अध्ययन उतना ही शिथिल है, जितना कि मेरा विश्वास अधकचरा है। अतएव मेरे मत और धारणाओं में विभिन्नता हो सकती है। फिर भी जो दृष्टिकोण (Premises) मैंने बना लिए हैं उनका अंतिम लक्ष्य चित्रित करने की जिम्मेदारी मुझ पर अवश्य है।

मेरा इरादा था कि इस संकलन में जो कहानियाँ दी गई हैं, उन पर, उनकी विचार-धारा पर अपना मत प्रकट करूँ, परन्तु अब मैं इस पाप-पुण्य का भागी नहीं बनूँगा। यदि मेरा दृष्टिकोण ठीक है, तो उनका वर्ग-विभाजन, उनका मूल्यांकन आप स्वयं कर सकते हैं। आशा है यह कार्य रोचक सिद्ध होगा।

मैंने यह कहा है कि आधुनिक कहानियाँ लगभग सन् १८४० से आरम्भ हुई हैं, उनका जीवन सौ वर्ष का ही है। भारतीय आधुनिक कहानियों का जीवन भी लगभग पचास वर्ष का है। कथा-मर्मज्ञ भारत के लिए अन्य देशों के पचास वर्ष का अग्रुआपन (Lead) कोई बड़ी बात नहीं है। मेरी यह धारणा है कि सर्वश्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरदचन्द्र चट्टोपाध्याय, प्रेमचन्द, कन्हैयालाल मुंशी कहानी-कला में किसी पाश्चात्य लेखक से पीछे नहीं हैं। भारतीय भाषायें पराधीनता के कारण चाहे

जितनी पतित समझी जायें, कला की दृष्टि से भारतीय कहानियाँ किसी से हेय नहीं हैं।

अब तक अँगरेजी (English-edited) कहानी-संकलनों में मुझे केवल रवि बाबू और श्री मुल्कराज आनंद की कहानियों को देखने का सीभाग्य प्राप्त हुआ है। यदि इन संकलनों में अन्य भारतीय कहानियों को स्थान पाना कोई श्रेय की बात है, तो कुछ उच्च शिक्षित नवयुवकों को सर्वश्री शरदचन्द्र, प्रेमचन्द और कन्हैयालाल मुंशी की कहानियों का अँगरेजी अनुवाद करना चाहिए।

एक बात, पढ़ने और लिखने के बारे में, अंतर्हित रह गई। एक गवैया मुझसे कहता था—‘चीजें तो मेरे पास एक से एक हैं, पर कोई सुननेवाला तो हो!’ ठीक सुनने की परीक्षा (Test) यह है कि सुननेवाला यह अनुभव करने लगे कि वह स्वयं गा रहा है। पढ़ने का भी यही परीक्षा (Test) है। यदि चीज अच्छी है और पढ़नेवाला यह अनुभव करने लगता है कि यह मेरी ही लिखी हुई है, मैं ही इसका पात्र हूँ, मैं ही इसकी पात्री हूँ, तो लेखक के अंतिम उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है। मेरी दृष्टि में ठीक पढ़ना ठीक लिखने का निश्चित आरम्भ है।

पढ़ने के लिए पूर्वानुराग (Preconceived good opinion) और वातावरण (Associations) का ज्ञान आवश्यक है।

उदाहरण के लिए एक पक्ति लीजिये—

‘कौन-कौन तुम परिहत-वसना

म्लानमना भूपतिता-सी?’

पूर्वानुराग यह है कि हिन्दी की कविता अच्छी होती है और पंत जी अच्छे कवि हैं।

एसोसियेशन्स ये हैं—

आरम्भ महाकवि मधुसूदन दल के ठाठ से किया गया है—‘कौन-कौन तुम हो युवती-सी।’

‘परिहत वसना’ एकदम दमयन्ती को इंगित करती है।

‘म्लानमना, भूपतिता’ जयदेव की सी शब्दावली है।

कवि का वृक्ष की छाया को इन कोमल शब्दों से घेर देना हृदय को मुग्ध कर देता है।

यही पंक्ति उस पाठक को जिसमें पूर्वानुगम और अनुकूल एमोर्सि-येशनस का ज्ञान नहीं है, ‘म्लानमना’ शब्द ‘महामना’ का पर्यायवाची प्रतीत हो सकता है।

दो बातें और हैं, एक तो यह कि सन् १९१८ से शिक्षा-विभाग भारतीयों के हाथ आ गया है। यह अधिकार प्राप्त किये हमें चौबीस साल हो चुके। क्या इस बीच में भारतीय शिक्षा भारतीय आदर्शों व अनुकूल हुई है? क्या हमारे उच्च शिक्षित नवयुवक यह अनुभव नहीं करते कि भूमि, व्यापार, व्यवसाय के एवज उनका भविष्य नौकरी पर, लिखा-पढ़ी (Clericalism) पर निर्भर है? यह क्यों? हमारे साहित्यिक राजनीति के इतने अनकरणशील क्यों रहे कि देश के सर्वप्रधान प्रश्न पर भी उन्होंने अपने दास-वृत्ति का परिचय दिया? यदि यह मान लिया जाय कि दस साल की उच्च शिक्षा के बाद, अर्थात् सत्रह साल की आयु में एक स्वावलम्बी गीढ़ी (यदि शिक्षा आवश्यकताओं के अनुकूल हो) तैयार हो सकती है, तो आज तक ऐसी चौदह पीढ़ियाँ तैयार हो सकती थीं। यह एक सत्य है। सत्य पर विश्वास कर लिया जाय तो साहित्य अवलम्बन-मात्र है। क्या हमारे साहित्यिकों ने कला के केवल कौतूहलपूर्ण, चमत्कारपूर्ण और वासनापूर्ण मार्गों का ही अवलम्बन किया और चरमकोटि की आवश्यकता के प्रति आँखें मूंद ली? क्या साहित्य और कला राजनीति की अँगुली पर इस प्रकार नृत्य करने लगी? यदि हाँ, तो हिन्दी-साहित्य की यथार्थ देन पिछले पचास वर्षों में शून्य है।

शिक्षा की आवश्यकता यदि १९१८ में नहीं थी, आज भी नहीं है तो उस वक्त जरूर होगी जब भारत स्वाधीन होगा। शिक्षा का उद्देश्य इतनी भूमिति और इतना भूगोल जानना नहीं है वरन् कुछ

आदर्शों पर विश्वास करना है। जब तक जनता इसके लिए तैयार नहीं है, तब तक स्वाधीनता नर्क से अधिक अपेक्षीय नहीं हो सकती।

कहानियों के लिए यह विषय गद्यात्मक प्रतीत होता है परन्तु मेरी धारणा के अनुसार यदि इस पर विश्वास किया जाय तो उच्चातिउच्च कला का प्रदर्शन इस क्षेत्र में हो सकता है।

दूसरी बात यह है। हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के लिए जो भारत की सर्वप्रधान समस्या है, हिन्दी-साहित्यिकों ने क्या किया है? मैं यह मानता हूँ कि श्री प्रेमचन्द जी ने इस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का उत्कृष्टतम उपयोग किया है। परन्तु क्या वह पर्याप्त है?

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य आज भारत का नकशा बदल सकता था।

मैंने ये दो आदर्श प्रयोग के रूप में आपके सम्मुख रखे हैं। भारत की समस्याओं का कोई आदि-अंत नहीं। हरिजन कितनी जल्दी उन्नति कर? महिलाएँ क्या स्थान ग्रहण करें? इस प्रकार की एक सौ एक समस्याएँ मौजूद हैं। कहानियों का इन समस्याओं पर क्रांतिपूर्ण प्रभाव पड़ना चाहिए। खेद है कि जनता की माँग की पूर्ति नहीं हो पा रही है।

कहानियों का इन समस्याओं को सुलभाना जिस प्रकार संभव है, वह मेरे दृष्टि-कोण से यह है—

(१) कोई समस्या लीजिए।

(२) उस पर इतना विश्वास कीजिए कि वह आपका जीवन हो जाय।

(३) उस पर आक्रमण कीजिए।

(४) आपके आक्रमण से कुछ नहीं होगा यदि आप तुलसीदास और मूरदास नहीं हैं। अतएव आप संगठन कीजिए और अन्य कहानी-लेखकों की सहायता से समस्याओं पर सामूहिक (Collective) आक्रमण कीजिए।

(५) कला की कमी की पूर्ति अपने विश्वास से कीजिए।

ये रास्त, या इन्ही के समान अन्य रास्ते कहानी-लेखको के लिए खुले हुए हैं। भारत के समान पराधीन देश में विशुद्ध कला को कोई स्थान नहीं है। यहाँ उद्देश्यपूर्ण कला ही वे रास्ते खोल सकती है जहाँ कालिदास और भवभूति आगे चलकर अपनी छटा दिखा सकें।

रामानुजलाल श्रीवास्तव

**वे पुस्तकें जिनसे इस भूमिका के लिखने में
सहायता ली गई है**

- The Outline of Literature by John Drinkwater.
(George Newnes Ltd., Southampton St. Strand
WC 2)
- Outlines of French Literature by L. J. Gardiner.
(University Tutorial Press Ltd., High St. London)
- A History of French Literature by C. H. Courad
Wright. (Oxford University Press)
- The Foreign Debt of English Literature by T. G.
Tucker. (George Bell and Sons, London)
- The Typical Forms of English Literature by Alfred
U. Upham. (Oxford University Press)
- Modern Short Stories edited by John Hadfield.
(J. M. Dent and Sons Ltd. London)
- Great Writers of America by W. P. Trent and
John Erskine. Williams and Norgate, London)
- Best Russian Short Stories edited by Thomas
Seltzer, (The Modern Library, New York)
- Modern Fiction edited by Frank Swinnerton.
(Thomas Nelson and Sons Ltd., London)
- American Short Stories of the XIX Century
by Ernest Rhys. (J. M. Dent and Sons Ltd.,
(London)

Spanish Short Stories of the XVI Century edited
by J. B. Trend. (Oxford University Press)

Selected English Short Stories edited by Hugh
Walker. (Oxford University Press)

Shorter Novels edited by Ernest Rhys. (J. M.
Dent and Sons Ltd., London)

हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल

The World's Thousand Best Short Stories. (The
Masterpiece Library of Short Stories) The
Educational Book company, Ltd., London.

A Treasury of Great Short Stories. (Collins' Clear
Type Press, London)

Great English Short Stories. (Blue Ribbon Books,
Inc., New York)

The Worlds' Greatest Short Stories. (The Home
Library Club, Bombay)

Great French Short Stories. (Harper Brothers,
London)

The Worlds' Library of Best Books Vol. VI.
(George Newnes Ltd., London)

The New Wonder World (Story and Art) Vol. V.
(George L. Shuman and Co., Chicago)

विवेचनात्मक गल्प-विहार

१—दो बैलां की कथा

[श्री प्रेमचन्द]

(१)

जानवरों में गधा सबसे बुद्धिहीन समझा जाता है। हम किसी आदमी को पल्ले दरजे का बेवकूफ कहना चाहते हैं, तो उसे गधा कहते हैं। गधा सचमुच बेवकूफ है या उसके सीधेपन, उसकी निरापद सहिष्णुता ने उसे यह पदवी दे दी है, इसका निश्चय नहीं किया जा सकता। गाएँ सींग मारती हैं, ब्याई हुई गाय तो अनायास ही सिंहिनी का रूप धारण कर लेती है। कुत्ता भी बहुत गरीब जानवर है, लेकिन कभी-कभी उसे भी क्रोध आ ही जाता है; लेकिन गधे को कभी क्रोध करते नहीं सुना, न देखा। जितना चाहो गरीब को मारो, चाहे जैसी खराब सड़ी हुई घास सामने डाल दो, उसके चेहरे पर कभी असन्तोष की छाया भी न दिखाई देगी। वंशाख में चाहे एकाध बार कुलेल कर लेता हो; पर हमने तो उसे कभी खुश होते नहीं देखा। उसके चेहरे पर एक स्थायी विषाद स्थायीरूप से छाया रहता है। सुख-दुख, हानि-लाभ, किसी दशा में भी उसे बदलते नहीं देखा। ऋषियों-मुनियों के जितने गुण हैं, वह सभी उसमें पराकाष्ठा को पहुँच गये हैं; पर आदमी उसे बेवकूफ कहता है। सद्गुणों का इतना अनादर कभी नहीं देखा। कदाचित् सीधापन संसार के लिए उपयुक्त नहीं है। देखिए न, भारतवासियों की अफ्रीका में क्यों दुर्दशा हो रही है? क्यों अमेरिका में उन्हें घुसने नहीं दिया जाता? बेचारे शराब नहीं पीते, चार पैसे कुसमय के लिए बचाकर

रखते हैं, जी तोड़कर काम करते हैं, किसी से लड़ाई-भगड़ा नहीं करते, चार बातें सुनकर गम खा जाते हैं; फिर भी बदनाम है। कहा जाता है, वे जीवन के आदर्श को नीचा करते हैं। अगर वे भी ईंट का जवाब पत्थर से देना सीख जाते, तो शायद सभ्य कहलाने लगते। जापान की मिसाल सामने है। एक ही विजय ने उसे संसार की सभ्य जातियों में गण्य बना दिया।

लेकिन गधे का एक छोटा भाई और है, जो उससे कुछ ही कम गधा है, और वह है 'बैल'। जिस अर्थ में हम 'गधा' शब्द का प्रयोग करते हैं, कुछ उसी से मिलते-जुलते अर्थ में बैलिया के ताऊ का प्रयोग भी करते हैं। कुछ लोग बैल को शायद बेवकूफी में सर्वश्रेष्ठ कहेंगे। हमारा विचार ऐसा नहीं। बैल कभी-कभी मारता भी है; कभी-कभी अड़ियल बैल भी देखने में आ जाता है। और भी कई रीतियों से वह अपना असन्तोष प्रकट कर देता है; अतएव उसका स्थान गधे से नीचा है।

भूरी काछी के दोनों बैलों के नाम थे हीरा और मोती। दोनों पछाँई जाति के थे। देखने में सुन्दर, काम में चौकस, डील ऊँचे। बहुत दिनों साथ रहते-रहते दोनों में भाई-चारा हो गया था। दोनों आमने-सामने या आसपास बैठे हुए, एक-दूसरे से गूक भाषा में विचार-विनिमय करते थे। एक-दूसरे के मन की बात कैसे समझ जाता था, हम नहीं कह सकते। अवश्य ही उनमें कोई ऐसी गुप्त शक्ति थी, जिससे जीवों में श्रेष्ठता का दावा करनेवाला मनुष्य वंचित है। दोनों एक-दूसरे को चाटकर और सूँघकर अपना प्रेम प्रकट करते। कभी-कभी दोनों सींग भी मिला लिया करते थे। विग्रह के भाव से नहीं केवल विनोद के भाव से, आत्मीयता के भाव से, जैसे दोस्तों में घनिष्ठता होते ही धीलधप्पा होने लगता है। इसके बिना दोस्ती कुछ फुसफुसी, कुछ हलकी-सी रहती है, जिस पर ज्यादा विश्वास नहीं किया जा सकता। जिस वक्त ये दोनों बैल हल या गाड़ी में जोत दिये जाते और गरदनें हिला-हिलाकर चलते, तो हरेक की यही चेष्टा होती थी कि ज्यादा से ज्यादा बोझ मेरी ही गर्दन पर रहे।

दिन भर के बाद दोपहर या संध्या को दोनों खुलते, तो एक-दूसरे को चाट-चूटकर, अपनी थकान मिटा लिया करते। नाँव में खली-भूसा पड़ जाने के बाद दोनों साथ उठते, साथ नाँव में मुंह डालते और साथ ही बैठते थे। एक मुंह हटा लेता तो दूसरा भी हटा लेता था।

संयोग की बात, भूरी ने एक बार गोंई को ससुराल भेज दिया। बेलों को क्या मालूम, वे क्यों भेजे जाते हैं। समझे मालिक ने हमें बेच दिया। अपना यों बेचा जाना उन्हें अच्छा लगा या बुरा, कौन जाने; पर भूरी के साले गया को घर तक गोंई ले जाने में दाँतों पसीना आगया। पीछे से हाँकता तो दोनों दायें-बायें भागते, पगहिया पकड़कर आगे से खींचता, तो दोनों पीछे को जोर लगाते। मारता तो दोनों सींग नीचे करके हुंकारते। अगर ईश्वर ने उन्हें बाणी दी होती, तो भूरी से पूछते—तुम हम गरीबों को क्यों निकाल रहे हो? हमने तो तुम्हारी सेवा करने में कोई कसर नहीं उठा रखी। अगर इतनी मेहनत से काम नहीं चलता था, तो और काम लेते। हमें तो तुम्हारी चाकरी में मर जाना कुबूल था। हमने कभी दाने-चारे की शिकायत नहीं की। तुमने जो कुछ खिलाया, वह सिर झुकाकर खा लिया; फिर तुमने हमें इस जालिम के हाथ क्यों बेच दिया?

सन्ध्या समय दोनों बेल अपने नये स्थान पर पहुँचे। दिन भर के भूखे थे, लेकिन जब नाँव में लगाये गये तो एक ने भी उसमें मुंह न डाला। दिल भारी हो रहा था। जिसे उन्होंने अपना घर समझ रक्खा था, वह आज उनसे छूट गया था। यह नया घर, नया गाँव, नये आदमी, सब उन्हें बेगानों से लगते थे।

दोनों ने अपनी मूक भाषा में सलाह की, एक-दूसरे को कनखियों से देखा और लेट गये। जब गाँव में सोता पड़ गया, तो दोनों ने जोर मारकर पकहे तुड़ा डाले और घर की तरफ चले। पगहे बहुत मजबूत थे। अनुमान न हो सकता था कि कोई बेल उन्हें तोड़ सकेगा, पर इन दोनों में इस समय दूनी शक्ति आगई थी। एक-एक झटके में रस्सियाँ टूट गईं।

भूरी प्रातःकाल सोकर उठा, तो देखा बैल चरनी पर खड़े हैं। दोनों की गरदनो में आधा-आधा गराँव लटक रहा है। घुटनों तक पाँव कीचड़ से भरे हैं और दोनों की आँखों में विद्रोहमय स्नेह भलक रहा है !

भूरी बैलों को देखकर स्नेह से गद्गद हो गया। दौड़कर उन्हें गले लगा लिया। प्रेमालिंगन और चुम्बन का वह दृश्य बड़ा ही मनोहर था।

घर और गाँव के लड़के जमा हो गये और तालियाँ बजा-बजाकर उनका स्वागत करने लगे। गाँव के इतिहास में यह घटना अभूतपूर्व न होने पर भी महत्त्वपूर्ण थी। बाल-सभा ने निश्चय किया कि दोनों पशु-वीरों को अभिनन्दन-पत्र देना चाहिए। कोई अपने घर से रोटियाँ लाया, कोई गुड़, कोई चोकर, कोई भूसी।

एक बालक ने कहा—“ऐसे बैल किसी के पास न होंगे।”

दूसरे ने समर्थन किया—“इतनी दूर से दोनों अकेले चले आये।”

तीसरा बोला—“बैल नहीं हैं वे, उस जनम के आदमी हैं।”

इसका प्रतिवाद करने का किसी को साहस न हुआ।

भूरी की स्त्री ने बैलों को द्वार पर देखा, तो जल उठी। बोली—“कैसे नमकहराम बैल हैं कि एक दिन भी वहाँ काम न किया और भाग खड़े हुए।”

भूरी अपने बैलों पर यह आक्षेप न सुन सका। बोला—“नमकहराम क्यों हैं ? चारा-दाना कुछ न दिया होगा, तो क्या करते ?”

स्त्री ने रोब के साथ कहा—“बस, तुम्हीं तो बैलों को खिलाना जानते हो और तो सभी पानी पिला-पिलाकर रखते हैं।”

भूरी ने चिढ़ाया—“चारा मिलता तो क्यों भागते ?”

स्त्री चिढ़ी—“भागे इसलिए कि वे लोग तुम जैसे बुद्धुओं की तरह बैलों को सहलाते नहीं। खिन्नाते हैं, तो रगड़कर जोतते भी हैं। यह दोनों ठहरे कामचोर, भाग निकले। अब देखूँ कहाँ से खली और चोकर मिलता है। सूखे भूसे के सिवा कुछ न दूँगी, खाएँ चाहे मरें।”

यही हुआ। मजूर की कड़ी ताकीद कर दी गई कि बैलों को खाली सूखा भूसा दिया जाय।

बैलों ने नाँद में मुँह डाला, तो फीका-फीका ! न कोई चिकनाहट, न कोई रस। क्या खाएँ ? आँखा भरी आँखों से द्वार की ओर ताकने लगे ।

भूरी ने मजूर से कहा—“थोड़ी-सी खली क्यों नहीं डाल देता बे ?”

“मालकिन मुझे मार ही डालेंगी।”

“चुराकर डाल आ।”

“ना दादा, पीछे से तुम भी उन्हीं-की-सी कहोगे।”

दूसरे दिन भूरी का साला फिर आया और बैलों को ले चला। अबकी उसने दोनों को गाड़ी में जोता।

दो-चार बार मोती ने गाड़ी को खाई में गिराना चाहा, पर हीरा ने सँभाल लिया। वह ज्यादा सहनशील था।

संध्या समय घर पहुँचकर उसने दोनों को मोटी रस्सियों में बाँधा और कल की शरारत का मजा चखाया। फिर वही सूखा भूसा डाल दिया। अपने दोनों बैलों को खली, चूनी सब कुछ दी।

दोनों बैलों का ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ था। भूरी इन्हें फूल की छड़ी से भी न छूता था। उसकी टिटकार पर दोनों उड़ने लगते थे। यहाँ मार पड़ी। आहत सम्मान की व्यथा तो थी ही, उस पर मिला सूखा भूसा। नाँद की तरफ आँखें भी न उठाईं।

दूसरे दिन गया ने बैलों को हल में जोता; पर इन दोनों ने जैसे पाँव उठाने की क्रसम खा ली थी। वह मारते-मारते थक गया, पर दोनों ने पाँव नहीं उठाया। एक बार जब उस निर्दयी ने हीरा की नाक में खूब डंडे जमाये, तो मोती का गुस्सा क्राभू के बाहर हो गया। वह हल लेकर भागा। हल, रस्सी, जुआ, जोत सब टट-टाटकर बराबर हो गया। गले में बड़ी-बड़ी रस्सियाँ न होतीं, तो दोनों पकड़ाई न आते।

हीरा ने मूक भाषा में कहा—“भागना व्यर्थ है।”

मोती ने उसी भाषा में उत्तर दिया—“तुम्हारी तो इसने जान ही ले ली थी। अबकी बड़ी मार पड़ेगी।”

“पड़ने दो; बल का जन्म लिया है, तो मार से कहाँ तक बचेंगे।”

“गया दो आदमियों के साथ दौड़ा आ रहा है। दोनों के हाथों में लाठियाँ हैं।”

मोती बोला—“कहो तो दिखा दूँ कुछ मजा मैं भी। लाठी लेकर आ रहा है।”

हीरा ने समझाया—“नहीं भाई! खड़े हो जाओ!”

“मुझे मारेगा तो मैं भी एक-दो को गिरा दूँगा।”

“नहीं; हमारी जाति का यह धर्म नहीं है।”

मोती दिल में ऐँठकर रह गया। गया आ पहुँचा और दोनों को पकड़कर ले चला। कुशल हुई कि उसने इस बक्त मारपीट न की, नहीं मोती भी पलट पड़ता। उसके तेवर देखकर गया और उसके सहायक खमभ गये, इस बक्त टाल जाना ही मसलहत है।

आज दोनों के सामने फिर वही सूखा भूसा लाया गया। दोनों चुपचाप खड़े रहे। घर के लोग भोजन करने लगे। उसी वक्त एक छोटी-सी लड़की दो रोटियाँ लिए निकली और दोनों के मुँह में देकर चली गई। उस एक रोटी से इनकी भूख तो क्या शान्त होती, पर दोनों के हृदय को मानो भोजन मिल गया। यहाँ भी किसी सज्जन का वास है। लड़की भैंरों की थी। उसकी मा मर चुकी थी। सौतेली मा उसे मारती रहती थी, इसलिए इन बेलों से उसे एक प्रकार की आत्मीयता हो गई।

दोनों दिन भर जोते जाते, डण्डे खाते, अड़ते। शाम को थान पर बाँध दिये जाते और रात को वही बालिका उन्हें दो रोटियाँ खिला जाती। प्रेम के इस प्रसाद की वह बरकत थी कि दो-दो गाल सूखा भूसा खाकर भी, दोनों दुर्बल न होते थे, मगर दोनों की आँखों में, रोम-रोम में विद्रोह भरा हुआ था।

एक दिन मोती ने मूक भाषा में कहा—“अब तो नहीं सहा जाता, हीरा !”

“क्या करना चाहते हो ?”

“एकाध को सींगों पर उठाकर फेंक दंगा।”

“लेकिन जामते हो वह पगड़ी लड़की जो हमें रोटियाँ खिलाती है, उसी की लड़की है, जो इस घर का मालिक है। वह बेचारी अनाथ न हो जायगी ?”

“तो मालकिन को न फेंक दें। वही तो उस लड़की को मारती है।”

“लेकिन ओरत जात पर सींग चलाना मना है, यह भूले जाते हो।”

“तुम तो किसी तरह निकलन ही नहीं देते। तो आओ, आज तुड़ाकर भाग चले।”

“हाँ; यह मैं स्वीकार करता हूँ; लेकिन इतनी मोटी रस्सी टूटेगी कैसे ?”

“इसका उपाय है। पहले रस्सी को थोड़ा-सा चबा लो। फिर एक भटके में जाती है।”

रात को जब बालिका रोटियाँ खिलाकर चली गई, तो दोनों रस्सियाँ चबाने लगे, पर मोटी रस्सी मुंह में न आती थी। बेचारे बार-बार जोर लगाकर रह जाते थे।

सहसा घर का द्वार खुला और वही लड़की निकली। दोनों सिर झुकाकर उसका हाथ चादने लगे। दोनों की पूछें खड़ी हो गईं। उसने उनके माथे सहलाये और बोली—“खोले देती हूँ। चुपके से भाग जाओ, नहीं यहाँ लोग तुम्हें मार डालेंगे। आज घर में सलाह हो रही है कि इनकी नाकों में नाथ डाल दी जाय।”

उसने गराँव खोल दिया; पर दोनों चुपचाप खड़े रहे।

मोती ने अपनी भाषा में पूछा—“अब चलते क्यों नहीं ?”

हीरा ने कहा—“चलें तो; लेकिन कल इस अनाथ पर आफ़त

आयेगी। सब इसी पर सन्देह करेंगे।” सहसा बालिका चिल्लाई—“दोनों फूफावाले बैल भागे जा रहे हैं। ओ दादा ! दादा ! दोनों बैल भागे जा रहे हैं ! जल्दी दौड़ो !”

गया हड़बड़ाकर भीतर से निकला और बैलों को पकड़ने चला। वे दोनों भागे। गया ने पीछा किया। वे और भी तेज हुए। गया ने शोर मचाया। फिर गाँव के कुछ आदमियों को साथ लेने के लिए लौटा। दोनों मित्रों को भागने का मौका मिल गया। सीधे दौड़ते चले गये। यहाँ तक कि मार्ग का ध्यान न रहा। जिस परिचित मार्ग से आये थे, उसका यहाँ पता न था। नये-नये गाँव मिलने लगे। तब दोनों एक खेत के किनारे खड़े होकर सोचने लगे; अब क्या करना चाहिए।

हीरा ने कहा—“मालूम होता है, राह भूल गये।”

“तुम भी तो बेतहाशा भागे। वहीं उसे मार गिराना था।”

“उसे मार गिराते तो दुनिया क्या कहती ? वह अपना धर्म छोड़ दे, लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें ?”

दोनों भूख से व्याकुल हो रहे थे। खेत में मटर खड़ी थी, चरने लगे। रह-रहकर आहट ले लेते थे, कोई आता तो नहीं है।

जब पेट भर गया और दोनों ने आज्ञादी का अनुभव किया, तो मस्त होकर उछलने-कूदने लगे। पहले दोनों ने डकार ली। फिर सींग मिलाये और एक दूसरे को टेलने लगे। मोती ने हीरा को कई कदम पीछे हटा दिया, यहाँ तक कि वह खाई में गिर गया। तब उसे भी क्रोध आया। सँभलकर उठा और फिर मोती से भिड़ गया। मोती ने देखा, खेल में भगड़ा हुआ चाहता है, तो किनारे हट गया।

अरे ! यह क्या ! कोई साँड़ डौकता चला आ रहा है ! हाँ, साँड़ ही है। वह सामने आ पहुँचा। दोनों मित्र बगले झोंक रहे हैं। साँड़ पूरा हाथी है। उससे भिड़ना जान से हाथ धोना है; लेकिन न भिड़ने पर

भी तो जान बचनी नहीं नज़र आती। इन्हीं की तरफ़ आ भी रहा है। कितनी भयंकर सूरत है ?

मोती ने मूक भाषा में कहा—“बुरे फँसे। जान कैसे बचेगी ? कोई उपाय सोचो !”

हीरा ने चिंतित स्वर में कहा—“अपन घमंड में भूला हुआ है। आरजू-विनती न सुनेगा।”

“भाग क्यों न चले।”

“भागना कायरता है।”

“तो फिर यहीं मरो। यहाँ तो मौ-बे-प्यार है तोता है।”

“और जो दोड़ाये ?”

“तो फिर कोई उपाय सोचो, जल्द !”

“उपाय यही कि उस पर गोदी जवा एक साथ छोड़ करें। मैं आगे से रगेदता हूँ, तुम पीछे से रगदो। दोहरो भार पड़ने लगे, तो भाग खड़ा होगा। ज्योंही मेरी ओर लटक, तुम बगल से उसके पेट में सींग घुसेड़ देना। जान जोखिम में है; पर दूसरा उपाय नहीं है।”

दोनों मित्र जान हथेलियों पर लेकर लपके। साँड़ तो कभी संगठित शत्रुओं से लड़ने का तजुर्बा न था। वह तो एक शत्रु से मल्लयुद्ध करने का आदी था। ज्योंही हीरा पर झपटा, मोती ने पीछे से दोड़ाया। साँड़ उसकी तरफ़ मुड़ा, तो हीरा ने रगेदा। साँड़ चाहता था कि एक-एक करके दोनों को गिरा ले; पर ये दोनों भी उरताव थे। उसे यह अवसर न देते थे। एक बार साँड़ झल्लाकर हीरा का अन्त कर देने के लिए चला, कि मोती ने बगल से आकर उसके पेट में सींग भोंक दिया। साँड़ क्रोध में आकर पीछे फिरा तो हीरा ने दूसरे पहलू में सींग चुभा दिया। आखिर बेचारा जखमी होकर भागा और दोनों मित्रों ने दूर तक पीछा किया। यहाँ तक कि साँड़ बेदम होकर गिर पड़ा। तब दोनों ने उसे छोड़ दिया।

दोनों मित्र विजय के नशे में झूमते चले जाते थे।

मोती ने अपनी सांकेतिक भाषा में कहा—“मेरा जी तो चाहता था, कि बच्चा को मार ही डालूँ।”

हीरा ने तिरस्कार किया—“गिरे हुए बैरी पर सींग न चलाना चाहिए।”

“यह सब ठोंग है। बैरी को ऐसा मारना चाहिए कि फिर न उठे।”

“अब घर कैसे पहुँचेंगे, यह सोचो!”

“पहले कुछ खा लें तो सोचें।”

सामने मटर का खेत था ही। मोती उसमें घुस गया। हीरा भगा करता रहा, पर उसने एक न मुनी। अभी दो ही चार घास खाये थे कि दो आदमी लाठियाँ लिये दौड़ पड़े और दोनों मित्रों को घेर लिया। हीरा तो मेड़ पर था, निकल गया। मोती सींचे हुए खेत में था। उसके खुर कीचड़ में धँसने लगे। न भा ग सका। पकड़ लिया गया। हीरा ने देखा, संगी संकट में है, तो लौट पड़ा। फँसेंगे तो दोनों साथ फँसेंगे। रखवालों ने उसे भी पकड़ लिया।

प्रातःकाल दोनों मित्र काँजीहौस में बन्द कर दिये गये।

दोनों मित्रों को जीवन में पहली बार ऐसा साबका पड़ा, कि सारा दिन बीत गया और खाने को एक तिनका भी न मिला। समझ ही में न आता था कि यह कैसा स्वामी है। इससे तो गया फिर भी अच्छा था। वहाँ कई भैंसें थीं, कई बकरियाँ, कई घोड़े, कई गधे; पर किसी के सामने चारा न था। सब ज़मीन पर मुरवाँ की तरह थे। कई तो इतने कमजोर हो गये थे कि खड़े भी न हो सकते थे। सारे दिन दोनों मित्र फाटक की ओर टकटकी लगाये रहे, पर कोई चारा लेकर आता न दिखाई दिया। तब दोनों ने दीवार की नमकीन मिट्टी चाटनी शुरू की; पर उससे क्या तृप्ति होती।

रात को भी जब भोजन न मिला तो हीरा के दिल में विद्रोह की ज्वाला दहक उठी। मोती से बोला—“अब तो नहीं रहा जाता, मोती !”

मोती न सिर लटकाये हुए जवाब दिया—“मुझे तो मालम होता है, प्राण निकल रहे हैं।”

“इतनी जल्द हिम्मत न हारो भाई ! यहाँ से भागने का कोई उपाय निकालना चाहिए।”

“आओ, दीवार तोड़ डालें।”

“मुझसे तो अब कुछ न होगा।”

“बस इसी बूते पर अकड़ते थे ?”

“सारी अकड़ निकल गई।”

बाड़े की दीवार कच्ची थी। हीरा मजबूत तो था ही, अपने नुकीले सींग दीवार में गड़ा दिये और जोर मारा तो मिट्टी का एक चिप्पड़ निकल आया। फिर तो उसका साहस बढ़ा। उसने दौड़-दौड़कर दीवार पर, चोटें कीं और हर चोट में थोड़ी-थोड़ी मिट्टी गिराने लगा।

उसी समय कांजीहौस का चौकीदार लालटेन लेकर जानवरों की हाजिरी लेने आ निकला। हीरा का यह उजड़डपन देखकर उसने उसे कई डंडे रसीद किये और मोटी-सी रस्सी से बांध दिया।

मोती ने पड़े-पड़े कहा—“आखिर मार खाई, क्या मिला ?”

“अपने बूते भर जोर तो मार लिया।”

“ऐसा जोर मारना किस काम का कि और बंधन में पड़ गये।”

“जोर तो मारता ही जाऊँगा, चाहे कितने ही बंधन बढ़ते जायें।”

“जान से हाथ धोना पड़ेगा।”

“कुछ परवाह नहीं। यों भी तो मरना ही है। सोचो, दीवार खुद जाती, तो कितनी जानें बच जातीं। इतने भाई यहाँ बन्द है। किसी की देह में जान नहीं है। दो-चार दिन और यही हाल रहा, तो सब मर जायेंगे।”

“हाँ, यह बात तो है। अच्छा तो लो, फिर मैं भी जोर लगाता हूँ।”

मोती ने भी दीवार में उसी जगह सींग मारा। थोड़ी-सी मिट्टी गिरी और हिम्मत बढ़ी। फिर तो वह दीवार में सींग लगाकर इस तरह जोर करने लगा, मानो किसी प्रतिद्वन्द्वी से लड़ रहा है। आखिर कोई दो घंटे की जोर-आजमाई के बाद दीवार ऊपर से लगभग एक हाथ गिर गई। उसने दूनी शक्ति से दूसरा धक्का मारा, तो आधी दीवार गिर पड़ी।

दीवार का गिरना था, कि अधमरे से पड़े हुए सभी जानवर चेत उठे। तीनों घोड़ियाँ सरपट भाग निकलीं। फिर बकरियाँ निकलीं। इसके बाद भैंसें भी खिसक गईं; पर गधे अभी तक ज्यों के त्यों खड़े थे।

हीरा ने पूछा—“तुम दोनों क्यों नहीं भाग जाते?”

एक गधे ने कहा—“जो कहीं फिर पकड़ लिये जायें?”

“तो क्या हरज है? अभी तो भागने का अवसर है।”

“हमें तो डर लगता है। हम यहीं पड़े रहेंगे।”

आधी रात से ऊपर जा चुकी थी। दोनों गधे अभी तक खड़े सोच रहे थे, भागें या न भागें। और मोती अपने मित्र की रस्सी तोड़ने में लगा हुआ था। जब वह हार गया, तो हीरा ने कहा—“तुम जाओ! मुझे यहीं पड़ा रहने दो! शायद कभी भेंट हो जाय।”

मोती ने आँखों में आँसू लाकर कहा—“तुम मुझे इतना स्वार्थी समझते हो, हीरा! हम और तुम इतने दिनों एक साथ रहे। आज तुम विपत्ति में पड़ गये, तो मैं तुम्हें छोड़कर अलग हो जाऊँ?”

हीरा ने कहा—“बहुत मार पड़ेगी। लोग समझ जायेंगे, यह तुम्हारी ही शरारत है।”

मोती गर्व से बोला—“जिस अपराध के लिए तुम्हारे गले में बंधन पड़ा, उसके लिए अगर मुझ पर मार पड़े, तो क्या चिन्ता। इतना तो

हो ही गया कि नौ-दस प्राणियों की जान बच गई। वे सब तो आशीर्वाद देंगे।”

यह कहते हुए मोती ने दोनों गधों को सींग से मार-मारकर बाड़े से बाहर निकाला और तब अपने बन्धु के पास आकर सो रहा।

भोर होते ही मुंशी और चौकीदार और अन्य कर्मचारियों में कैसी खलबली मची, इसको लिखने की जरूरत नहीं। बस इतना ही काफ़ी है कि मोती की ख़ूब मरम्मत हुई और उसे भी मोटी रस्सी में बाँध दिया गया।

एक सप्ताह तक दोनों मित्र वहाँ बंधे पड़े रहे। किसी ने चारे का एक तण भी न डाला। हाँ, एक बार पानी दिखा दिया जाता था। यही उनका आधार था। दोनों इतने दुर्बल हो गये थे कि उठा तक न जाता था। ठठरियाँ निकल आई थीं।

एक दिन बाड़े के सामने डुग्गी बजने लगी और दोपहर होते-होते वहाँ पचास-साठ आदमी जमा हो गये। तब दोनों मित्र निकाले गये और उनकी देखभाल होने लगी। लोग आ-आकर उनकी सूरत देखते और मन फीका करके चले जाते। ऐसे मृतक बंलों का कौन खरीदार होता।

सहसा एक दड़ियल आदमी, जिसकी आँखें लाल थीं, मुद्रा अत्यन्त कठोर, आया और दोनों मित्रों के कूल्हों में उँगली गोदकर मुंशी जी से बातें करने लगा। उसका चेहरा देखकर अन्तर्ज्ञान से दोनों मित्रों के दिल कांप उठे। वह कौन है और उन्हें क्यों टटोल रहा है, इस विषय में उन्हें कोई सन्देह न रहा। दोनों ने एक-दूसरे को भीत नेत्रों से देखा और सिर झुका लिया।

हीरा ने कहा—“गया के घर से नाहक भागे। अब जान न बचेगी।”

मोती ने अश्रद्धा के भाव से उत्तर दिया—“कहते हैं, भगवान् सबके ऊपर दया करते हैं। उन्हें हमारे ऊपर क्यों दया नहीं आती?”

“भगवान् के लिये हमारा मरना-जीना दोनों बराबर है। चलो अच्छा ही हैं, कुछ दिन उनके पास तो रहेंगे। एक बार भगवान् ने उस लड़की के रूप में हमें बचाया था। क्या अब न बचायेंगे?”

“यह आदमी छुरी चलायेगा, देख लेना।”

“तो क्या चिन्ता है। मांस, खाल, सींग, हड्डी सब किसी न किसी काम में आ जायगी।”

नीलाम हो जाने के बाद दोनों मित्र उस दड़ियल के साथ चले। दोनों की बोटी-बोटी काँप रही थी। बेचारे पाँव तक न उठा सकते थे, पर भय के मारे गिरते-पड़ते भागे जाते थे; क्योंकि वह ज़रा भी चाल धीमी हो जाने पर, जोर से डंडा जमा देता था।

राह में गाय-बैलों का एक रेवड़ हरे-हरे हार में चरता नज़र आया। सभी जानवर प्रसन्न थे; चिकने, चपल। कोई उछलता था, कोई आनन्द से बैठा पागुर करता था। कितना सुखी जीवन था इनका, पर कितने स्वार्थी हैं सब। किसी को चिन्ता नहीं कि उनके दो भाई अधिक के हाथ पड़े कैसे दुःखी हैं।

सहसा दोनों को मालूम हुआ कि यह राह परिचित है। हाँ, इसी रास्ते से गया उन्हें ले गया था। वही खेत, वही बाग, वही गाँव मिलने लगे। प्रतिक्षण उनकी चाल तेज होने लगी। सारी थकान, सारी दुर्बलता गायब हो गई। अहा! यह लो, अपना ही हार आगया। इसी कुएँ पर हम पुर चलाने आया करते थे; हाँ यही कुआँ है।

मोती ने कहा—“हमारा घर नगीच आ गया।”

हीरा बोला—“भगवान् क्री दया है।”

“मैं तो अब घर भागता हूँ।”

“यह जाने देगा?”

“इसे मैं मार गिराता हूँ।”

“नहीं, नहीं, दौड़कर थान पर चलो। वहाँ से हम आगे न जायेंगे।”

दोनों उन्मत्त होकर, बछड़ों की भाँति कुलेलें करते हुए, घर की ओर दौड़े। वह हमारा थान है, दोनों दौड़कर अपने थान पर आये और खड़े हो गये। दड़ियल भी पीछे-पीछे दौड़ा चला आता था।

भूरी द्वार पर बैठा धूप खा रहा था। बेलों को देखते ही दौड़ा और उन्हें बारी-बारी से गले लगाने लगा। मित्रों की आँखों से आनन्द के आँसू बहने लगे। एक भूरी का हाथ चाट रहा था।

दड़ियल ने जाकर बेलों की रस्सियाँ पकड़ लीं।

भूरी ने कहा—“मेरे बेल हैं।”

“तुम्हारे बेल कैसे? मैं मवेशीखाने से नीलाम लिये आता हूँ।”

“मैं तो समझता हूँ; चुराये लिये आते हो। चुपके से चले जाओ। मेरे बेल हैं। मैं बेवूँगा तो बिकूँगे। किसी को मेरे बेल नीलाम करने का क्या अस्तिप्यार है?”

“जाकर थाने में रपट कर दूँगा।”

“मेरे बेल हैं। इसका सबूत यह है कि मेरे द्वार पर खड़े हैं।”

दड़ियल झटकाकर बेलों को जबर्दस्ती पकड़ ले जाने के लिए बढ़ा। उसी वक्त मोती ने सींग चलाया। दड़ियल पीछे हटा। मोती ने पीछा किया। दड़ियल भागा। मोती पीछे दौड़ा। गाँव के बाहर निकल जाने पर वह रुका; वह खड़ा दड़ियल का रास्ता देख रहा था। दड़ियल दूर खड़ा धमकियाँ दे रहा था, गालियाँ निकाल रहा था, पत्थर फेंक रहा था और मोती विजयी शूर की भाँति उसका रास्ता रोके खड़ा था। गाँव के लोग यह तमाशा देखते थे और हँसते थे।

जब दड़ियल हारकर चला गया, तो मोती अकड़ता हुआ लौटा।

हीरा ने कहा—“मैं डर रहा था कि कहीं तुम गुस्से में आकर मार न बैठो।”

“अगर वह मुझे पकड़ता, तो मैं बे मारे न छोड़ता।”

“अब न आयेगा।”

“आयेगा तो दूर ही से खबर लूंगा। देखूँ, कैसे ले जाता है?”

“जो गोली मरवा दे।”

“मर जाऊँगा; पर उसके काम तो न आऊँगा।”

“हमारी जान को कोई जान ही नहीं समझता।

“इसी लिए कि हम इतने सीधे हैं।”

जरा देर में नांदों में खली, भूसा, चोकर, दाना भर दिया गया और मित्र खाने लगे। भूरी खड़ा दोनों को सहला रहा था और बीसों लड़के तमाशा देख रहे थे। सारे गाँव में उछाह-सा मालूम होता था। उसी समय मालकिन ने आकर दोनों के साथे चूम लिये।

२—दिल जागता है

[श्री सुदर्शन]

(१)

स्यालकोट के मशहूर वकील प्रभुदत्त जी आधे आर्यसमाजी थे, आधे सनातनधर्मी। उनकी मित्र-मंडली में भी दोनों खयाल के आदमी थे। उनको मूर्ति-पूजा पर अथाह श्रद्धा थी। कहते, इससे मन की चंचलता दूर हो जाती है; हम पत्थर को नहीं, परमात्मा को पूजते हैं। पंडित जी अवतारवादी भी थे। तीर्थ-यात्रा का तो उन्हें इतना शौक था कि हर साल कहीं न कहीं जरूर हो आते थे। राम और कृष्ण का पवित्र नाम सुनते, तो उनका चेहरा खिल जाता था। प्रातःकाल उठकर गीता का पाठ किये बिना भोजन न करते थे। मगर इसके साथ ही वे विधवा-विवाह के पूरे पक्षपाती और अछूतों के दोस्त थे। वे इस पहलू में हिन्दुओं को गुनहगार समझते और आर्यसमाज के सुधार और प्रचार की दिल खोलकर प्रशंसा करते थे। स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में आपका यह मत था कि इसके बिना हिन्दुओं की गति नहीं है। मगर उनकी अधिक श्रद्धा अछूतोंद्वारा में थी। कचहरी से आते, तो साइकिल लेकर संधाले चले जाते। यह गाँव स्यालकोट से कोई चार मील की दूरी पर है। यहाँ ब्राह्मण-क्षत्रिय नहीं बसते; मेघ बसते हैं। प्रभुदत्त को देखकर उनके मुख-मंडल पर रौनक आ जाती थी। वहाँ का बच्चा-बच्चा उनको जानता था। प्रेम में भेद-भाव कहाँ? जहाँ कहीं बैठते, उनसे घर-बाहर की बातें करते; कहीं उपदेश देते, कहीं उनके भगड़े मिटाते, कहीं मुक़दमे सुनते। उन गँवारों की सीधी-सादी बातें सुनकर पंडित जी को आत्मिक प्रसन्नता होती थी। सोचते, ये लोग कैसे सच्चे हैं, कैसे सादे! इनको दुनिया के छल-कपट नहीं आते, न बात-बात में ये भूठ बोलते हैं। दिल के भावों को ये

छिपाना नहीं जानते, साफ़ और खरी बात मुंह पर कह देते हैं। कोई लुग्न हो, चाहे नाराज। इन्हें शहर का पानी न लगा था, न इन्होंने भूठी दुनियादारी की भूठी नीति सीखी थी। पंडित प्रभुदत्त उनके इन गुणों पर लट्टू थे। प्रायः अपने इष्ट-मित्रों से कहा करते, ये सच्चे साधु हैं; इनके दिलों में धोखा नहीं है। धन-दौलत के गरीब हैं तो क्या? मगर इनके पास प्रेम और पवित्रता की पूंजी का अभाव नहीं। मुझे तो हिन्दुओं की बुद्धि पर रोना आता है, जो इन्हें दूर हटाते हैं। खरे सोने को पीतल समझना बदनसीबी नहीं, तो और क्या है?

इन मेघों में एक लड़का बिसाखी था; बहुत नेक और खूबसूरत। पंद्रह-सोलह साल की उम्र होगी; उर्दू-हिन्दी पढ़ सकता था। उसकी इच्छा थी कि अबसर मिले, तो अंगरेजी के चार अक्षर भी पढ़ ले। लेकिन मा-बाप गरीब थे; उनमें यह शक्ति न थी। पंडित जी ने सुना, तो उसके लिए महीना बांध दिया, मगर अभी एक ही दो महीने गुजरे थे कि गाँव में प्लेग फूट पड़ा। बिसाखी के मा-बाप दोनों चल बसे। अब बिसाखी इस असार संसार में अकेला रह गया। क्या करे, क्या न करे। उसकी सहायता करनेवाला कोई न था, न घर में रुपया-पैसा था। हारकर पंडित जी के पास जाकर रोने लगा। पंडित जी नरम दिल के आदमी थे। उनसे गरीब लड़के का रोना न देखा गया। बोले—“तेरे मा-बाप मर गये हैं, तो क्या हुआ? हम तो जीते हैं, तुझे भूखें न मरने देंगे।”

दूसरे दिन से बिसाखी उन्हीं के यहाँ रहने लगा।

पंडित प्रभुदत्त की स्त्री का नाम विद्यावती था। वह पंडित जी पर प्राण देती थी। उन्हें दो-चार घंटे भी न देखती, तो बावली हो जाती थी। मगर इसे मूर्खता कहो, या भूठे संस्कार; उसे पति की ये बातें पसंद न थीं। प्रायः सोचती, ये करते क्या हैं? क्या हमारे बाप-दादा बिलकुल मूर्ख ही थे, जो इनको छूना भी पाप समझते थे? कलजुग का जमाना

है, लोग आर्यसमाजी हो गये हैं। पहले तो ऐसा अन्धेर कभी न होता था। अब तो धरम-करम का दुनिया को खयाल भी नहीं रहा। मेघ-चमार भी कहते हैं, हम आरिथे हैं। कहा करें; यहां उनकी मुनता ही कौन है? एक दिन पंडित जी ने कहा—बिद्या, तुम यह बताओ, वे हिन्दू क्यों नहीं? उनके सिर पर मुभसे लम्बी चोटी है; उनके बिल में राम-कृष्ण के लिए श्रद्धा है। वे रामायण-महाभारत पढ़ते हैं; उनके ब्याह पुरोहित-पंडित कराते हैं। फिर उनसे घृणा क्यों करती हो?

बिद्या ने जवाब दिया—अब इन बातों का क्या जवाब दूं? मगर इतना जानती हूं कि वे हिन्दू नहीं हो सकते। तुम मेरी जीभ पकड़ सकते हो, पर मन नहीं पकड़ सकते। और क्या वेद-सासतर सब भूठे हैं?

पंडित जी हँसकर बोले—तो पंडितानी जी! वेद-शास्त्र क्या कहते हैं?

बिद्या—जाओ! तुम तो मजाक करते हो।

प्रभुदत्त—नहीं बिद्या, मैं मजाक नहीं करता। जरा समझ-सोचकर बताओ। बिसाखी में क्या कीड़े पड़े हैं, जो उसे हम घर में न घुसने दें? कितना पाक-साफ़ है, कितना नित-नेम का खयाल रखनेवाला! स्नान किये बिना खाना नहीं खाता। अब अपने मुहल्ले में एक सिर से दूसरे सिर तक देख आओ, और तब बताओ कि इसके मुकाबिले में कौन-सा ब्राह्मण-खत्री है, जिसे पवित्रता की इतनी परवा हो? मेरा खयाल है, कोई भी नहीं।

बिद्या—परन्तु उन्होंने अपना धर्म तो बचा रखा है। तुम्हारी तरह किरानी तो नहीं हो गये?

प्रभुदत्त—बस, बस, यही तो तुम्हारी मूर्खता है। तुम धर्म किसे समझती हो?

बिद्या—धर्म वही, जो अपना धर्म हो।

प्रभुदत्त—मगर धर्म के लक्षण क्या है?

बिद्या—(हाथ जोड़कर) बाबा, मुझे छिमा करो। तुमसे बहस

कौन करे? चलो भोजन कर लो, कचहरी का समय हो गया है। फिर कहोगे, देर हो गई!

प्रभुदत्त—बिसाखी खा चुका या नहीं?

विद्या—अभी नहीं। तुम्हारे बाद खायेगा।

प्रभुदत्त को कुछ संदेह हुआ। विद्या की आँखों से आँखें मिलाकर बोले—तुम उससे नाराज तो नहीं रहती हो? देखना, अनाथ लड़का है। उसका दिल न बुखाना, पाप लगेगा।

विद्या को तीर-सा चुभ गया। उसने क्रोध-पूर्ण स्वर से पूछा—यह बिसाखी मेघ का लड़का है, या तुम्हारा देवता?

प्रभुदत्त—देवता से भी बढ़कर।

विद्या—तुम्हारे लिए होगा। मेरे लिए तो मामूली अछूत है।

प्रभु०—मगर आज से अछूत न रहेगा।

विद्या—कैसे न रहेगा?

प्रभु०—अभी देख लोगी। आज से वह मेरे साथ चौंके में बैठकर भोजन करेगा।

(३)

विद्या चौंक पड़ी। उसे विश्वास न आता था कि पंडित जी का सचमुच यही मतलब है। वह समझती थी, मुझे बनाते हैं। अब यहाँ तक थोड़े बढ़ जायेंगे? इतने में पंडित जी ने जोर से पुकारा—बिसाखी!

बिसाखी अपने कमरे में बैठा किताबें सँभाल रहा था। आवाज सुनते ही बाहर अगया।

प्रभु०—चलो, खाना खा लें।

बिसाखी ने इसका मतलब नहीं समझा। सोचने लगा, आज क्या है? वह कभी पंडित जी की तरफ़ देखता, कभी विद्या की तरफ़। कुछ समझता न था।

प्रभु०—तुमने सुना या नहीं? चलो, मेरे साथ बैठो।

बिसाखी—पहले आप खा लें। मुझे स्कूल जाने में बहुत देर है।

प्रभु०—स्कूल जब जी चाहे, जाना; खाना पहले खा लो। चलो!

बिसाखी समझ गया, पंडित जी अब न मानेंगे। वह यह भी समझ गया कि आज कुछ न कुछ बखेड़ा खड़ा हो जायगा। मगर वह बोल न सकता था। गरीब की हर तरफ़ मौत है। बिसाखी धीरे-धीरे रसोई-घर की तरफ़ बढ़ा। सहसा विद्या ने उसका रास्ता रोक लिया, और कड़क कर कहा—खबरदार! जो पाँव आगे बढ़ाया, तो पाँव ही तोड़ दूंगी। यह ब्राह्मण का घर है, चमार का नहीं।

बिसाखी की आँखें सजल हो आईं। उसने बेबसी से पंडित जी की ओर देखा, और तब सिर झुकाकर कहा—पंडित जी, आपकी कृपा मुझ पर पहले ही कम नहीं। आप माता जी को नाराज न करें। इनको नाराज करके मेरा भला न होगा।

यह कहते-कहते बिसाखी की आँखों से आँसू बहने लगे। उधर विद्यावती रो रही थी कि कैसे तोता-चश्म हैं। पराये बेटे का खयाल करते हैं, मेरी परवा नहीं करते! क्या मैं ऐसी तुच्छ हो गई हूँ कि बिसाखी के सामने मुझे इस तरह जलील करें? स्त्री आखिर स्त्री है, इतना भी नहीं सोचते।

मगर पंडित जी को इन दोनों की परवा न थी। जिस-पास नदियाँ फुंकारें मारती थीं, बीच में पहाड़ खड़ा था, और इस तरह कि उस पर पानी के इन हमलों का जरा भी असर न होता था। थोड़ी देर बाद उन्होंने आग-भरी आँखों से विद्या की तरफ़ देखा; मगर नम्र शब्दों में कहा—विद्या, मुझे तंग न करो। यह बिसाखी का सवाल नहीं मेरे सिद्धान्त का सवाल है। मैं सच कहता हूँ, इससे मेरा बिल टूट जायगा।

यह कहते-कहते उनकी आँखों में भी आँसू आगये। क्रोध पानी होकर बहने लगा जैसे लोहा आग में पड़कर पहले गरम होता है, फिर पिघल कर पानी हो जाता है। उस समय उसमें कैसी जलन होती है, कैसी तरलता! वही दशा इन आँसुओं की थी। यह पानी न था, पिघली हुई आग थी। यह मीठे जल का सोता न था, लावे की नदी थी।

इसके सामने ठहरने की शक्ति किसमें है ? कम से कम स्त्री के प्रेम में तो नहीं। बिद्या ने पति की बातों को सोचा और तब सामने से हट गई। प्रभुदत्त बिसाखी को लिये हुए रसोई-घर में चले गये और बैठकर खाने लगे। मौकर पकाता था; पंडित जी और बिसाखी खाते थे और बिद्या टंडी आहें भरती थी।

इतने में ब्राह्मणी रोटी लेने आई। मगर बिसाखी को रसोई में बंढे देखकर चौंक पड़ी और कतराकर निकल गई। बिद्या ने पंडित जी की आँखों से अपनी आँखें मिलाई; मानो कहा—अभी तो पहला ही दिन है, आगे-आगे देखना। परन्तु पंडित जी ने ब्राह्मणी के इस खुल्लम-खुल्ला अपमान पर ज़रा भी ध्यान न दिया और उठकर कचहरी चले गये। बिसाखी कुछ देर वहीं बैठा रहा। इसके बाद सिर झुकाये हुए धीरे-धीरे कूल चला गया। मगर बिद्या उसी तरह चुपचाप बैठी रही। आज वह कितनी ज़दात थी; कैसे परेशान ! आज उसकी आन सर गई थी, आज उसकी मर्यादा टूट गई थी, आज उसके प्रति ने उसकी परवा न ली थी।

दोपहर होते-होते यह बात सारे मुहल्ले की ज़बान पर थी। स्त्रियों को शोशा बिक गया। कहती थीं—घोर कलयुग आगया; ऐसा कभी न होता था। ज़रा खयाल करो, मेघ ब्राह्मण की रसोई में जा बैठा और ब्राह्मण उसे खिलाता रहा ! एक और स्त्री ने कहा—अब दुनिया उलट जायगी; पृथ्वी से पाप का यह भार न उड़ाया जायगा। एक बुद्धी-स्त्री ने झाला फेरते-फेरते कहा—सासतर में यह बखान है कि अब ऐसे-ऐसे पाप होंगे, तो निसकलंक औतार आवेगा। सो अब उसके आने में देर नहीं। सब लोग बदन-संकर होते जाते हैं।

ये बातें बिद्या ने सुनीं, तो उसके दिल में तीर-सा चुभ गया। मगर उसे पति पर गुस्सा न था, गुस्सा बिसाखी पर था। गुस्सा भी पानी के समान नीचे की तरफ बहता है। बिद्या दिल में सीचती थी, यह कफ़डालत क्यों रो आ मरा ! अब मुहल्ले में उठना-बैठना भी मुश्किल

हो गया। अगर उसका बस चलता, तो बिताथी की गर्दन मरोड़ देती। पहले स्त्री-पुरुष दोनों प्रेम से रहते थे। प्यार-मुहब्बत की वह चाँदनी आज वियोग के अँधेरे पाख में कहीं दिखाई न देती थी। दोनों एक ही मकान में रहते थे, एक ही छत तले सोते थे; मगर ठीक उसी तरह, जैसे दो परदेशी धर्मशाला में आकर ठहरें हों। आँखें बही थीं, लेकिन निगाहें वे न थीं।

(४)

एक महीना बीत गया। मुहल्ले के लोग पंडित जी से परे-परे रहने लगे। कोई उनके घर की चीज न लेता था, न उनसे खुलकर मिलता था। वे मुहल्ले के अन्दर रहते हुए भी मुहल्ले से बाहर रहते थे। और, स्त्रियाँ तो विद्या की छाया से भी भागती थीं। पंडित जी दिन भर घर के बाहर रहते थे। उनको इस सुलूक की परवा न थी। मगर विद्या की जान पर आ बनी। वह पंडित जी की अनुपस्थिति में प्रायः रोती रहती और भगवान् से प्रार्थना किया करती कि यह संकट कटे। लेकिन भगवान् सुनता न था, संकट कटता न था।

रात का समय था। आसमान पर तारों का चमन खिला हुआ था। पंडित जी ने भोजन किया और खाट पर लेट गये। विद्या आज बहुत उदास थी। पंडित जी को उसकी दशा पर दया आ गई। प्यार से बोले—विद्या, आज तुम्हारा दिल उदास है क्या ?

विद्या की आँखों में आँसू आगये। वह तो वही आवाज है, वही शब्द, वही प्यार। उसे बिसरे हुए दिन याद आगये। बीता हुआ समय आँखों-तले फिर आगया। उसके प्यार की सुखी हुई बेल हरी हो गई। उसने अपने को सँभालकर जवाब दिया—नहीं।

जवाब साधारण था; मगर इससे पंडित प्रभुदत्त का हृदय हिल गया। हमारा सोया हुआ प्यार प्रायः मामूली बात से जाग उठता है। पंडित जी लेटे थे, यह सुनकर उठ बैठे और विद्या की ओर प्यार भरी आँखों से देखकर बोले—विद्या, क्या यह लड़ाई कभी समाप्त न होगी ?

आओ, अब हम तुम सुलह कर लें। लड़ाई और लाल मिर्च, दोनों में स्वाद है; मगर उसी समय तक, जब तक इनकी मात्रा अधिक न हो। तुम स्त्री हो; स्त्रियाँ लाल मिर्च बहुत खाती हैं। मगर मेरा तो मुँह जलने लगा। परमात्मा के लिए आज मीठी चीज खिलाओ, तो मन शान्त हो।

प्यार की ये रंगीली और रसीली बातें सुनकर, विद्यावती के हृदय-सागर में तरंगें उठने लगीं। मगर वह नारी थी, और नारी-हृदय आसानी से विवश नहीं होता। उसने पति की ओर देखा और होंठ चबाकर बोली—मे तो तुमसे कभी नहीं लड़ी। और, स्त्री लड़ ही क्या सकती है? पति बुला ले, तो रानी; नु बलाये तो दासी। मालिक-नौकर की लड़ाई कैसी?

प्रभु०—बस, यही बातें तो लड़ाई की हैं। साफ़ मालूम होता है कि तुम खफ़ा हो, नहीं तो ऐसा रूखा-सूखा जवाब कभी न देतीं। कितना अंधेरे हैं! पति-परमेश्वर सुलह की बिनती करे और स्त्री मुँह फुलाये खड़ी रहे! मगर क्यों न हो, कलजुग का जमाना है।

विद्या ने पति-परमेश्वर का शब्द सुना, तो हँस पड़ी। यह हँसी न था, सुलह की दरख्वास्त की मंजूरी थी। प्रभुवत्त अपने को रोक न सके। उन्होंने उठकर विद्यावती को गले से लगा लिया और चारपाई पर अपने पास बिठाकर कहा—लो! अब अपना मन साफ़ कर लो। आखिर कब तक रूठी रहोगी? जो होना था, वह तो हो चुका। फिर अब घर की खुशी खराब करने से क्या बनेगा?

विद्या ने अपना सिर पति के कंधे पर रख दिया और सिसकियाँ भरकर बोली—तुम समझोगे, भूठ बोलती हूँ। पर सच्ची बात तो यह है कि मुझे बुनिया नहीं जीने देती। स्त्रियाँ ताने मारती हैं, तो कलेजा छलनी हो जाता है। कहती हैं, ये दोनों साहब-मेम बन गये हैं। तुम कचहरी चले जाते हो, मैं बैठी अपने भाग को रोया करती हूँ। कोई हाथ का छुआ पानी भी तो नहीं पीता।

प्रभु०—बड़ी अच्छी बात है। हम किसी के यहाँ माँगने नहीं जाते। कोई बोले, बुला लो; न बोले, न बुलाओ। हमें किसी से कोई मतलब नहीं। तुम हैरान क्यों होती हो? मैं तो ऐसी बातें हँसी में उड़ा देता हूँ।

विद्या०—जी चाहता है, कुएँ में कूद पड़ूँ। तुम्हें शायद मालूम न होगा, रसोइये ने जवाब दिया है। कहता है, मेरी बिरादरी हुक्का-पानी बंद कर देगी, तो मैं क्या करूँगा? गरीब आदमी हूँ, मुफ्त में मारा जाऊँगा।

प्रभु०—अरे! जरा उसे बुलाओ तो। मैंने उसके साथ जो सलूक किया है, वह मामूली नहीं। देखूँ, मेरे सामने आँखें कैसे उठाता है?

विद्या०—बुलाकर क्या करोगे? वह कभी न रहेगा। मैं बहुत समझा चुकी।

प्रभु०—तो जाने दो; और नौकर आ जायगा। शहर में नौकरों की कमी नहीं।

विद्या०—पानी भरनेवाला भी कल से नहीं आयेगा। मुहल्ले में लोगों ने डरा दिया है। गरीब आदमी है, क्या करे। लोग कहते हैं या पंडित जी का पानी भरो, या हमारा।

प्रभु०—तो मालूम होता है, हमें भूखों-प्यासों मारने पर तुल गये हैं!

विद्या०—मेरा तो लहू सूखा जाता है। भगवान् जाने अब क्या होगा?

प्रभु०—नालिश न कर दूँ? आटे-दाल का भाव मालूम हो जायेगा। ये भी क्या कहेंगे कि किसी वकील को तंग किया था।

विद्या०—(सिर हिलाकर) इससे विरोध बढ़ेगा, कम न होगा।

प्रभु०—चलकर समझाऊँ, शायद समझ जायें।

विद्या०—समझेंगे तो क्या, पर हाँ खिल्ली जरूर उड़ावेंगे।

प्रभु०—तो फिर क्या करूँ? विद्या, मुझे कोई रास्ता नजर नहीं आता।

विद्या०—रास्ता तो है, पर उसकी बात मुँह पर लाने का साहस नहीं होता। गया हुआ क्रोध फिर लौट आयेगा।

यह कहते-कहते विद्या रोने लगी। प्रभुदत्त क्रोध की अग्नि देख सकते थे; परन्तु क्रोध का पानी न देख सके। उनका दिल रूँध गया। ठंडी साँस भरकर बोले—बहुत बुरे फँसे!

(५)

एकाएक बाहर से बिसाखी ने पुकारकर कहा—पंडित जी!

पंडित जी तिलमलाकर खड़े हो गये। यह आवाज़ न थी, विष में बुझी हुई कटार थी। सोचने लगे, यह काँटे इसी के बोये हुए हैं। कंसी चैन से कटती थी! आज वे दिन सुपना हो गये। कड़ककर बोले—क्या है बिसाखी?

बिसाखी धीरे-धीरे अन्दर आया और हाथ जोड़कर बोला—पंडित जी, मेरे कारण आपको बहुत दुःख हुआ। पर अब तो नहीं सहा जाता। आज्ञा दीजिए संधाले चला जाऊँ। यहाँ सारा शहर ही आपके विरुद्ध हो गया है।

पंडित जी ने बिसाखी को इस तरह देखा, जैसे खा ही जायेंगे। क्रोध से बोले—अगर जाना ही था, तो आये क्यों थे?

बिसाखी ने कोई जवाब न दिया और गर्दन झुका ली।

प्रभु०—मैं लोगों की धाँधलियों से नहीं डरता। समझते होंगे, डरा लेंगे। पर यहाँ ब्राह्मण का तेज है। एक बार आँखें खोल दूँगा।

बिसाखी ने आँसुओं से भरी हुई आँखें ऊपर उठाई और कहा—सारे मुहल्ले का मुक़ाबिला करना बड़ा मुश्किल है।

प्रभु०—(घूरकर) देखो जी! तुम्हें मेरा कहना मानना होगा।

बिसाखी—मैं आपका गुलाम हूँ। आपकी आज्ञा हो, तो देह का मैं न उतार दूँ। मगर.....

प्रभु०—बिसाखी, तुम मेरा दिल चीरकर देखो। लोग क्या कहेंगे?

बिसाखी—मैं खुद जाता हूँ। आप तो नहीं निकलते।

प्रभु०—अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि मेरे पास न रहो, तो मैं क्या कर सकता हूँ ?

बिसाखी—मेरी इच्छा तो यह है कि सदा आपके पाँव से लिपटा रहूँ। आपकी मेहरबानियों ने मेरा मन मोह लिया है। मुझे जो सुख यहाँ मिला है, वह अपने घर में भी न था। मगर.....

बिसाखी ने अपने कथन को अधूरा ही छोड़ दिया और पंडित जी के चरणों में गिर पड़ा। पंडित जी किकर्तव्यविमूढ़ हो गये। उन्हें कुछ सूझता न था, न ज़बान से कोई शब्द निकलता था। वे जो चाहते थे, वह मुँह से कह न सकते थे। एक दिन पहले भी बिसाखी और बिद्या, दोनों रोते थे। उस समय पंडित जी का मन ज़रा भी विचलित न हुआ था। मगर आज उनके दिल पर दोनों का असर हो गया। वह दड़ता, वह साहस कहीं नज़र न आता था। पंडित जी ने बिसाखी को ज़मीन से उठाया और कहा—तो तुम घबराते क्यों हो ? कल देखा जायगा।

मगर दूसरे दिन बिसाखी का पता न था। पंडित जी समझ गये, वह संधाले चला गया। सोचने लगे, कितना समझदार !, कैसा सज्जन ! उसे मेरी चिन्ता है, अपनी नहीं। अपने भविष्य का ख़याल भी उसे नहीं रोक सका। कोई दूसरा होता, तो चुपचाप पड़ा रहता और मुझे जलाया करता।

संध्या-समय पंडित जी कचहरी से लौटे, तो उनका दिल बहुत उदास था। मगर बिद्या का खिला हुआ चेहरा देखकर, उनका मुँह भी चमकने लगा। मुस्कराकर बोले—रसोइया तो नहीं गया ?

बिद्या०—नहीं।

प्रभु०—पानी भरनेवाला आया था ?

बिद्या०—हाँ, मुहल्लेवालों ने फ़ैसला कर दिया कि जब बिसाखी चला गया है, तो अब झगड़े की ज़रूरत नहीं।

प्रभु०—और तुम्हारी सखी-सहेलियों का क्या हाल है ?

विद्या—आज तो सभी हँस-हँसकर मिलती थीं। कल की घृणा नाम को नहीं। कहती हैं, सुबह का भूला शाम को घर आ जाय, तो उसे भूला नहीं कहते।

पंडित जी के दिल पर तीर-सा लगा, मगर यह बात उन्होंने विद्या पर प्रकट न होने दी। फोड़े के अन्दर पीप थी, मगर घाव ऊपर से भर चुका था। घाव की यह स्वास्थ्य-सूचक दशा कितनी हानिकारक है! यों साधारण आदमी शायद धोखा खा जाय, परन्तु वैद्य की दृष्टि में यह स्वास्थ्य नहीं, रोग का निमंत्रण है।

दो-तीन दिन बाद पंडित जी संधाले गये। बिसाखी वहाँ भी न था। पंडित जी के दिल पर दूसरा आघात पहुँचा। सोचने लगे, कहाँ चला गया? उसका तो कोई ठौर-ठिकाना भी नहीं। आदमी बाहर से निराश होता है, तो घर को दौड़ता है। बिसाखी घर भी न गया। यह निराशा न थी, निराशा की पराकाष्ठा थी। और, इसका मूल कारण पंडित जी का हित-चिन्तन था, वरना गरीब आदमी अपना घर सहज में नहीं छोड़ता। पंडित जी सिर झुकाकर शहर को लौट गये। मगर उस दिन के बाद से अछूनोंद्वार के काम में तन्मय हो गये, जैसे तपस्वी एक बार भूल करके अपने शरीर और आत्मा की संपूर्ण शक्तियाँ आत्म-संयम को अर्पण कर देता है।

उधर बिसाखी भूखों मरता था और अपने प्रारब्ध को रोता था। कभी यहाँ नौकरी करता, कभी वहाँ; मगर कुछ ही दिनों बाद जवाब मिल जाता। उसकी रूठी हुई तक्रवीर किसी हृदयहीन सुन्दरी के समान सीधे मुँह बात न करती थी। यहाँ तक कि कई-कई दिन बीत जाते और बिसाखी को खाना भी नसीब न होता। ये दुनिया के धक्के न थे, भाग्य के धक्के थे। उसकी कौन सहायता करता? कौन उसकी बाँह पकड़ता? वह अनाथ था, गरीब था और सबसे बढ़कर यह कि

अछूत बाप का बेटा था। हारकर उसने बज्जीराबाद स्टेशन पर क्लुली का काम शुरू कर दिया।

दोपहर का समय था। बिसाखी एक लाला का असबाब स्यालकोट की गाड़ी में रख रहा था। सहसा एक बूढ़े मेघ ने उसे पहचान लिया और आश्चर्य से कहा—अरे कौन, बिसाखी ?

बिसाखी ने चौंककर सिर उठाया, बूढ़े हाड़ीमल की ओर देखा और तब उछलकर उसके निकट आगया। हाड़ीमल ने उसे गले से लगा लिया और प्यार से कहा—बेटा बिसाखी, तू यहाँ कब से है ?

बिसाखी—कोई छः महीने से। कहिए, गाँव में तो कुशल है न ?

हाड़ी०—गाँव में कुशल कौसी ? पंडित जी मुश्किल से बचेंगे।

बिसाखी के मुँह का रंग उड़ गया। चौंककर बोला—क्या बीमार हो गये ?

हाड़ी०—बीमार तो नहीं हुए। संधाले से आ रहे थे, राह में पेरगाड़ी एक छकड़े से टकरा गई। कुचल गये। डाक्टरखाने में पड़े हैं।

बिसाखी—डाक्टर क्या कहता है ?

हाड़ी०—राम जाने, क्या कहता है ! हम लोग दवा नहीं जानते, बुआ जानते हैं। जो भगवान् सुन लेगा, तो बच जायेंगे; नहीं तो हमें ऐसा पुरस फिर न मिलेगा।

बिसाखी—आप उन्हें पुरस कहते हैं। वे पुरस नहीं, देवता हैं।

हाड़ी०—इसमें क्या शक है। तो आओ भाई, तुम भी चलो। यहाँ मजूरी क्या करोगे, तुम्हें बहुत याद करते थे।

बिसाखी—चलो, अब यहाँ न रहूँगा।

तीसरे पहर दोनों आदमी अस्पताल जा पहुँचे। वहाँ संधाले के आधे से अधिक लोग मौजूद थे। बिसाखी ने सेवा में दिन-रात एक कर दिया। उसे खाने-पीने की सुध न थी, न सोने का खयाल था। उसे केवल एक ही खयाल था, वह यही कि पंडित जी बीमार हैं और यह बीमारी भयानक है। वह दिल-जान से सेवा करता था। और यह सेवा,

यह मुहब्बत केवल बिसाखी ही से सम्भव थी। गाँव के बहुत-से लोग वहीं रहते थे। पंडित जी के कई सम्बन्धियों ने इस समय उनकी बात भी नहीं पूछी। वे उनके अपने थे। संधालेवाले उनके लिए तड़पते थे। वे पराये थे। उनको धर्म-कर्म का ज्ञान न था। वे अछूत थे।

(७)

तीन महीने के बाद पंडित जी स्वस्थ हुए और गाड़ी में बैठकर घर को चले। इस समय विद्या की आँखों में आनन्द खेलता था। वह बार-बार पति की ओर ताकती और भूमती थी। आज उसका पति अपने घर जा रहा है। आज उसकी आशाओं का चमन लहलहा रहा है।

एकाएक बिसाखी आकर गाड़ी के पास खड़ा हो गया और बोला—
जरा ठहर जाइए। बाजा आ ले।

विद्या०—(मुहब्बत से) बाजा कैसा ?

बिसाखी—हमने मँगवाया है। आपका जलूस निकलेगा।

प्रभु०—यह तुम लोगों को क्या सूझी ? इस धूम-धाम की जरा भी जरूरत न थी। जाओ, जाकर उन्हें रोक दो, नहीं मैं गाड़ी से उतर जाऊँगा।

बिसाखी—पंडित जी, आपकी आज्ञा सदा मानी है और सदा मानेंगे। मगर आज तो हमारी ही मरजी चलेगी। आज हम खुशी से पागल हो रहे हैं। शायद आपको ज्ञान न हो, संधाले के सारे लोग आये हैं।

प्रभु०—मगर इस जलूस की जरूरत क्या है ? लोग देखेंगे तो हँसेंगे।

बिसाखी—परमात्मा इसी तरह हँसाता रहे।

प्रभु०—यह तुम लोगों की सरासर ज़्यादती है। आखिर ज़रा सोचो तो सही।

विद्या०—चलो रहने दो, क्यों रोकते हो ? इन गरीबों की यही खुशी है, तो यही सही।

इस समय विद्या को बिसाखी से किये हुए कटु व्यवहार पर पश्चात्ताप हो रहा था। रह-रहकर दिल में लज्जित हो रही थी। थोड़ी बेर बाढ़ गाड़ी चली। आगे-आगे बंड बज रहा था, पीछे संधाले के मेघ भजन गा रहे थे और सबके पीछे पंडित जी की गाड़ी चल रही थी। इस समय उन सहृदय, सीधे-सादे, सच्चे देहातियों में कितना प्रेम था, कितनी उत्साह ! उनमें बनावट न थी, न दिखावे का भाव था। उनमें उच्च कोटि की श्रद्धा थी। यह लोकाचार न था, उनके हादिक भाव थे। यह स्वर्गीय दृश्य देखकर विद्या की आँखें खुल गईं। उसने पंडित जी की ओर देखा और धीरे से कहा—मुझे क्षमा करना। इन लोगों की पवित्रता, सादगी और श्रद्धा ने मेरे विचार बदल दिये हैं। मैं समझती थी, ये पतित हैं, इनमें मनुष्यत्व न होगा। हमारे साथ मिलना चाहते हैं, पर इसके योग्य नहीं। मगर तुम्हारी बीमारी ने मेरा सन्नेह मिटा दिया। ये मनुष्यत्व की कसौटी पर पूरे उतरे हैं। हम इसी शहर के रहने-वाले हैं, यहीं पैदा हुए, यहीं पले। यहाँ हमारे मिलने-जुलनेवालों की कमी नहीं। व्याह-शादी करें, तो सैकड़ों लोग आकर बधाई दें। मगर तुम्हारी बीमारी में यहाँ आनेवालों की संख्या इतनी थोड़ी थी कि उसकी कल्पना ही से लज्जा आती है। और, वह सहानुभूति भी बचन-रूप में थी, कार्य-रूप में नहीं। इने-गिने सम्बन्धियों को छोड़कर एक आदमी भी ऐसा न निकला, जो तुम्हारी सेवा के लिए एक रात भी यहाँ रह जाता। और, ये आदमी, ये गिरे हुए लोग—इनको अपने काम भूल गये। इनको केवल तुम्हारी चिन्ता थी। इन्होंने दिन-रात एक कर दिये। इनमें कृतज्ञता का भाव हम हिन्दुओं से भी अधिक है।

यह सुनकर प्रभुदत्त का पीला मुँह आमन्त्र से लाल हो गया। मुस्कराकर बोले—तुम तो इन लोगों से घृणा करती थीं। अब बताओ, इनमें धर्म है या नहीं ?

विद्या०—इनमें धर्म हो या नहीं, लेकिन इनका धर्म सच्चा धर्म है। ये दिखावा नहीं करते, न आगे बढ़-बढ़कर बातें बनाते हैं। मगर

समय पर अपनी लाज रख लेते हैं। मैंने इनको भी देखा है और इनकी स्त्रियों को भी। उनकी सादगी, पवित्रता और धर्म-परायणता ने मेरे मन को मोह लिया है। ये सच्चे आदमी हैं। अब तुमसे एक प्रार्थना है। मुझे निराश न करना, नहीं तो मुझे बहुत दुःख होगा।

प्रभु०—क्या कहती हो ?

विद्या०—बिसाखी को अपने घर बुला लो।

प्रभु०—(मुस्कराकर) मगर वह रसोई में खाना खायगा।

विद्या०—अब यह मजाक छोड़ो। कहो, स्वीकार किया। अब मैं उसे अछूत नहीं समझती। अब मेरा दिल जाग उठा है।

प्रभु०—तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार न करूँगा, तो रहूँगा कहाँ ?

विद्या०—पता नहीं, उस समय मेरी बुद्धि पर कैसा परदा पड़ गया था। वह घटना आज याद आती है, तो शरम से सिर नहीं उठता।

प्रभु०—विद्या, आज मेरा शरीर ही स्वस्थ नहीं हुआ, मन भी नीरोग हो गया है। तुमने मुझे ख़ुश कर दिया। जो चाहता है, तुम्हें मंह-मांगा इनाम दूँ। बोलो, क्या लोगी ?

विद्या०—जो चाहूँ माँग लूँ ?

प्रभु०—हाँ, जो चाहो माँग लो।

विद्या—इन सब भक्तों को अपने मकान पर बुलाकर खाना खिलाओ, ताकि सारे शहर को पता लग जाये कि हम इनसे घृणा नहीं करते।

प्रभु०—(चौंककर) विद्या, यह तुम क्या कह रही हो ? तुम्हारा घर अपवित्र हो जायेगा।

विद्या०—नहीं, मेरा घर शुद्ध हो जायेगा।

प्रभु०—तुम तो एकदम दूसरे सिरे जा पहुँचीं। मुहल्ले के लोग क्या कहेंगे ? यही कि पहले पति किरानी हुआ था, अब स्त्री भी क्रिस्टान हो गई।

विद्या०—मुझे उनकी ज़रा भी परवा नहीं है।

प्रभु०—रसोइया नौकरी छोड़ जायगा।

विद्या०—छोड़ जाय। मैं खाना आप बना लूंगी।

प्रभु०—कहार पानी न भरेगा।

विद्या०—एक पम्प लगवा दो; कहार की जरूरत ही न रहेगी।

प्रभु०—और तुम्हारी सखियाँ ?

विद्या०—उनकी आँखें भी जल्द ही खुल जायेंगी। अब तुम बहाने न ढूँढ़ो, दावत के लिए रुपये निकालो।

प्रभु०—जो चाहो, ले लो; तुमसे बाहर थोड़े हैं। जुमाना हो गया, अब माफ़ होने की कोई सम्भावना ही नहीं।

विद्या मुस्कराने लगी।

३—ताई

[श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा, कौशिक]

(१)

“ताऊ जी, हमें लेलगाली (रेलगाड़ी) ला दोगे ?”—कहता हुआ एक पंचवर्षीय बालक बाबू रामजीदास की ओर दौड़ा ।

बाबू साहब ने दोनों बांहें फैलाकर कहा—हाँ बेटा, ला दोगे ।

उनके इतना कहते-कहते बालक उनके निकट आ गया । उन्होंने बालक को गोद में उठा लिया और उसका मुख चूमकर बोले—क्या करेगा रेलगाड़ी ?

बालक बोला—उसमें बैठ के बली दूल जायेंगे । हम भी जायेंगे, चुन्नी को भी ले जायेंगे । बाबू जी को नहीं ले जायेंगे । हमें लेलगाली नहीं ला देते । ताऊ जी, तुम ला दोगे, तो तुम्हें ले जायेंगे ।

बाबू—और किसको ले जायगा ?

बालक दम-भर सोचकर बोला—बछ, आँल किछी को नहीं ले जायेंगे ।

पास ही बाबू रामजीदास की अर्द्धांगिनी बंठी थीं । बाबू साहब ने उनकी ओर इशारा करके कहा—और अपनी ताई को नहीं ले जायगा ?

बालक कुछ देर तक अपनी ताई की ओर देखता रहा । ताई जी उस समय कुछ चिढ़ी हुई-सी बंठी थीं । बालक को उनके मुख का वह भाव अच्छा न लगा । अतएव वह बोला—ताई को नहीं ले जायेंगे ।

ताई जी सुपारी काटती हुई बोलीं—अपने ताऊ जी ही को ले जा ! मेरे ऊपर दया रख !

ताई ने यह बात बड़ी रुखाई के साथ कही । बालक ताई के शुष्क व्यवहार को तुरन्त ताड़ गया । बाबू साहब ने फिर पूछा—

“ताई को क्यों नहीं ले जायगा ?”

बालक—ताई हमें प्याल (प्यार) नहीं कलतीं।

बाबू—जो प्यार करें, तो ले जायगा ?

बालक को इसमें कुछ सन्देह था। ताई का भाव देखकर उसे यह आशा नहीं थी कि वे प्यार करेंगी। इससे बालक मौन रहा।

बाबू साहब ने फिर पूछा—क्यों रे, बोलता नहीं ? ताई प्यार करें, तो रेल पर बिठाकर ले जायगा ?

बालक ने ताऊ जी को प्रसन्न करने के लिए केवल सिर हिलाकर स्वीकार कर लिया; परन्तु मुख से कुछ नहीं कहा।

बाबू साहब उसे अपनी अर्द्धांगिनी जी के पास ले जाकर उमसे बोले—लो, इसे प्यार कर लो, तो यह तुम्हें भी ले जायगा। परन्तु बच्चे की ताई श्रीमती रामेश्वरी को पति की यह चुहलबाजी अच्छी न लगी। वे तुमक कर बोली—तुम्हीं रेल पर बंठकर जाओ, मुझे नहीं जाना है।

बाबू साहब ने रामेश्वरी की बात पर ध्यान नहीं दिया। बच्चे को उनकी गोद में बिठाने की चेष्टा करते हुए बोले—प्यार नहीं करोगी, तो फिर रेल में नहीं बिठावेगा।—क्यों रे मनोहर ?

मनोहर ने ताऊ की बात का उत्तर नहीं दिया। उधर ताई ने मनोहर को अपनी गोद से ढकेल दिया। मनोहर नीचे गिर पड़ा। शरीर में चोट नहीं लगी; पर हृदय में जोद लगी। बालक रो पड़ा।

बाबू साहब ने बालक को गोद में उठा लिया, चुम्बकार-मुचकार कर बुझ किया, और तत्पश्चात् उसे कुछ पैसे तथा रेलगाड़ी ला डेरे का बचन देकर छोड़ दिया। बालक मनोहर भय-पूर्ण दृष्टि से अपनी ताई की ओर नाकता हुआ उस स्थान से चला गया।

मनोहर के चले जाने पर बाबू रामजीदास रामेश्वरी से बोले—तुम्हारा यह कैसा व्यवहार है ? बच्चे को ढकेल दिया ! जो उसके खीट लग जाती, तो ?

रामेश्वरी मुह मटकाकर बोली—लग जाती, तो अच्छा होता।

क्यों मेरी खोपड़ी पर लादे देते थे ? आप ही तो उसे मेरे ऊपर डालते थे, और आप ही अब ऐसी बातें करते हैं।

बाबू साहब कुढ़कर बोले—इसी को खोपड़ी पर लादना कहते हैं।

रामेश्वरी—और नहीं किसे कहते हैं ! तुम्हें तो अपने आगे और किसी का दुःख-सुख सूझता ही नहीं। न जाने कब किसका जी कैसा होता है। तुम्हें इन बातों की कोई परवा ही नहीं, अपनी चुहल से काम है।

बाबू—बच्चों की प्यारी-प्यारी बातें सुनकर तो चाहे जैसा जी हो, प्रसन्न हो जाता है; मगर तुम्हारा हृदय न जाने किस धातु का बना हुआ है !

रामेश्वरी—तुम्हारा हो जाता होगा। और होने को होता भी है; मगर वैसा बच्चा भी तो हो ! पराये धन से भी कहीं घर भरता है।

बाबू साहब कुछ देर चुप रह कर बोले—यदि अपना सगा भतीजा भी पराया धन कहा जा सकता है, तो फिर मैं नहीं समझता कि अपना धन किसे कहेंगे।

रामेश्वरी कुछ उत्तेजित होकर बोलीं—बातें बनाना बहुत आता है। तुम्हारा भतीजा है, तुम चाहे जो समझो; पर मुझे ये बातें अच्छी नहीं लगतीं। हमारे भाग ही फूटे हैं ! नहीं तो ये दिन काहे को देखने पड़ते ! तुम्हारा चलन तो दुनिया से निराला है। आदमी सन्तान के लिए न जाने क्या-क्या करते हैं—पूजा-पाठ कराते हैं, व्रत रखते हैं; पर तुम्हें इन बातों से क्या काम ? रात-दिन भाई-भतीजों में मगन रहते हो।

बाबू साहब के मुख पर घृणा का भाव झलक आया। उन्होंने कहा—पूजा, पाठ, व्रत, सब ढकोसला है। जो वस्तु भाग में नहीं, वह पूजा-पाठ से कभी प्राप्त नहीं हो सकती। मेरा तो यह अटल विश्वास है।

श्रीमती जी कुछ-कुछ रुआंसे स्वर में बोलीं—इसी विश्वास ने तो सब चौपट कर रखवा है ! ऐसे ही विश्वास पर सब बैठ जायें, तो काम

कैसे चले। सब विश्वास पर ही बैठे रहें, आदमी काहे को किसी बात के लिए चेष्टा करे।

बाबू साहब ने सोचा कि मूर्ख स्त्री के मुंह लगना ठीक नहीं; अतएव वे स्त्री की बात का कुछ उत्तर न देकर वहाँ से टल गये।

(२)

बाबू रामजीदास धनी आदमी हैं। कपड़े की आदत का काम करते हैं। लेन-देन भी हैं। इनके एक छोटा भाई भी है। उसका नाम है कृष्ण-दास। दोनों भाइयों का परिवार एक ही में है। बाबू रामजीदास की आयु ३५ वर्ष के लगभग है और छोटे भाई कृष्णदास की २१ के लगभग। रामजीदास निस्सन्तान है। कृष्णदास के दो सन्तान हैं। एक पुत्र—वही पुत्र, जिससे पाठक परिचित हो चुके हैं—और एक कन्या है। कन्या की आयु दो वर्ष के लगभग है।

रामजीदास अपने छोटे भाई और उनकी सन्तान पर बड़ा स्नेह रखते हैं—ऐसा स्नेह कि उसके प्रभाव से उन्हें अपनी सन्तान-हीनता कभी खटकती ही नहीं। छोटे भाई की सन्तान को वे अपनी ही सन्तान समझते हैं। दोनों बच्चे भी रामजीदास से इतने हिले हैं कि उन्हें अपने पिता से भी अधिक समझते हैं।

परन्तु रामजीदास की पत्नी रामेश्वरी को अपनी सन्तान-हीनता का बड़ा दुःख है। वे दिन-रात सन्तान ही के सोच में घुला करती हैं। छोटे भाई की सन्तान पर पति का प्रेम उनकी आँखों में काँटे की तरह खटकता है।

रात को भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर रामजीदास शय्या पर लेटे हुए शीतल और मन्द वायु का आनन्द ले रहे थे। पास ही दूसरी शय्या पर रामेश्वरी, हथेली पर सिर रखे, किसी चिन्ता में डूबी हुई थीं। दोनों बच्चे अभी बाबू साहब के पास से उठकर अपनी मा के पास गये थे।

बाबू साहब ने अपनी स्त्री की ओर करबट लेकर कहा—आज तुमने मनोहर को इस बुरी तरह से ढकेला था कि मुझे अब तक उसका दुःख है। कभी-कभी तो तुम्हारा व्यवहार बिल्कुल ही अमानुषिक हो उठता है।

रामेश्वरी बोलीं—तुम्हीं ने मुझे ऐसा बना रखा है। उस दिन उस पंडित ने कहा था कि हम दोनों के जन्म-पत्र में सन्तान का जोग है और उपाय करने से सन्तान हो भी सकती है। उसने उपाय भी बताये थे; पर तुमने उनमें से एक भी उपाय करके न देखा। बस, तुम तो इन्हीं बीबी में भगम हो। तुम्हारी इस बात से रात-दिन मेरा कलेजा सुलगता रहता है। आदमी उपाय तो करके देखता है। फिर होना न होना तो भगवान् के आधीन है।

बाबू साहब हँसकर बोले—तुम्हारी जैसी सीधी स्त्री भी.... क्या कहूँ, तुम इन ज्योतिषियों की बातों पर बिश्वास करती हो, जो दुनिया भर के झूठे और धूर्त हैं! ये झूठ बोलने ही की रोटियाँ खाते हैं।

रामेश्वरी तुनककर बोलीं—तुम्हें तो सारा संसार झूठा ही बिछाई पड़ता है। ये पोथी-पुराण भी सब झूठे हैं? पंडित कुछ अपनी तरफ से तो बनाकर कहते ही नहीं हैं। शास्त्र में जो लिखा है, वही वे भी कहते हैं। शास्त्र झूठा है, तो वे भी झूठे हैं। अँगरेजी क्या पढ़ी, अपने भागे किसी को गिनते ही नहीं। जो बातें बाप-दादे के जमाने से चली आई हैं, उन्हें भी झूठा बताते हैं।

बाबू साहब—तुम बात तो समझती नहीं, अपनी ही ओंटे जाती हो। मैं यह नहीं कहता कि ज्योतिष-शास्त्र झूठा है। सम्भव है, वह सच्चा हो; परन्तु ज्योतिषियों में अधिकांश झूठे होते हैं। उन्हें ज्योतिष का पूर्ण ज्ञान तो होता नहीं, वो एक छोटी-मोटी पुस्तकें पढ़कर ज्योतिषी बन बैठते और लोगों को ठगते फिरते हैं। ऐसी वशा में उनकी बातों पर कैसे बिश्वास किया जा सकता है?

रामेश्वरी—हूँ, सब झूठे ही हैं, तुम्हीं एक बड़े सच्चे हो! अच्छा,

एक बात पूछती हूँ। भला तुम्हारे जी में सन्तान की इच्छा क्या कभी नहीं होती ?

इस बार रामेश्वरी ने बाबू साहब के हृदय का कोमल स्थान पकड़ा। वे कुछ देर चुप रहे। तत्पश्चात् एक लम्बी सांस लेकर बोले—भला ऐसा कौन मनुष्य होगा, जिसके हृदय में सन्तान का मुख देखने की इच्छा न हो ? परन्तु किया क्या जाय ? जब नहीं है और न होने की कोई आशा ही है, तब उसके लिए व्यर्थ चिन्ता करने से क्या लाभ ? इसके सिवा जो बात अपनी सन्तान से होती, वही भाई की सन्तान से भी तो हो रही है। जितना स्नेह अपनी पर होता, उतना ही इन पर भी है। जो आनन्द उनकी बाल-क्रीड़ा से आता, वही इनकी क्रीड़ा से भी आ रहा है। फिर मैं नहीं समझता कि चिन्ता क्यों की जाय।

रामेश्वरी कुड़कर बोली—तुम्हारी समझ को मैं क्या कहूँ। इसी से तो रात-दिन जला करती हूँ। भला यह तो बताओ कि तुम्हारे पीछे क्या इन्हीं से तुम्हारा नाम चलेगा ?

बाबू साहब हँसकर बोले—अरे तुम भी कहां की पोच बातें लाईं। नाम सन्तान से नहीं चलता। नाम अपनी सुकृति से चलता है। तुलसीदास को देश का बच्चा-बच्चा जानता है। सूरदास को मरे कितने दिन हो चुके ? इसी प्रकार जितने महात्मा हो गये हैं, उन सबका नाम क्या उनकी सन्तान ही की बदौलत चल रहा है ? सच पूछो, तो सन्तान से जितना नाम चलने की आशा रहती है, उतनी ही नाम डूब जाने की भी सम्भावना रहती है; परन्तु सुकृति एक ऐसी वस्तु है, जिससे नाम बढ़ने के सिवा घटने की कभी आशंका रहती ही नहीं। हमारे शहर में राय गिरिधारीलाल कितने नामी आवामी थे। उनके सन्तान कहाँ हैं ? पर उनकी धर्मशाला और अनाथालय से उनका नाम अब तक चलता जा रहा है और अभी न जाने कितने दिनों तक चलता जायगा।

रामेश्वरी—शास्त्र में लिखा है कि जिसके पुत्र नहीं होता, उसकी मुक्ति नहीं होती।

बाबू—मुक्ति पर मुझे विश्वास ही नहीं। मुक्ति है किस चिड़िया का नाम ? यदि मुक्ति होना मान भी लिया जाय, तो यह कैसे माना जा सकता है कि सब पुत्रवानों की मुक्ति हो ही जाती है ? मुक्ति का भी क्या सहज उपाय है ? ये जितने पुत्रवाले हैं, सभी की तो मुक्ति हो जाती होगी ?

रामेश्वरी निरुत्तर होकर बोलीं—अब तुमसे कौन बकवाद करे। तुम तो अपने सामने किसी की मानते ही नहीं।

(३)

मनुष्य का हृदय बड़ा ममत्व-प्रेमी है। कैसी ही उपयोगी और कितनी ही सुन्दर वस्तु क्यों न हो; जब तक मनुष्य उसको पराई समझता है, तब तक उससे प्रेम नहीं करता; किन्तु भद्दी से भद्दी और बिल्कुल काम में आनेवाली वस्तु को भी, यदि मनुष्य अपनी समझता है, तो उससे प्रेम करता है। पराई वस्तु कितनी ही मूल्यवान् क्यों न हो, कितनी ही उपयोगी क्यों न हो, कितनी ही सुन्दर क्यों न हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं करता; इसलिए कि वह वस्तु उसकी नहीं, पराई है। अपनी वस्तु कितनी ही भद्दी हो, काम में न आनेवाली हो, उसके नष्ट होने पर मनुष्य को दुःख होता है; इसलिए कि वह अपनी चीज है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य पराई चीज से प्रेम करने लगता है। ऐसी दशा में भी जब तक मनुष्य उस वस्तु को अपनी बनाकर नहीं छोड़ता, अथवा अपने हृदय में यह विचार नहीं दृढ़ कर लेता कि यह वस्तु मेरी है, तब तक उसे सन्तोष नहीं होता। ममत्व से प्रेम उत्पन्न होता है, और प्रेम से ममत्व। इन दोनों का साथ चोली-दामन का-सा होता है। ये कभी पृथक् नहीं किये जा सकते।

यद्यपि रामेश्वरी को माता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था, तथापि उनका हृदय एक माता का हृदय बनने की पूरी योग्यता रखता था। उनके हृदय में वे गुण विद्यमान तथा अन्तर्निहित थे, जो एक माता

के हृदय में होते हैं; परन्तु उनका विकास नहीं हुआ था। उनका हृदय उस भूमि की तरह था, जिसमें बीज तो पड़ा हुआ है, पर उसको सोंचकर और इस प्रकार बीज को प्रस्फुटित करके भूमि के ऊपर लानेवाला कोई नहीं। इसी लिए उनका हृदय उन बच्चों की ओर खिंचता तो था; परन्तु जब उन्हें ध्यान आता था कि ये बच्चे मेरे नहीं दूसरे के हैं, तब उनके हृदय में उनके प्रति द्वेष उत्पन्न होता था, घृणा पैदा होती थी। विशेषकर उस समय उनके द्वेष की मात्रा और भी बढ़ जाती थी, जब वे यह देखती थीं कि उनके पतिदेव उन बच्चों पर प्राण देते हैं, जो उनके (रामेश्वरी) के नहीं हैं।

शाम का समय था। रामेश्वरी खुली छत पर बैठी हवा खा रही थीं। पास ही उनकी देवरानी भी बैठी थीं। दोनों बच्चे छत पर दौड़-बौड़कर खेल रहे थे। रामेश्वरी उनके खेल को देख रही थीं। इस समय रामेश्वरी को उन बच्चों का खेलना-कूदना बड़ा भला मालूम हो रहा था। हवा में उड़ते हुए उनके बाल, कमल की तरह खिले हुए उनके नन्हें-नन्हें मुख, उनकी प्यारी-प्यारी तोतली बातें, उनका चिल्लाना, भागना, लोट जाना इत्यादि क्रीड़ाएँ उनके हृदय को शीतल कर रही थीं। सहसा मनोहर अपनी बहन को मारने दौड़ा। वह खिलखिलाती हुई दौड़कर रामेश्वरी की गोद में जा गिरी। उसके पीछे-पीछे मनोहर भी दौड़ता हुआ आया और वह भी उन्हीं की गोद में जा गिरा। रामेश्वरी उस समय सारा द्वेष भूल गई। उन्होंने दोनों बच्चों को उसी प्रकार हृदय से लगा लिया, जिस प्रकार वह मनुष्य लगाता है, जो कि बच्चों के लिए तरस रहा हो। उन्होंने बड़ी सतृण्णता से दोनों को प्यार किया। उस समय यदि कोई अपरिचित मनुष्य उन्हें देखता, तो उसे यही विश्वास होता कि रामेश्वरी ही उन बच्चों की माता है।

दोनों बच्चे बड़ी देर तक उनकी गोद में खेलते रहे। सहसा उसी समय किसी के आने की आहट पाकर बच्चों की माता वहाँ से उठकर चली गई।

“मनोहर, ले रेलगाड़ी।”—कहते हुए बाबू रामजीदास छत पर आये। उनका स्वर सुनते ही दोनों बच्चे रामेश्वरी की गोद से तड़पकर निकल भागे। रामजीदास ने पहले दोनों को खूब प्यार किया, फिर बैठकर रेलगाड़ी दिखाने लगे।

इधर रामेश्वरी की नींद-सी टूटी। पति को बच्चों में मगन होते देखकर उनकी भौंहेँ तन गईं। बच्चों के प्रति हृदय में फिर वही घृणा और द्वेष का भाव जग उठा।

बच्चों को रेलगाड़ी देकर बाबू साहब रामेश्वरी के पास आये और मुस्कराकर बोले—आज तो तुम बच्चों को बड़ा प्यार कर रही थीं ! इससे मालूम होता है कि तुम्हारे हृदय में भी इनके प्रति कुछ प्रेम अबश्य है।

रामेश्वरी को पति की यह बात बहुत बुरी लगी। उन्हें अपनी कमजोरी पर बड़ा दुःख हुआ। केवल दुःख ही नहीं, अपने ऊपर क्रोध भी आया। वह दुःख और क्रोध पति के उक्त वाक्य से और भी बढ़ गया। उनकी कमजोरी पति पर प्रकट हो गई, यह बात उनके लिए असह्य हो उठी।

रामजीदास बोले—इसी लिए मैं कहता हूँ कि अपनी सन्तान के लिए सोच करना वृथा है। यदि तुम इनसे प्रेम करने लगे, तो तुम्हें ये ही अपनी सन्तान प्रतीत होने लगेंगी। मुझे इस बात से प्रसन्नता है कि तुम इनसे स्नेह करना सीख रही हो।

यह बात बाबू साहब ने नितान्त शुद्ध हृदय से कही थी; परन्तु रामेश्वरी को इसमें व्यंग्य की तीक्ष्ण गन्ध मालूम हुई। उन्होंने कुढ़कर मन में कहा—इन्हें मौत भी नहीं आती। मर जायें, पाप कटे ! आठों पहर आँखों के सामने रहने से प्यार करने को जी ललचा ही उठता है। इनके मारे कलेजा और भी जला करता है।

बाबू साहब ने पत्नी को मौन देखकर कहा—अब भैंपने से क्या

लाभ ? अपने प्रेम को छिपाने की चेष्टा करना व्यर्थ है। छिपाने की आवश्यकता भी नहीं।

रामेश्वरी जल-भुनकर बोलीं—मुझे क्या पड़ी है, जो मैं प्रेम करूँगी ? तुम्हीं को सुबारक रहे ! निगोड़े आप ही आ-आ के घुसते हैं। एक घर में रहने से कभी-कभी हँसना-बोलना पड़ता है। अभी परसों जरा यों ही ठकेल दिया, उस पर तुमने संकड़ों बातें सुनाईं। संकट में प्राण हैं, न यों चैन, न त्यों चैन !

बाबू साहब की पत्नी के वाक्य सुनकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने कर्कश स्वर में कहा—न जाने कैसे हृदय की स्त्री है। अभी अच्छी-खासी बीठी बच्चों को प्यार कर रही थी। मेरे आते ही गिरगिट की तरह रंग बदलने लगी। अपनी इच्छा से चाहे जो करे; पर मेरे कहने से बल्लियों उछलती हैं। न जाने मेरी बातों में कौन-सा विष घुला रहता है। यदि बैरा कहना ही बुरा मालूम होता है, तो न कहा करूँगा; पर इतना याद रखी कि अब जो कभी इनके विषय में निगोड़े-सिगोड़े इत्यादि अपशब्द निकाले, तो अच्छा न होगा ! तुमसे मुझे ये बच्चे कहीं अधिक प्यारे हैं।

रामेश्वरी ने इसका कोई उत्तर न दिया। अपने क्षोभ तथा क्रोध को वे आँखों-द्वारा निकालने लगीं।

जैसे ही जैसे बाबू रामजीदास का स्नेह दोनों बच्चों पर बढ़ता जाता था, वैसे ही वैसे रामेश्वरी के द्वेष और घृणा की मात्रा भी बढ़ती जाती थी। प्रायः बच्चों के पीछे पति-पत्नी में कहा-सुनी हो जाती थी और रामेश्वरी को पति के कटु वचन सुनने पड़ते थे। जब रामेश्वरी ने यह देखा कि बच्चों के कारण ही वे पति की नज़र से गिरती जा रही हैं, तब उनके हृदय में बड़ा तूफ़ान उठा। उन्होंने सोचा—पराये बच्चों के पीछे ये मुझसे प्रेम काय करते जाते हैं, मुझे हर समय बुरा-भला कहा करते हैं। इनके लिए ये बच्चे ही सब कुछ हैं, मैं कुछ भी नहीं ! दुनिया मरती जाती है; पर इन दोनों को मीत नहीं। ये पैदा होते ही क्यों न मर

गये। न ये होते, न मुझे ये दिन देखने पड़ते। जिस दिन ये मरेंगे, उस दिन घी के दिये जलाऊँगी। इन्होंने ही मेरा घर सत्यानाश कर रक्खा है।

इसी प्रकार कुछ दिन व्यतीत हुए। एक दिन नियमानुसार रामेश्वरी छत पर अकेली बैठी हुई थीं। उनके हृदय में अनेक प्रकार के विचार आ रहे थे; विचार और कुछ नहीं, वही अपनी निज की संतान का अभाव, पति का भाई की सन्तान के प्रति अनुराग इत्यादि। कुछ देर बाद जब उनके विचार स्वयं उन्हीं को कष्टदायक मालूम होने लगे, तब वे अपना ध्यान दूसरी ओर लगाने के लिए उठकर टहलने लगीं।

वे टहल ही रही थीं कि मनोहर दौड़ता हुआ आया। मनोहर को देखकर उनकी भृकुटी चढ़ गई और वे छत की चहारदीवारी पर हाथ रखकर खड़ी हो गईं।

सन्ध्या का समय था। आकाश में रंग-बिरंगी पतंगें उड़ रही थीं। मनोहर कुछ देर तक खड़ा पतंगों को देखता और सोचता रहा कि कोई पतंग कटकर उसकी छत पर गिरे, तो क्या ही आनन्द आवे। देर तक पतंग गिरने की आशा करने के बाद वह दौड़कर रामेश्वरी के पास आया और उनकी टाँगों में लिपटकर बोला—ताई हमें पतंग मंगा दो।—रामेश्वरी ने झिड़ककर कहा—चल हट, अपने ताऊ से माँग जाकर।

मनोहर कुछ अप्रतिभ होकर फिर आकाश की ओर ताकने लगा। थोड़ी देर बाद उससे फिर न रहा गया। इस बार उसने बड़े लाड़ में आकर अत्यन्त कष्ट-स्वर में कहा—ताई, पतंग मंगा दो—हम भी उड़ावेंगे।

इस बार उसकी भोली प्रार्थना से रामेश्वरी का कलेजा कुछ पसीज गया। वे कुछ देर तक उसकी ओर स्थिर दृष्टि से देखती रहीं फिर उन्होंने एक लंबी साँस लेकर मन ही मन कहा—यदि यह मेरा पुत्र होता, तो आज मुझसे बढ़कर भागवान स्त्री संसार में दूसरी न होती। निगोड़े-मारा कितना सुन्दर है और कैंसी प्यारी-प्यारी बातें करता है, यही जी चाहता है कि उठाकर छाती से लगा लें।

यह सोचकर वे उसके सिर पर हाथ फेरनेवाली ही थीं कि इतने में मनोहर उन्हें मौन देखकर बोला—तुम हमें पतंग नहीं मँगवा दोगी तो ताऊ जी से कहकर पिटवावेंगे।

यद्यपि बच्चे की इस भोली बात में भी बड़ी मधुरता थी, तथापि रामेश्वरी का मुख क्रोध के मारे लाल हो गया। वे उसे झिड़ककर बोलीं—जा, कह दे अपने ताऊ जी से। देखूँ, वे मेरा क्या कर लेंगे ?

मनोहर भयभीत होकर उनके पास से हट आया और फिर सतृष्ण नेत्रों से आकाश में उड़ती हुई पतंगों को देखने लगा।

इधर रामेश्वरी ने सोचा—यह सब ताऊ जी के दुलार का फल है कि बालिस्त भर का लड़का मुझे धमकाता है। ईश्वर करे इस दुलार पर बिजली टूटे।

उसी समय आकाश से एक पतंग कटकर उसी छत की ओर आई और रामेश्वरी के ऊपर से होती हुई छज्जे की ओर गई। छत के चारों ओर चहारबीचारी थी। जहाँ रामेश्वरी खड़ी हुई थीं, केवल वहीं पर एक द्वार था, जिससे छज्जे पर आ-जा सकते थे। रामेश्वरी उस द्वार से सटी हुई खड़ी थीं। मनोहर ने पतंग को छज्जे पर जाते देखा। पतंग पकड़ने के लिए वह दौड़कर छज्जे की ओर चला। रामेश्वरी खड़ी देखती रहीं। मनोहर उनके पास से होकर छज्जे पर चला गया और उनसे दो फुट की दूरी पर खड़ा होकर पतंग को देखने लगा। पतंग छज्जे पर से होती हुई नीचे, घर के आँगन में, जा गिरी। एक पैर छज्जे की मुंडेर पर रखकर मनोहर ने नीचे आँगन में झाँका और पतंग को आँगन में गिरते देख, प्रसन्नता के मारे फूला न समाया। वह नीचे जाने के लिए शीघ्रता से घूमा; परन्तु घूमते समय मुंडेर पर से उसका पैर फिसल गया। वह नीचे की ओर चला। नीचे जाते-जाते उसके दोनों हाथों में मुंडेर आगई। वह उसे पकड़कर लटक गया और रामेश्वरी की ओर देखकर बिल्लाया—ताई ! रामेश्वरी ने धड़कते हुए हृदय से इस घटना को देखा। उनके मन में आया कि अच्छा है, मरने दो; सब का पाप कट

जायगा। यह सोचकर वे एक क्षण के लिए रुकीं। उधर मनोहर के हाथ मुंडेर पर से फिलसने लगे। वह अत्यन्त भय तथा कष्ट नेत्रों से रामेश्वरी की ओर देखकर चिल्लाया—अरी ताई! रामेश्वरी की आँखें मनोहर की आँखों से जा मिलीं। मनोहर की वह कष्ट दृष्टि देखकर रामेश्वरी का कलेजा मुंह को आगया। उन्होंने व्याकुल होकर मनोहर को पकड़ने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उनका हाथ मनोहर के हाथ तक पहुँचा ही था कि मनोहर के हाथ से मुंडेर छूट गई। वह नीचे आ गिरा। रामेश्वरी चीख मारकर छज्जे पर गिर पड़ीं।

रामेश्वरी एक सप्ताह तक बुखार में बेहोश पड़ी रहीं। कभी-कभी वे जोर से चिल्ला उठतीं और कहतीं—देखो-देखो वह गिरा जा रहा है—उसे बचाओ—दौड़ो—मेरे मनोहर को बचा लो। कभी वे कहतीं—बेदा मनोहर मने तुझे नहीं बचाया। हाँ, हाँ, मैं चाहती, तो बचा सकती थी—मैंने देर कर दी।—इसी प्रकार के प्रलाप वे किया करतीं।

मनोहर की टाँग उखड़ गई थी। टाँग बिठा दी गई। वह क्रमशः फिर अपनी असली हालत पर आने लगा।

एक सप्ताह बाद रामेश्वरी का ज्वर कम हुआ। अच्छी तरह होश आने पर उन्होंने पूछा—मनोहर कैसा है?

रामजीदास ने उत्तर दिया—अच्छा है।

रामेश्वरी—उसे मेरे पास लाओ।

मनोहर रामेश्वरी के पास लाया गया। रामेश्वरी ने उसे बड़े प्यार से हृदय से लगाया। आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई; हिचकियों से गला बंध गया।

रामेश्वरी कुछ दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ हो गई। अब वे मनोहर की बहन सुखी से भी द्वेष और घृणा नहीं करतीं। और, मनोहर तो अब उनका प्राणाधार हो गया है। उसके बिना उन्हें एक क्षण भी कल नहीं पड़ती।

४—पुरस्कार

[श्री जयशंकर 'प्रसाद']

आर्द्रा नक्षत्र, आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुग्धभी का गम्भीर घोष। प्राचीर के एक मिरभ कोने से स्वर्ण-पुष्प भाँकने लगा था—देखने लगा महाराज की सवारी। रौलमाला के अंघल में, सखल उर्वरा-भूमि से, सौंधी बाल उठ रही थी। नगर-तोरण से जय-घोष हुआ; भीड़ में गजराज का चामरधारी गुण्ड उभरत दिखाई पड़ा। हर्ष और उत्साह का वह समुद्र हिलोरें भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम-किरणों से अनुरजित नन्हीं-नन्हीं बूंदों का एक भाँका स्वर्ण प्रह्लिका के सन्धान भरत पड़ा। मङ्गल सूचना से जनता ने हर्ष-ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गई। दशकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बंढ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी मुन्दरियों के दो हल, आस-पड़लवों से सुशोभित मङ्गल-कलश और कूल, कुमकुम तथा खीलों से भरे धाल लिये, मधुर गाय करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्कान थी। पुरोहित-वर्ग ने स्वस्वयन किया। स्वर्ण-रंजित हल की मूठ पकड़कर महाराज ने जुते हुए मुन्दर पुष्ट बेलों को चकने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की बर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज का कृष्क बनना पड़ता—उस दिन इन्द्र-पूजन की भूमिमान होती, गोठ होती। नगर-निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनन्द मनाते। प्रसिद्ध कृषि का

यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता; दूसरे राज्यों से भी युवक राज-कुमार इस उत्सव में आकर बड़े चाव से योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बड़े कौतूहल से यह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक थाल लिये कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेल मधूलिका का था, जो इस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था। इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला। वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौपेय वसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वयं सौभित हो रहा था। वह कभी उसे सँभालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक-बालिका के शुभ्र भाल पर श्रम-कणों की भी कमी न थी। वे सब बरौनियों में गुंथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते, किन्तु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता न दिखलाई। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे—विस्मय से, कौतूहल से! और अरुण देख रहा था, कृषक-कुमारी मधूलिका को। आह, कितना भोला सौन्दर्य! कितनी सरल चितवन!

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेल का पुरस्कार दिया, थाल में कुछ स्वर्ण-मुद्रायें। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगा ली, किन्तु साथ ही उसमें की स्वर्ण-मुद्राओं को महाराज पर न्यौछावर करके बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भुकुटि भी जरा चढ़ी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा—

“देव! यह मेरे पितृ-पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है, इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।”

महाराज के बोलने के पहले ही वृद्ध मन्त्री ने तीखे स्वर से कहा—
“अबोध! क्या बक रही है? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार! तेरी

भूमि से चौगुना मूल्य है; फिर कोशल का यह सुनिश्चित राजकीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई; इस धन से अपने को सुखी बना।”

“राजकीय रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है, मन्त्रिवर ! महाराज को भूमि-समर्पण करने में तो मेरा कोई विरोध न था और न है, किन्तु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है।” मधूलिका उत्तेजित हो उठी थी।

महाराज के संकेत करने पर मन्त्री ने कहा—“देव ! वाराणसी-युद्ध के अन्यतम वीर सिंहमित्र की यह एक-मात्र कन्या है।” महाराज चौंक उठे—“सिंहमित्र की कन्या ! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रख ली थी, मधूलिका उसी वीर की कन्या है ?”

“हाँ, देव !”—सचिनय मन्त्री ने कहा।

“इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या हैं, मन्त्रिवर ?”—महाराज ने पूछा।

“देव, नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुनकर, नियमानुसार पुरस्कार-स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रहपूर्वक; अर्थात् भूसम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।”

महाराज को विचार-संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जय-घोष के साथ उत्सव समाप्त हुआ। सब अपने-अपने शिविरों में चले गये। किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर, विशाल मधुक, वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में, अनमनी, चुपचाप बैठी रही।

x

x

x

x

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ—वह अपने विश्राम-भवन में जागरण कर रहा

था। आँखों में नींद न थी। प्राची में जैसी गुलाबी खिल रही थी, वही रङ्ग उसकी आँखों में था। सामने देखा तो मुँड़े पर कपोती, एक पैर पर खड़ी, पंख फैलाये अंगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था; वह देखते-देखते नगर-तोरण पर जा पहुँचा। रक्षक-गण ऊँघ रहे थे। वे अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक कुमार तीर-सा निकल गया। सिन्धु देश का तुरङ्ग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता-घूमता अरुण उसी मधूक वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए, खिन्न निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी-लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मृकुलित थे, भ्रमर निस्पन्द ! अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया; उस मुषमा को देखने के लिए। परन्तु कोकिल बोल उठी। उसने अरुण से प्रश्न किया—“छिः, कुमारी के सोये हुए सौन्दर्य पर दृष्टिपात करनेवाले धृष्ट, तुम कौन ?” मधूलिका की आँखें खुल पड़ीं। उसने देखा, एक अपरिचित युवक। वह सड़्कोच से उठ बैठी। “भद्रे ! तुम्हीं न कल के उत्सव की संचालिका रही हो ?”

“उत्सव ! हाँ, उत्सव ही तो था।”

“कल उस सम्मान.....”

“क्यों आपको कल का स्वप्न सता रहा है ? भद्रे ! आप क्या मुझे इस अवस्था में सन्तुष्ट न रहने देंगे ?”

“मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है, देवि !”

“मेरे उस अभिनय का—मेरी विडम्बना का ? आह ! मनुष्य कितना निर्दय है ! अपरिचित, क्षमा करो ! जाओ अपने मार्ग !”

“सरलता की देवि ! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ—मेरे हृदय की भावना अवगुण्ठन में रहना नहीं जानती। उसे अपनी.....”

“राजकुमार ! मैं कृषक-बालिका हूँ। आप नन्दनबिहारी और मैं पृथ्वी पर पस्थिम करके जीनेवाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मैं दुःख से विकल हूँ। मेरा उपहास न करो !”

“मैं कोशल-नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूँगा।”

“नहीं, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम नहीं है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती--चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो।”

“तब तुम्हारा रहस्य क्या है ?”

“यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियमों से यदि मानव-हृदय बाध्य होता, तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिचकर, एक कृषक-बालिका का अपमान करने न आता।”--मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उसका रत्न-किरीट चमक उठा। अड़बड़े से चला जा रहा था। और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई ? उसके हृदय में टीस-सी होने लगी। वह, सजल नेत्रों से, जड़ती हुई धूल देखने लगी।

×

×

×

×

मधूलिका ने राजा का प्रतिदान, अनुग्रह, नहीं लिया। वह दूसरे ज्यों में काम करती और चौथे पहर सुखी-सुखी खाकर पड़ रहती। मधूक के वृक्ष के नीचे एक छोटी-सी पर्ण-कुटीर थी। सुखे डण्डलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रम था। कठोर परिश्रम से जो कृष्ण अन्न मिलता, वही उसकी साँसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था। दुबली होने पर भी उसके अङ्ग पर तपस्या की कान्ति थी। आस-पास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की बौड़-भूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था, ओढ़ने की कमी थी।

वह ठिठुरकर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ाकर सोच रही थी। जीवन से सामञ्जस्य बनाये रखनेवाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती-घटती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती हुई बात स्मरण हुई—दो, नहीं-नहीं, तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे, प्रभात में—तरुण राजकुमार ने क्या कहा था ?

वह अपने हृदय से पूछने लगी—उन चाटुकारी के शब्दों के सुनने के लिए, उत्सुक-सी वह पूछने लगी—क्या कहा था ? दुख-दग्ध हृदय उन स्वप्न-सी बातों को स्मरण रख सकता था ! और स्मरण ही होता, तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता। हाय री विडम्बना !

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। दारिद्र्य की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद-माला के वैभव का काल्पनिक चित्र—उन सूखे डण्डलों की रन्ध्रों से, नभ में—बिजली के आलोक में—नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की सन्ध्या में जुगनू को पकड़ने के लिए हाथ लपकाता है, वैसे ही मधूलिका 'अभी वह निकल गया।' मन ही मन कह रही थी—वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी। ओले पड़ने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर भोपड़ी के लिए कांप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ—

“कौन है यहाँ ? पथिक को आश्रय चाहिए।”

मधूलिका ने डण्डलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह चिल्ला उठी—“राजकुमार !”

“मधूलिका ?”—आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देखकर चकित हो गई—“इतने दिनों के बाद आज फिर !”

अरुण ने कहा—“कितना समझाया मैंने—परन्तु.....”

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा—“और आज आपकी यह क्या दशा है?”

सिर झुकाकर अरुण ने कहा—“मैं मगध का विद्रोही, निर्वासित, कोशल में जीविका खोजने आया हूँ।”

मधूलिका उस अंधकार में हँस पड़ी—“मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक-बालिका ! यह भी एक विडम्बना है ! तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ ”

×

×

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चांदनी, हाड़ कँपा देनेवाला समीर, तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर वट-वृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता।

मधूलिका ने पूछा—“जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो, तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है?”

“मधूलिका ! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन-मरण के साथी हैं। भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता ? और करता ही क्या ?”

“क्यों ? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते। अब तो तुम...”

“भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ। निराश क्यों हो जाऊँ ? अरुण के शब्दों में कम्पन थी; वह जैसे कुछ कहना चाहता था, पर कह न सकता था।”

“नवीन राज्य ! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे ? कोई ढंग बताओ तो मैं भी कल्पना का आनन्द ले लूँ।”

“कल्पना का आनन्द नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के सम्मान में सिंहासन पर बिठाऊँगा ! तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न हो।”

एक क्षण में सरला मधूलिका के मन में प्रमाद का अन्धड़ बहने लगा—द्वन्द्व मच गया। उसने सहसा कहा—“आह, मैं सचमुच भाज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार!”

अरुण छिटाई से उसके हाथों को बचाकर बोला—“तो मेरा भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो?”

युवती का वक्षस्थल फूल उठा, वह हाँ भी नहीं कह सकी, ना भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अनुभव कर लिया। कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को हाथ से न जाने दिया। तुरन्त बोल उठा—“तुम्हारी इच्छा हो तो प्राणों से पण लगाकर, मैं तुम्हें इसी कोशल-सिंहासन पर बिठा दूँ। मधूलिका, अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी?” मधूलिका एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी, नहीं—किन्तु उसके मुँह से निकला, “क्या?”

“सत्य, मधूलिका, कोशल-नरेश तभी से तुम्हारे लिए चिन्तित हैं। यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण-सी प्रार्थना बे अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी बिबित है कि कोशल के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी दस्युओं का दमन करने के लिए बहुत दूर चले गये हैं।”

मधूलिका की आँखों के आगे बिजलियाँ हँसने लगीं। दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा। अरुण ने कहा—“तुम बोलती नहीं हो?”

“जो कहोगे वही कहूँगी।”—मन्त्र-मुग्ध-सी मधूलिका ने कहा।

×

×

×

स्वर्ण-मञ्च पर कोशल-नरेश अर्द्ध-निद्रित अवस्था में आँखें मुकुलित किये हैं। एक चामरधारिणी युवती पीछे खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। चामर के शुभ्र आन्दोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे-धीरे सञ्चलित हो रहे हैं। ताम्बूल-वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा—“जय हो देव ! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।”

आँख खोलते हुए महाराज ने कहा—“स्त्री ! प्रार्थना करने आई है ? आने दो !”

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आई। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा—“तुम्हें कहीं देखा है ?”

“तीन बारस हुए, देव ! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।”

“ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताये ! आज उसका मूल्य माँगने आई हो, क्यों ? अच्छा-अच्छा, तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी !”

“नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए।”

“मूल्य ! फिर क्या चाहिए ?”

“उतनी ही भूमि, दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जंगली भूमि। वहीं मैं अपनी खेती करूँगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा; भूमि को समतल भी तो बनाना होगा।”

महाराज ने कहा—“कृषक-बालिके ! वह बड़ी ऊबड़-खाबड़ भूमि है। तिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्त्व रखती है।”

“तो फिर निराश लौट जाऊँ ?”

“सिंहमित्र की कन्या ! मैं क्या करूँ ? तुम्हारी यह प्रार्थना.... !”

“देव ! जैसी आज्ञा हो।”

“जाओ, तुम भ्रम-जीवियों को उसमें लगाओ। मैं अमात्य को आज्ञा-पत्र देने का आदेश करता हूँ।”

“जय हो देव !” कहकर प्रणाम करती हुई मधूलिका राज-मंदिर के बाहर आई।

×

×

×

दुर्ग के दक्षिण, भयावने नाले के तट पर, घना जंगल है। आज वहाँ मनुष्यों के पद-सङ्चार से शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतन्त्रता से इधर-उधर घूमते थे। भाड़ियों को काटकर पथ बन रहा था। नगर दूर था; फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था।

फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा-सा खेत बन रहा था। तब इधर की किसको चिन्ता होती ?

एक घने कुञ्ज में अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। सन्ध्या हो चली थी। उस निविड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देखकर, पक्षी-गण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखें चमक उठीं। सूर्य की अंतिम किरणें भुरमुट में घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगीं। अरुण ने कहा—
“चार पहर और; विश्वास करो; प्रभात में ही इस जीर्ण-कलेवर कोशल-राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में तुम्हारा अभिषेक होगा। और मगध से निर्वासित मैं, एक स्वतन्त्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिके !”

“भयानक ! अरुण, तुम्हारा साहस देखकर मैं चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिकों से तुम.....”

“रात के तीसरे पहर मेरी विजय-यात्रा होगी।”

“तो तुमको इस विजय पर विश्वास है ?”

“अवश्य। तुम अपनी भोपड़ी में यह रात बिताओ; प्रभात से तो राज-मंदिर ही तुम्हारा लीला-निकेतन बनेगा।”

मधूलिका प्रसन्न थी; किन्तु अरुण के लिए उसकी कल्याण-कामना सशंक थी। वह कभी-कभी उद्विग्न-सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती। अरुण उसका समाधान कर देता। सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा—“अच्छा, अन्धकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राणपण से इस अभियान के प्रारम्भिक कार्यों को अर्ध-रात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए; तब रात्रि भर के लिए बिदा, मधूलिके !”

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कंटीली भाड़ियों से उलझती हुई, क्रम से बढ़नेवाले अन्धकार में, वह अपनी भोपड़ी की ओर चली।

×

×

×

पथ अन्धकारमय था और मधूलिका का हृदय भी निविड़तम से

धिरा था। उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख-कल्पना थी, वह जैसे अन्धकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी। पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो? फिर सहसा सोचने लगी—वह क्यों सफल हो? श्रावस्ती-दुर्ग एक विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय? मगध कोशल का चिर शत्रु! ओह, उसकी विजय! कोशल-नरेश ने क्या कहा था—“सिंहमित्र की कन्या।” सिंहमित्र कोशल का रक्षक वीर, उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है? नहीं, नहीं। ‘मधूलिका! मधूलिका!!’ जैसे उसके पिता उस अन्धकार में पुकार रहे थे। वह पगली की तरह चिल्ला उठी! रास्ता भूल गई।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी भोपड़ी तक न पहुँची। वह उधेड़-बुन में विक्षिप्त-सी चली जा रही थी। उसकी आँखों के सामने कभी सिंहमित्र और कभी अरुण की मूर्ति अन्धकार में चित्रित हो जाती। उसे सामने आलोक दिखाई पड़ा। वह बीच पथ में खड़ी हो गई। प्रायः एक सौ उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे-आगे एक वीर अभेड़ सैनिक था। उसके बायें हाथ में अश्व की वल्गा और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग। अत्यन्त धीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परन्तु मधूलिका बीच पथ से हिली नहीं। प्रमुख सैनिक पास आ गया, पर मधूलिका अब भी नहीं हटी। सैनिक ने अश्व रोक कर कहा—“कौन?” कोई उत्तर नहीं मिला। तब तक दूसरे अश्वारोही ने कड़क कर कहा—“तू कौन है स्त्री? कोशल के सेनापति को शीघ्र उत्तर दे!”

रमणी जैसे विकार-ग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी—“बाँध लो मुझे, बाँध लो! मेरी हत्या करो। मेने अपराध ही ऐसा किया है।”

सेनापति हँस पड़े। बोले—“पगली है।”

“पगली! नहीं, यदि वही होती तो इतनी विचार-वेदना क्यों होती? सेनापति! मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।”

“क्या है ? स्पष्ट कह !”

“श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहार में वस्युओं के हस्तगत हो जायगा दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा।”

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—“तू क्या कह रहे है ?”

“मैं सत्य कह रही हूँ; शीघ्रता करो।”

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे-धीरे बढ़ने का आज्ञा दी और स्वयं बीस अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गई।

×

×

×

×

श्रावस्ती का दुर्ग, कोशल-राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशों ने उसके प्रान्तों पर अधिकार जमा लिया है। अब वह केवल कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण-नाथायें लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्ष्या का कारण है। दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे, जब थोड़े से अश्वारोह बढ़े वेग से आते हुए दुर्ग-द्वार पर रुके। जब उसका के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहचाना, तब द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ से उतरे उन्होंने कहा—“अग्निसेन ! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे ?”

“सेनापति की जय हो ! दो सौ।”

“उन्हें शीघ्र एकत्र करो ; परन्तु बिना किसी शब्द के । १०० के लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की ओर चलो। आलोक और शब्द न हो।”

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गई। उसे अपने पीछे आने का संकेत कर, सेनापति राज-मंदिर की ओर बढ़े प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज को सावधान किया। वे अपनी मुख्य-निद्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे थे। किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चञ्चल हो उठे। सेनापति ने कहा—

“जय हो, देव ! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।”

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देखकर कहा—“सिंहमित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों ? क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है ? कोई बाधा ? सेनापति ! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी सम्बन्ध में तुम कहना चाहते हो ?”

“देव ! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया है। और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह सन्देश दिया है।”

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा—“मधूलिका, यह सत्य है ?”

“हाँ, देव !”

राजा ने सेनापति से कहा—“सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो, मैं अभी आता हूँ।” सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा—“सिंहमित्र की कन्या ! तुमने एक बार फिर कोशल का उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो। पहले उन आततायियों का प्रबन्ध कर लूँ।”

×

×

×

अपने साहसिक अभिमान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरञ्जित हो गया। भीड़ ने जयघोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल-वृद्ध-नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा-मण्डप दर्शकों से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुंकार करते हुए कहा—“बध करो !” राजा ने सबसे सहमत होकर आज्ञा दी—“प्राण-वण्ड।” मधूलिका बुलाई गई। वह पगली-सी आकर खड़ी हो गई। कोशल-नरेश ने पूछा—“मधूलिका, तुम्हें जो पुरस्कार लेना हो, माँग !” वह चुप रही।

राजा ने कहा—“मेरे निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ।” मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा—“मुझे कुछ न चाहिए।” अरुण हँस पड़ा ! राजा ने कहा—“नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा; माँग ले।”

“तो मुझे भी प्राण-दण्ड मिले।” कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

५—बुद्ध, का काँटा

[श्री चन्द्रधर शमा गुलेरी]

(१)

रघुनाथ प्रसादतः त्रिवेदी—या रघुनाथ पश्यात् त्रिवेदी—
यह क्या ?

क्या करें, दुविधा में जान है। एक ओर तो हिन्दी का यह गौरव-पूर्ण दावा है कि इसमें जैसा बोला जाता है, वैसा ही लिखा जाता है और जैसा लिखा जाता है, वैसा ही बोला जाता है। दूसरी ओर हिन्दी के कर्णधारों का अविगत शिष्टाचार है कि जैसे धर्मोपदेशक कहते हैं—हमारे कहने पर चलो, हमारी करनी पर मत चलो; वैसे ही, जैसे हिन्दी के आचार्य लिखें, वैसे लिखो; जैसे वे बोलें, वैसे मत लिखो। शिष्टाचार भी कैसा ? हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरणकषायित कण्ठ से कहें 'पर्सोत्तमदास' और 'हर्किसन्लाल' और उनके पिट्ठू छापें ऐसी तरह कि पढ़ा जाय—'पुरुषोत्तम अ दास अ' और 'हरिकृष्ण-लाल अ'।

अजी जाने भी दो ! बड़े-बड़े बह गये और गधा कहे कितना पानी ! कहानी कहने चले हो, या बिल के फफोले फोड़ने ?

अच्छा जो हुकुम। हम लाला जी के नौकर हैं, बंगनों के थोड़े ही हैं। रघुनाथप्रसाद त्रिवेदी अब के इन्टरमीजिएट परीक्षा में बैठा है। उसके पिता दारसूरी के पहाड़ के रहनेवाले और आगरे के बुभारिया बंक के मनेजर हैं। बंक के दफ्तर के पीछे चौक में उनका तथा उनकी स्त्री का बारहमासिया मकान है। बाबू बड़े सीधे, अपने सिद्धान्तों के पक्के ओर खरे आदमी हैं, जैसे पुराने ढंग के होते हैं। बंक के स्वामी इन पर इतना भरोसा करते हैं कि कभी छुट्टी नहीं देते और बाबू काम के

इतने पक्के हैं कि छुट्टी माँगते नहीं। न बाबू वैसे कट्टर सनातनी हैं कि बिना मुंह धोये ही, तिलक लगाकर, स्टेशन पर, दर्भङ्गा-महाराज के स्वागत को जायें और न ऐसे समाजी ही हैं कि खँजड़ी लेकर “तोड़ पोप-गढ़ लड्डू का” करने दीड़ें। उसूलों के पक्के हैं।

हाँ, उसूलों के पक्के हैं। सुबह एक प्याला चाह पीते हैं तो ऐसा कि जेठ में भी नहीं छोड़ते और माघ में भी एक के दो नहीं करते। उर्द की दाल खाने हैं, क्या मजाल है कि बुखार में भी सूंग की दाल का एक दाना खा जायें। आजकल के एम० ए०, बी० ए० पासवालों को हँसने हैं कि शेक्सपियर और बेकन चाट जाने पर भी, वे दफ्तर के काम की अँगरेजी चिट्ठी नहीं लिख सकते। अपने जमाने के साथियों को सराहते हैं जो शेक्सपियर के दो-तीन नाटक न पढ़कर, सारे नाटक पढ़ते थे। डिक्शनरी से अँगरेजी शब्दों के लैटिन धातु याद करते थे। अपने गुरु बाबू प्रकाशबिहारी मुकुर्जी की प्रशंसा रोज करते थे कि उन्होंने ‘लायब्रेरी इन्स्टीट्यूट’ पास किया था। ऐसा कोई ही दिन बीतता होगा (निगोशिएबल इन्स्टीट्यूट एक्ट के अनुसार होनेवाली तात्तिलों की मत गिनिए) कि जब उनके ‘लायब्रेरी इन्स्टीट्यूट’ का उपाख्यान, नये बी० ए० हँडबुक को, उसके मन और बुद्धि की उन्नति के लिए, उपदेश की तरह न सुनाया जाता हो। लाट साहब ने मुकुर्जी बाबू को बङ्गाल-लायब्रेरी में जाकर खड़ा कर दिया। राजा हरिश्चन्द्र के यज्ञ में बलि के खंटे में बँधे हुए शुनः-शेष की तरह बाबू आलमारियों की ओर देखने लगे। लाट साहब रुक चाहे जैसी आलमारियों से, मन चाहे जैसी किताब निकालकर, मन चाहे जहाँ से पूछने लगे। सब आलमारियाँ खुल गईं, सब किताबें चुक गईं, लाट साहब की बाँह खुल गई, पर बाबू कहते-कहते नहीं थके। लाट साहब ने अपने हाथ से बाबू को एक घड़ी दी और कहा कि मैं अँगरेजी-बिद्या का छिलका ही भर जानता हूँ, तुम उसकी गरी खा चुके हो। यह कथा पुराण की तरह रोज कही जाती थी।

इन उसूल-धन बाबू जी का एक उसूल यह भी था कि लड़के का

विवाह छोटी उमर में नहीं करेंगे। इनकी जाति में पाँच-पाँच वर्ष की कन्याओं के पिता, लड़केवालों के लिए बंसे मुंह बाये रहते हैं, जैसे पुष्कर की भील में मगरमच्छ नहानेवालों के लिए। वे कभी-कभी दरवाजे पर धरना देकर आ बैठते थे कि हमारी लड़की लीजिए नहीं तो हम आपके द्वार पर प्राण दे देंगे। उसूलों के पक्के बाबू जी इनके भय से वैश ही नहीं जाते थे और वे कन्या-पितारूपी मगरमच्छ, अपनी पहाड़ी गोह को छोड़कर, आगरे आकर, बाबू जी की निद्रा का भंग करते थे। रघुनाथ की माता को सास बनने का बड़ा चाव था। जहाँ वह कुछ कहना आरम्भ करती कि बाबू जी बंक की लेजरबुक खोलकर बैठ जाते, या लकड़ी उठाकर घूमने चल देते। बहस करके स्त्रियों से आज तक कोई नहीं जीता पर मष्ट मारकर जीत सकता है।

बाबू के पड़ोस में एक विवाह हुआ था। उस घर की मालकिन लाहना बाँटती हुई रघुनाथ की मा के पास आई। रघुनाथ की मा ने नई बहू को आसीस दी और स्वयं मिठाई रखने, तथा बहू की गोद में भरने के लिए, कुछ मेवा लाने भीतर गई। इधर मुहल्ले की वृद्धा ने कहा—“पन्द्रह बरस हो गये लाहना लेते-लेते। आज तक एक बतासा भी इनके यहाँ से नहीं मिला।” दूसरी वृद्धा, जो तीन बड़ी और दो छोटी पतोहू की सेवा से इतनी सुखी थी कि रोज मृत्यु को बुलाया करती थी, बोली—“बड़े भागों से बेटों का ब्याह होता है।”

तीसरी ने नाक की झुलनी हिलाकर कहा—“अपना खाने-पहरने का लोभ कोई छोड़े जब तो बेटे की बहू लाये। बहू के आते ही खाने-पहनने में कमी जो हो जाती है।” चौथी ने कहा—“ऐसे कमाने-खाने को आग लगे। यों तो कुत्ते भी अपना पेट भर लेते हैं। कमाई सुफल करने का यही तो मौका होता है।” इसके पति ने अपने चारों बेटों के विवाह में मकान और जमीन गिरवी रख दी थी और, कम से कम अपने जीवन भर के लिए, कंगाली का कम्बल ओढ़ लिया था।

अवश्य ही ये सब बातें रघुनाथ की मा को सुनाने के लिए कही

गई थीं। रघुनाथ की मा भी जानती थी कि ये मुझे सुनाने को कही जा रही हैं। परन्तु उसके आते ही मूहल्ले की एक और ही स्त्री की निन्दा चल पड़ी और रघुनाथ की मा, यह जानकर भी, कि उस स्त्री के पास जाते ही मेरी भी ऐसी निन्दा की जायगी; हँसते-हँसते उनकी बातों में सम्मति देने लग गई। पतोहुओं से सुखिनी बुढ़िया ने एक हलके से अनुदात्त से कहा—‘अब तुम रघुनाथ का ब्याह इस साल तो करोगी?’ ‘उसके चाचा जानें, गहने तो बनवा रहे हैं’—रघुनाथ की मा ने भी वैसे ही हलके उदात्त से उत्तर दिया। उसके अनुदात्त को यह समझ गई और इसके उदात्त को वे सब। स्वर का विचार हिन्दुस्तान के मर्दों की भाषा में भले ही न रहा हो, स्त्रियों की भाषा में उससे अब भी कई अर्थ प्रकाश किये जाते हैं।

“मैं तुम्हें सलाह देती हूँ कि जल्दी रघुनाथ का ब्याह कर लो। कलजुग के दिन हैं, लड़का बोडिङ्ग में रहता है, बिगड़ जायगा। आगे तुम्हारी मर्जी। क्यों बहन सच है न? तू क्यों नहीं बोलती?”

“मैं क्या कहूँ, मेरे रघुनाथ का-सा बेटा होता तो आज तक पोता खिलाती”—यों और दो-चार बातें करके यह स्त्री-दल चला गया और गृहिणी के हृदय-समुद्र को कई विचारों की लहरों से छलकता हुआ छोड़ गया।

सायंकाल भोजन करते समय बाबू बोले—“इन गर्मियों में रघुनाथ का ब्याह कर देंगे।”

स्त्री ने पहले ही लेजर और छड़ी छिपाकर ठान ली थी कि आज बाबू जी को दबाऊँगी कि पड़ोसियों की बोलियाँ नहीं सही जातीं। अचानक रंग पहले चढ़ गया। पूछने लगी—“हैं, आज यह कैसे सूझी?”

“बारसूरी से भैया की चिट्ठी आई है। बहुत कुछ बातें लिखी हैं। कहा है कि तुम तो परदेशी हो गये। यहाँ चार महीने बाद बृहस्पति सिहस्थ हो जायगा। फिर डेढ़-दो वर्ष तक ब्याह नहीं होंगे। इसलिए छोटी-छोटी बच्चियों के ब्याह हो रहे हैं। बृहस्पति के सिंह के पेट में

पहुँचने के पहले कोई चार-पाँच वर्ष की ही लड़की कुँवारी बचेगी। फिर जब बृहस्पति कहीं शेर की दाढ़ में से जीता-जागता निकल आया, तो न बराबर का घर मिलेगा, न जोड़ की लड़की। तुम्हें क्या है, गाँव में बदनाम तो हम हो रहे हैं। मैंने अभी दो-तीन घर रोक रखे हैं। तुम जानो। अब के मेरा कहना न मानोगे, तो मैं तुमसे ज़म भर बोलने का नहीं।”

“भैया ठीक तो कहते हैं।”

“मैं भी मानता हूँ कि अब लड़के का उन्नीसवाँ वर्ष है। अब के इण्टरमीजिएट पास हो ही जायगा। अब हमारी नहीं चलेगी। देवर-भौजाई जैसा नचायेंगे, वैसा ही नाचना पड़ेगा। अब तक मेरी चली, यही बहुत हुआ।”

“भैया की कहो; मेरा कहना तो पाँच वर्ष से जो मान रहे हो।”

“अच्छा अब ज़िदो मत। मैंने दो महीने की छुट्टी ली है। छुट्टी मिलते ही देश चलते हैं। बच्चा को लिख दिया है कि इम्तहान देकर सीधा घर चला आ। दस-पन्द्रह दिन में आ जायगा। तब तक हम घर भी ठीक कर लें और दिन भी। अब तुम आगरे बहू को लेकर आओगी।”

स्त्री ने सोचा, बताशेवाली बुढ़िया का उलहना तो मिटेगा।

(२)

“बा' छा,^१ मेरे हाल में आपका क्या जी लगेगा? गरीबों का क्या हाल? रब^२ रोटी देता है, पदन भर मेहनत करता हूँ, रात पड़ रहत हूँ। बा' छा, तुम जैसे साँई^३ लोगों की बरकत से मैं हज़र कर आया, छ्वाज का उर्स देख आया, तीन बेले^४ नमाज़ पढ़ लेता हूँ, और मुझे क्या चाहिए? बा' छा, मेरा काम टट्टू चलाना नहीं है। अब तो इस मोती की कमाई खाता हूँ; कभी सवारी से जाता हूँ, कभी लादा^५। ढाई मण कणक^६ पा^७

१ बाबशाह। २ ईश्वर। ३ स्वामी (यहाँ भक्त)। ४ वक्त।
५ बोझा। ६ गेहूँ। ७ लाद लेता हूँ।

लेता हूँ तो दो पौली^१ बच जाती है। रब की मरजी ! मेरा अपना घर था सिन्हों^२ के बबत की माफ़ी जमीन थी। नते^३ पड़ोसियों में मेरा नाम था मैं धामपुर के नबाब का बनाता था और मेरे घर में से उसके जनाने में पकाती थी। एक रात को मैं खाना बना-खिला के अपनी मंजड़ी^४ पर सोया था कि मेरे मौला^५ ने मुझे आवाज दी—‘लाही लाही, हज कर आ।’ मैं आँखें मल के खड़ा हो गया, पर कुछ दिखा नहीं। फिर सोने लगा कि फिर वही आवाज आई—‘लाही, तू मेरी पुकार नहीं सुनता ? जा हज कर आ।’ मैं समझा, मेरा मौला मुझे बुलाता है। फिर आवाज आई—‘लाही, चल पड़; मैं तेरे नाल^६ हूँ, मैं तेरा बेड़ा पार करूँगा।’ मुझसे रहा नहीं गया। मैंने अपना कम्बल उठाया और आधी रात को चल पड़ा। बा’ छा, मैं रातों चला, दिनों चला, भीख माँगकर चलते-चलते बम्बई पहुँचा। वहाँ मेरे पल्ले टका नहीं था, पर एक हिन्दू बाई ने मुझे टिकट ले दिया। काफ़ले के साथ मैं जहाज पर चढ़ गया। वहीं मुझे छं महीने लगे। पूरी हज की। जब लौटे तो रास्ते में जहाज भटक गया। एक चट्टान पानी के नीचे थी, उससे टकरा गया। उससे पीछे की दोनों लालटेनें ऊपर आगई और वे हमें शैतान की-सी आँखें दिखाई देने लगीं। सबने समझा मर जायेंगे, पानी में ग़ोर^७ बनेगी। कप्तान ने छोटी किश्तियाँ खोलीं और उनमें हाजियों को बिठाकर छोड़ दिया। मर्द का बच्चा आप अपनी जगह से नहीं टला, जहाज के नाल डूब गये। (अंधेरे में कुछ सूझता नहीं था। सबेरा होते ही हमने देखा कि दो किश्तियाँ बह रही हैं और न जहाज है, न दूसरी किश्तियाँ। पता ही नहीं हम कहाँ से किधर जा रहे थे। लहरें हमारी किश्तियों को उछालती, नचाती, डुबोती, भकोड़ती थीं। जो लमहा बीतता था, हम खेर मनाते थे।) फिर मेरे मालिक ने करम किया। मेरे अहलाह ने, मेरे

१ चवन्नी। २ सिक्खों। ३ रिस्तेदार। ४ खटिया। ५ ईश्वर।
६ साथ। ७ क्रब्र। ८ कृपा।

मौला ने, जैसे उस रात को कहा था, मेरा बेड़ा पार किया। तीन दिन तीन रात हम बे-पते बहते रहे;—चौथे दिन माल के एक जहाज ने हमको उठा लिया और छठे दिन कराची में हमने दुआ की नमाज पढ़ी। पीछे सुना कि तीन सौ हज़ारी मर गये।

बहाँ से मैं खवाजा की ज़ियारत को चला; अजमेरशरीफ़ में बरगाह का बीदार पाया। इस तरह, बा' छा, साढ़े सात महीने पीछे मैं घर आया। आकर घर देखता क्या हूँ कि सब पटरा हो गया है। नवाब जब सबेरे उठा तो उसने नाश्ता माँगा। नौकरों ने कहा कि इलाही का पता नहीं। बस वह जल गया। उसने मेरा घर फुंकवा दिया, मेरी ज़मीन अपनी रखवाल* भाई को दे दी और मेरी बीबी को लौंडी बनाकर क़ैद कर लिया। मैं उसका क्या ले गया था? अपना कम्बल ले गया था और पिछले तीन महीने की तलब अपनी पेटो में उसके बाबर्चीखाने में रख गया था। भला मेरा मौला बुलावे और मैं न जाऊँ? पर उसको जो एक घंटा देर से खाना मिला, इससे बढ़कर और गुनाह क्या होता?

इसके पन्द्रहवें दिन जनाने में एक सोने की अँगूठी खो गई। 'नवाब ने मेरी घरवाली पर शक किया। उससे पूछा तो वह बोली कि मेरा कौन-सा घर और घरवाला बैठा है कि उसके पास अँगूठी ले जाऊँगी। मैं तो यहीं रहती हूँ। सीधी बात थी, पर उससे सुनी नहीं गई। जला-भुना तो था ही, बेल लेकर लगा मारने। बा' छा, मैं क्या कहूँ मौला मेरा गुनाह बहो! आज पाँच बरस हो गये हैं, पर जब मैं घरवाली की पीठ पर पचासों बाणों की गुच्छियाँ देखता हूँ, तो यही पछताह रहता है कि मुझे रख ने, उस सूर का (तोबा! तोबा!) गला घोट-को, यहाँ क्यों न रखवा। मारते-मारते, जब मेरी घरवाली बेहोश हो गई, तब डरकर उसे गाँव के बाहर फिकवा दिया। तीसरे दिन वह बहाँ से घिसकती-घिसकती चलकर अपने भाई के यहाँ पहुँची।"

रघुनाथ ने रुंधे गले से कहा, “तुमने फ़रियाद नहीं की ?”

“कचहरियाँ गरीबों के लिए नहीं हैं, बा’ छा; वे तो सेठों के लिए हैं। गरीबों की फ़रियाद सुननेवाला सुनता है। उसने पन्द्रह दिन में सुनकर हुकुम भी दे दिया। मेरी औरत को मारते-मारते उस पाजी के हाथ की अँगुली में एक बेत की सली चुभ गई थी। वही पक गई। लहू में ज़हर हो गया। पन्द्रहवें दिन मर गया। हज़ से आकर मने सारा हाल सुना। अपने जले हुए घर को देखा और अपने पड़वादे की सिंहीं की माफ़ी ज़मीन को भी देखा। चला आया। मसजिद में जाकर रोया। मेरे मौला ने मुझे हुकुम दिया—‘लाही में तेरे नाल हूँ, अपनी जोरु को धीरज दे।’ मैं साले के यहाँ पहुँचा। उसने पचीस रुपये दिये; मैं टट्टू मोल लेकर पहाड़ चला आया और यहाँ रब का नाम लेता हूँ और आप जैसे साँई लोगों की बन्दगी करता हूँ। रब का नाम बड़ा है।”

रघुनाथ इम्तेहान देकर रेल से घराठनी तक आया। वहाँ से तीस मील पहाड़ी रास्ता था। दूरी पर चूने के-से ढेर चमकते दिखने लगे, जो कभी न पिघलनेवाली बर्फ़ के पहाड़ थे। रास्ता साँप की तरह चक्कर खाता था। मालूम होता कि एक घाटी पूरी हो गई है, पर ज्योंही मोड़ पर आते त्योंही उसकी जड़ में एक और आधी मील का चक्कर निकल पड़ता। एक ओर ऊँचा पहाड़, दूसरी ओर ढाई सौ फ़ुट गहरी खड्ड। और किराये के टट्टुओं की लत कि सड़क के छोर पर चलें, जिससे सवार की एक टांग तो खड्ड पर ही लटकती रहे। आगे वैसे ही रास्ता, वैसे ही खड्डे; सामने वैसे ही कोने पर चलनेवाले टट्टू। जब धूप बढ़ी और जी न लगा, तो मोती के स्वामी इलाही से रघुनाथ ने उसका इतिहास पूछा। उसने जो सीधी और विश्वास से भरी, दुःख की धाराओं से भीगी हुई कथा कही, उससे कुछ मार्ग कट गया। कितने गरीबों का इतिहास ऐसी चित्र-घटनाओं की धूप-छाया से भरा हुआ है! पर हम लोग प्रकृति के इन सच्चे चित्रों को न देखकर, उपन्यासों की मृग-तृष्णा में चमत्कार ढूँढ़ते हैं।

धूप चढ़ गई थी कि वे एक ग्राम में पहुँचे। गाँव के बाहर, सड़क के सहारे, एक कुआँ था और उसी के पास, एक पेड़ के नीचे, इलाही ने स्वयं और अपने मोती के लिए विश्राम करने का प्रस्ताव किया—
“घोड़े को न्हारी देकर और पानी-वानी पीकर धूप ढलते ही चल देंगे और बात की बात में आपको घर पहुँचा देंगे।” रघुनाथ को भी टाँगें सीधी करने में कोई उज्र न था। खाने की इच्छा बिलकुल न थी। हाँ, प्यास लग रही थी। रघुनाथ अपने बक्स में से लोटा-डोर निकालकर कुएँ की तरफ चला।

(३)

कुएँ पर देखा कि छ-सात स्त्रियाँ पानी भरने और भर-भर ले जाने की कई दशाओं में हैं। गाँवों में परदा नहीं होता। वहाँ सब पुरुष सब स्त्रियों से और सब स्त्रियाँ सब पुरुषों से निडर होकर बात कर लेती हैं। और शहरों के लम्बे घूँघटों के नीचे जितना पाप होता है, उसका दसवाँ हिस्सा भी गाँवों में नहीं होता। इसी से तो कहावत में बाप ने बेटे को उपदेश दिया है कि लम्बे घूँघटवाली से बचना। अनजान पुरुष किसी भी स्त्री से ‘बहन’ कहकर बात कर लेता है और स्त्री बाजार जाकर किसी भी पुरुष से ‘भाई’ कहकर बोल लेती है। यही वाचिक-सन्धि दिन भर के व्यवहारों में ‘पासपोर्ट’ का काम दे देती है। हँसी-ठट्ठा भी होता है, पर कोई दुर्भाव नहीं खड़ा होता। राजपूताने के गाँवों में स्त्री ऊँट पर बैठी निकल जाती है और खेतों के लोग “मामी जी, मामी जी” चिल्लाया करते हैं। न उनका अर्थ उस शब्द से बढ़कर कुछ होता है और न वह चिढ़ती है। एक गाँव में बरात जीमने बैठी। उस समय स्त्रियाँ समधियों को गाली गाती हैं। वहाँ पर गालियाँ न गाई जाती देख, नागरिक सुधारक बराती को बड़ा हर्ष हुआ। वह ग्राम के एक बृद्ध से कह बैठा—“बड़ी खुशी की बात है कि आपके यहाँ इतनी तरक्की हो गई है।” बुढ़ा बोला—“हाँ साहब, तरक्की हो रही है। पहले गालियों में कहा जाता था फलाने की फलानी फलाने के साथ और

अमुक की अमुक अमुक के साथ। लोग-लुगाईं सुनते थे, हँस बेते थे। अब घर-घर में वे ही बातें सच्ची हो रही हैं। अब गालियाँ गाई जाती हैं, लो चोरों की बाड़ी में तिनके निकलते हैं। तभी तो आन्दोलन होते हैं कि गालियाँ बन्द करो, क्योंकि वे घुभती हैं।”

रघुनाथ यदि चाहता तो किसी भी पानी भरनेवाली से पानी को पानी माँग लेता। परन्तु उसने अब तक अपनी माता को छोड़कर, किसी स्त्री से कभी बात नहीं की थी। स्त्रियों के सामने बात करने को उसका मुँह खुल न सका। पिता की कठोर शिक्षा से बालकपन से ही उसे वह स्वभाव पड़ गया था कि दो वर्ष प्रयाग में स्वतन्त्र रहकर भी, वह अपने चरित्र को, केवल पुद्गों के समाज में बैठकर, पवित्र रख सका था। जो कोने में बैठकर उपन्यास पढ़ा करते हैं, उनकी अपेक्षा खुले मैदान में खेलनेवालों के बिचार अधिक पवित्र रहते हैं;—इसी लिए क्रुडवाल और हाकी के खिलाड़ी रघुनाथ को कभी स्त्री-विषयक कल्पना ही नहीं होती थी; वह मानवी सृष्टि में अपनी माता को छोड़कर और स्त्रियों के होने या न होने से अनभिज्ञ था। विवाह उसकी दृष्टि में एक आवश्यक किन्तु दुर्लभ बन्धन था, जिसमें सब मनुष्य फँसते हैं और पिता की आज्ञानुसार, वह विवाह के लिए घर उसी रात्रि से आ रहा था, जैसे कि कोई पहले-पहल थियेटर देखने जाता है। कुएँ पर इतनी स्त्रियों को इकट्ठा देखकर वह सहम गया, उसके ललाट पर पसीना आगया और उसका बस चकता तो वह बिना पानी पिये ही लौट जाता। अस्तु, चुपचाप डोर-लोटा लेकर एक कोने पर जा खड़ा हुआ और डोर खोलकर फाँसा देने लगा।

प्रयाग के बोरिंग की टोंडियों की कृपा से, जन्म भर कभी कुएँ से पानी नहीं खींचा था, न लोटे में फाँसा लगाया था। ऐसी अवस्था में उसने सारी डोर कुएँ पर बखेर दी और उसकी जो छोर लोटे से बाँधी, वह कभी तो लोटे को एक सौ बीस अंश के कोण पर लटकाती और कभी सत्तर पर। डोर के जब बट खुलते हैं, तब वह बहुत पेंच खाती

है। इन पेंचों में रघुनाथ की बांहें भी उलझ गई। तिर नीचा किये, ज्योंही वह डोर को सुलभाता था, त्योंही वह उलझती जाती थी। उसे पता नहीं था कि गाँव की स्त्रियों के लिए यह अदभुत कौतुक, नयनोत्सव हो रहा था।

धीरे-धीरे बीका-टिप्पणी आरम्भ हो गई। एक ने हँसकर कहा—
“पटवारी है; पैमाइश की जरीब फैलाता है।”

दूसरी बोली—“ना, बाजीगर है; हाथ-पाँव बाँधकर पानी में कूब पड़ेगा और फिर सूखा निकल आयेगा।”

तीसरी बोली—“क्यों लल्ला, घरकों से लड़कर आये हो?”

चौथी ने कहा—“क्या कुएँ में दबाई डालोगे? इस गाँव में तो बीमारी नहीं है।”

इतने में एक लड़की बोली—“काहे की बवाई और कहाँ का पटवारी? अनाड़ी है, लोटे में फाँसा देना नहीं आता। भाई, मेरे घड़े को मत कुएँ में डाल देना। तुमने तो सारी मेंड़ ही रोक ली”—यों कहकर वह सामने आकर अपना घड़ा उठाकर ले गई।

पहली ने पूछा—“भाई, तुम क्या करोगे?”

लड़की बात काटकर बोल उठी—“कुएँ को बाँधेंगे।”

पहली—“अरे बोलो तो।”

लड़की—“मा ने सिखाया नहीं।”

सङ्कोच, प्यास, लज्जा और घबराहट से रघुनाथ का गला दक रहा था। उसने खाँसकर कण्ठ साफ़ करना चाहा। लड़की ने भी बैसी ही आवाज की। इस पर पहली स्त्री बढ़कर आगे आई और डोर उठाकर कहने लगी—“क्या चाहते हो, बोलते क्यों नहीं?”

लड़की—“फ़ारसी बोलेंगे।”

रघुनाथ ने शरम से कुछ आँखें ऊँची कीं, कुछ मुँह फेरकर कुएँ से कहा—“मुझे पानी पीना है,—लोटे से निकाल रहा—निकाल लूँगा।”

लड़की—“परसों तक।”

स्त्री बोली—“तो हम पानी पिला दें। ला भगवन्ती, गगरी उठा ला। इनको पानी पिला दे।”

लड़की गगरी उठा लाई और बोली—“ले, मामी के पालतू, पानी पी ले ! शरमा मत, तेरी बहू से नहीं कहूँगी।”

इस पर सब स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं। रघुनाथ के चेहरे पर लाली दौड़ गई। उसने यह दिखाना चाहा कि उसे कोई देख नहीं रहा है, यद्यपि दस-बारह स्त्रियाँ उसके भौचकपन को देख रही थीं। सृष्टि के आवि से, कोई अपनी भँप छिपाने को समर्थ न हुआ, न होगा। रघुनाथ उलटा भँप गया।

“नहीं, नहीं, मैं आप ही—”

लड़की—“कुएँ में कूद के।”

इस पर एक और हँसी का फ़ौवारा फूट पड़ा।

रघुनाथ ने कुछ आँखें उठाकर लड़की की ओर देखा। कोई चौदह-पन्द्रह बरस की लड़की। शहर की छोकरियों की तरह पीली और दुबली नहीं, हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्नमुख। आँखों के डेले काले; कोए सफ़ेद नहीं, कुछ मटिया-नीले और पिघलते हुए। यह जान पड़ता था कि डेले अभी पिघलकर बह जायेंगे। आँखों के चौतरफ़ हँसी, ओंठों पर हँसी और सारे शरीर पर नीरोग स्वास्थ्य की हँसी। रघुनाथ की आँखें और नीची हो गईं।

स्त्री ने फिर कहा—“पानी पी लो जी, लड़की खड़ी है।”

रघुनाथ ने हाथ धोये। एक हाथ मुँह के आगे लगाया; लड़की गगरी से पानी पिलाने लगी। जब रघुनाथ आधा पी चुका था तब उसने श्वास लेते-लेते आँखें ऊँची कीं। उस समय लड़की ने ऐसा मुँह बनाया कि ठिः ठिः करके रघुनाथ हँस पड़ा। उसकी नाक में पानी चढ़ गया और सारी आस्तीन भीग गई। लड़की चुप !

रघुनाथ को खाँसते, डगमगाते, विकलाते देखकर वह स्त्री आगे चली आई और गगरी छीनती हुई, लड़की को झिड़ककर बोली—“तुझे

रात-दिन ऊतपन ही सूझता है। इन्हें गलसूंड चला गया। ऐसी हँसी भी किस काम की। लो, मैं पानी पिलाती हूँ।”

लड़की—“बूध पिला दो, बहुत देर हुई; आँसू भी पोंछ दो।”

सच्चे ही रघुनाथ के आँसू आ गये थे। उसने स्त्री से जल लेकर मुँह धोया और पानी पिया। धीरे से कहा—“बस जी, बस।”

लड़की—“अब के आप निकाल लेंगे।”

रघुनाथ को मुँह पोंछते देखकर स्त्री ने पूछा—“कहाँ रहते हो?”
“आगरे।”

“इधर कहाँ जाओगे?”

लड़की (बीच ही में)—“शिकारपुर; वहाँ ऐसी का गुरुद्वारा है।”—
स्त्रियाँ खिलखिला उठीं।

रघुनाथ ने अपने गाँव का नाम बताया। “मैं पहले कभी इधर आया नहीं। कितनी दूर है? कब तक पहुँच जाऊँगा?”—अब भी वह सिर उठाकर बात नहीं कर रहा था।

लड़की—“यही पन्द्रह-बीस दिन में; तीन-चार सौ कोस तो होगा।”

स्त्री—“छिः, दो-ढाई भर है, अभी घंटे भर में पहुँच जाते हो।”

“रास्ता सीधा ही है न?”

लड़की—“नहीं तो, बायें हाथ को मुड़कर, चीड़ के पेड़ के नीचे, दहने को मुड़ने के पीछे, सातवें पत्थर पर फिर मुड़ जाना। आगे सीधे जाकर कहीं न मुड़ना;—सबसे आगे एक गीदड़ की गुफा है, उससे उत्तर को बाड़ उल्लाँधकर चले जाना।”

स्त्री—“छोकरी, तू बहुत सिर चढ़ गई है। चिकर-चिकर करती ही जाती है। नहीं जी, एक ही रास्ता है; सामने नदी आवेगी; परले पार बायें हाथ को गाँव है।”

लड़की—“नदी में भी यों ही फाँसा लगाकर पानी निकाल लेना।”

स्त्री उसकी बात अनसुनी करके बोली—“क्या उस गाँव में डाक-बाबू होकर आये हो ?”

रघुनाथ—“नहीं, मैं तो प्रयाग में पढ़ता हूँ।”

लड़की—“ओ हो ! पिराग जी में पढ़ते हैं ? कुएँ से पानी निकालना पढ़ते होंगे ?”

स्त्री—“चुपकर ! ज्यादा बकबक, काम की नहीं; क्या इसी लिए तू मेरे यहाँ आई है ?”

लड़की—“ना, मामी, पिराग जी के बुद्धुओं को पानी पिलाने आई हूँ।”

इस पर महिला-मण्डल फिर हँस पड़ा। रघुनाथ ने घबराकर इलाही की ओर देखा, तो वह मज्जे में पेड़ के नीचे चिलम पी रहा था। इस समय रघुनाथ को हाजी इलाही की ईर्ष्या होने लगी। उसने सोचा कि हज से लौटते समय समुद्र के खतरे कम हैं, और कुएँ पर अधिक।

लड़की—“क्यों जी, पिराग जी में अक्कल भी बिकती है ?”

रघुनाथ ने मुँह फेर लिया।

स्त्री—“तो गाँव में क्या करने जाते हो ?”

लड़की—“कमाने-खाने।”

स्त्री—“तेरी कूँची नहीं बन्द होती ? यह लड़की तो पागल हो जायगी।”

रघुनाथ—“मैं वहाँ के बाबू शोभाराम जी का लड़का हूँ।”

स्त्री—“अच्छा, अच्छा, तो क्या तुम्हारा ही ब्याह है ?” रघुनाथ ने सिर नीचा कर लिया।

लड़की—“मामी, मामी, मुझे भी अपने नये पालतू के ब्याह में ले चलना। बच्चा ब्याहमें चला है। यह धोड़ी है और वह, जो चिलम पी रहा है, नाना बनेगा। बाह जी बाह ! ऐसे बुद्धू के आगे भी कोई बहेंगा पसारेंगी !”

स्त्री लड़की की ओर झपटी। लड़की गगरी उठाकर चलती बनी।

कभी उसके पीछे दस ही कदम गई थी कि स्त्री-महामण्डल एक अट्टहास से गूँज उठा।

रघुनाथ इलाही के पास लौट आया। पीछे मुड़कर देखने की उसकी हिम्मत न हुई। उसके गले में भस्म का-सा स्वाद आ रहा था। जीवन भर में यही उसका स्त्रियों से पहला परिचय हुआ। उसकी आत्म-लज्जा इतनी तेज थी कि वह समझ गया कि मैं इनके सामने बन गया हूँ। जीवन में ऐसी ही स्त्रियों से आधा संसार भरा रहेगा और ऐसी ही किसी से विवाह होगा। तुलसीदास ने टीक कहा है कि “तुलसी गाय बजाय के दियो काठ में पांव।” स्त्रियों की ठठोली के बाव्य उसे गड़ रहे थे और सब बाव्यों के बुस्त्रणों के ऊपर उस पिघलती हुई आखोंवाली कन्या का चित्र मँडरा रहा था।

बड़े ही उदास चित्त से रघुनाथ घर पहुँचा।

नाँब पहुँचने के तीसरे दिन रघुनाथ सबेरा होते ही घूमने को निकला। पहाड़ी जमीन; जहाँ रास्ता देखने में कोस भर जँचे और चाहे उसमें दस झील का चक्कर काट लो। बिना पानी सींचे हुए हरे मल्लमल में गलीचे से ढकी हुई जमीन; उस पर जंगली गुलदाउदो की पीली टिर्माकियाँ और वसन्त के फूल! आलूबुखारे और पहाड़ी करौंदे की रज से भरे हुए छोटे-छोटे रंगीले फूल, जो पेड़ का पत्ता भी न दिखने दें। क्षितिज पर लटके हुए बादलों की-सी बर्फीले पहाड़ों की चोटियाँ, जिन्हें देखते आँखे अपने आप बड़ी हो जातीं और जिनकी हवा की साँस लेने से छाती बढ़ती हुई जान पड़ती। नदी से निकाली हुई छोटी-छोटी असंख्य नहरें, जो साँप के-से चक्कर खा-खाकर, फिर प्रधान नदी की पथरीली तलेटी में जा मिलतीं। ये सब दृश्य प्रयाग के ईशों के घर और कीचड़ की सड़कों से बिल्कुल निराले थे। चलते-चलते रघुनाथ का मन नही भरा और घाटी के उतार-चढ़ाव की गिनती न करके, बह नदी के चक्करों

की सीध में हो लिया। एक ओर आम के पेड़ थे, जो बौरों और केरियों* से लदे हुए थे। उनके सामने धान के खेत थे, जिनमें से पानी किलचिल, किलचिल करता हुआ पिघल रहा था। कहीं उसे कंटोली बाड़ों के बीच में होकर जाना पड़ता था और कहीं छोटे-छोटे झरने, जो नदी में जा मिले थे, लांघने पड़ते थे। इन प्राकृतिक दृश्यों का आनन्द लेता हुआ रघुनाथ नदी की ओर बढ़ा।†

इस समय वहाँ कोई न था। रघुनाथ ने एक अकृत्रिम घाट—चौड़ी शिला—पर खड़े होकर नदी की शोभा देखी और सोचा कि हजामत बनाकर, नहा-धोकर घर चलें। नई सभ्यता के प्रभाव से सेप्टी-रेजर और साबुन की टिकिया सफ़री कोट की जेब में थी ही। ऊपर की जेब की पाकेटबुक से एक आईना भी निकल पड़ा। रघुनाथ उसी शिला फलक पर बैठ गया और अपने मुख रूपी आकाश पर छाये हुए कोमल बादलों को मिटाने के लिए, अमेरिका के इस जेबी वज्र को चलाने लगा

कवियों को सोचने का समय पाख़ाने में मिलता है और युवाओं का स्वयं हजामत करने में। यदि नाई होता, तो संसार के समाचारों से वही मग़ज चाट जाता। इसकी वैज्ञानिक युक्ति मुझे एक थियासोफ़िस्ट ने बताई थी। वह बहुत-से तर्क और कुतर्कों से सिद्ध कर रहा था कि पुरानी चालों में सूक्ष्म वैज्ञानिक रहस्य भरे पड़े हैं। यहाँ तक कि मातायें बच्चे के सिर में, नज़र से बचाने के लिए जो काजल का टीका लगा देती हैं, अथवा दूध पिलाये पीछे बच्चे को धूल की चुटकी चटा देती हैं, इसका भी वह बिजली के विज्ञान से समाधान कर रहा था। उसने कहा कि हजामत बनाते या बनवाते समय, रोम खुल जाने से, मस्तिष्क तक के स्नायुतारों की बिजली हिल जाती है और वहाँ विचारशक्ति की ख़ुजला-हट पहुँच जाती है। अस्तु।

*छोटे कच्चे आम। † 'बाड़ों के' से लेकर 'इस समय' तक की ३-४ पंक्तियाँ अप्राप्य होने पर ये तीन पंक्तियाँ जोड़ी गई हैं।

मूल-सम्पादक

रघुनाथ की खुजलाहट का आरम्भ यों हुआ कि यह नदी सहस्रों वर्षों से यों ही बह रही है और यों ही बहती जायगी। किनारे के पहाड़ों ने, ऊपर के आकाश ने और नीचे की मिट्टी ने, उसको यों ही देखा है और यों ही वे उसे देखते जायेंगे। यही क्या, नदी का प्रत्येक परमाणु अपने आगे वाले परमाणु की पीठ को और पीछेवाले परमाणु के सामने को देखता जाता है। अथवा, क्या पहाड़ को या तलेटी को नदी की खबर है? क्या नदी के एक परमाणु को दूसरे की खबर है? मैं यहाँ बंठा हूँ; इन परमाणुओं को, इन पत्थरों को, इन बादलों को मेरी क्या खबर है? इस समय आगे-पीछे, नीचे-ऊपर कौन मेरी पर्वाह करता है? मनुष्य अपने घमण्ड में त्रिलोकी का राजा बना फिरे, उसे अपने आत्माभिमान के सिवा पूछता ही कौन है? इस समय मेरा यह क्षौर* बनाना किसके लिए ध्यान देने योग्य है? किसे पड़ी है कि मेरी लीलाओं पर ध्यान रखे।

इसी विचार के तार में ज्योंही उसने सिर उठाया, त्योंही देखा कि कम से कम एक व्यक्ति को तो उसकी लीलायें ध्यान योग्य हो रही थीं; जो उनका अनुकरण करती थी। रघुनाथ क्या देखता है कि वही पानी पिलानेवाली लड़की सामने एक दूसरी शिला पर बैठी हुई है और उसकी नक़ल कर रही है।

उस दिन की हँसी की लज्जा रघुनाथ के जी से नहीं हटी थी। वह लज्जा और सङ्कोच के मारे यही आशा करता था कि फिर कभी वह लड़की मुझे न दिखाई पड़े और अपनी ठठोलियों से मुझे तङ्ग न करे। अब, जिस समय वह यह सोच रहा था कि मुझे कोई न देख रहा है, वही लड़की उसके हजामत बनाने की नक़ल कर रही है। उसने हाथ में एक तिनका ले रखा है। जब रघुनाथ उस्तरा चलाता है, तब वह तिनका चलाती है। जब रघुनाथ हाथ खींचता है, तब वह तिनका रोक लेती है।

*हजामत।

रघुनाथ ने मुंह दूसरी ओर किया। उसने भी वैसा ही किया। रघुनाथ ने दहिना घुटना उठाकर, अपना आसन बदला। वहाँ भी ऐसा ही हुआ। रघुनाथ ने बाईं हथेली धरती पर टेककर, अँगड़ाई ली। लड़की ने भी वही मुद्रा की। ये सब प्रयोग रघुनाथ ने यह निश्चय करने के लिए ही किये थे कि यह लड़की क्या वास्तव में मेरा मखौल कर रही है। उसने हलका-सा खँखारा, उसना ही खँखारना उधर से सुना। अब रुक-रुक कर देह नहीं रह गया।

ऐसे अवसर पर बुद्धिमान् लोग जो करना चाहते हैं, वहीं रघुनाथ ने किया। अर्थात् वह मुंह बदलकर अपना काम करता गया और उसने विचार किया कि मैं उधर न देखूंगा। इस विचार का वही परिणाम हुआ, जो ऐसे विचारों का होता है; अर्थात् दो ही मिनट में रघुनाथ ने अपने को उसी ओर देखते हुए पाया। अब लड़की ने भी अपना आसन बदल लिया था। रघुनाथ ने कई बार विचार किया कि मैं उधर न देखूंगा, पर फिर वह उधर ही देखने लगा। उसके सामने फिर उन पिघलती हुई आँखों का चित्र आने लगा। आँखें, जो मानो अभी पानी होकर बह जायेंगी; सफ़ेद हलका नीला कौआ, जिसमें एक प्रकार की चंचलता, हँसी और घृणा तैर रही थी।

‘यह लड़की यों पिण्ड नहीं छोड़ेगी। मैंने इसका क्या बिगाड़ा है? इससे पूछूँ क्या? पूछूँ तो फिर वैसे ही बनायेगी। पर खैर, आज तो अकेली यही है। इसकी चोटों पर साधुवाद करने के लिए महिला-मण्डल तो नहीं है।’ यह सोचकर रघुनाथ ने जोर से खँखारा। वही जवाब मिला। उसने हाथ बढ़ाकर अँगड़ाई ली। वहाँ भी अंग तोड़े गये। रघुनाथ ने एक पत्थर उठाकर नदी में फेंका। उधर से भी एक ढेला फेंका गया जो झलझल करके पानी में बोला।

यह प्रिना वचनों की छेड़ रघुनाथ से सही न गई। उसने एक छोटी-सी कङ्करी उठाकर लड़की की शिला पर मारी। जवाब में वैसी ही एक कङ्करी रघुनाथ की शिला से आ बजी। रघुनाथ ने दूसरी कङ्करी उठाकर

फेंकी जो लड़की के समीप जा पड़ी। इस पर एक कज्जुरी आकर रघुनाथ की पाकेटबुक के आईने पर पट से बोली और उसे फोड़ गई। रघुनाथ कुछ चिप गया, उसकी हिम्मत कुछ बढ़ गई। अब के उसने जो कज्जुरी मारी कि वह लड़की के हाथ पर जा लगी।

इस पर लड़की ने हाथ को भठ से उठाया और स्नान उठी। जहाँ रघुनाथ बैठा था वहाँ आई और उसके देखते-देखते, उसके सामने से टोपी, जस्तरा और पाकेटबुक तथा साबुन की बट्टी को उठाकर, नदी की ओर बढ़ी। जितना समय इस बात को लिखने और बाँचने में लगा है, उतना समय भी नहीं लगा कि उसने उन सबको पानी में फेंक दिया। रघुनाथ, उसके हाथ को नदी की ओर बढ़ते हुए देख, उसका तात्पर्य समझ, कि कर्त्तव्यविमूढ़-सा हो, ज्योंही दो कदम आगे धरता है कि पंकीली शिला पर उसका पैर फिसला और वह धड़ाम से रिर के बल पानी में गिर पड़ा।

रघुनाथ तैरना नहीं जानता था, यद्यपि वह मित्रों के साथ जाकर दारागंज की गङ्गा में नहा आया करता था। परन्तु चाहे कितना ही तैराक हो, औंधे सिर पानी में गिरने पर तो गोता खा ही जाता है। रघुनाथ का सिर पेंदे के पास पहुँचते ही, उसने दो गोते खाये और सीधा होते-होते उसकी साँस टूट गई। यों तो नदी में पानी रघुनाथ के सिर से कुछ ही ऊँचा था। धीरज से उसके पैर टिक जाते तो वह हाथ फटफटाकर किनारे आ लगता, क्योंकि वह बहुत दूर नहीं गया था। पर फिसलने की घबराहट, साँस का टूटना, गले में पानी भर जाना, नीचे वलझल—इन सबसे वह भौंचक होकर बीस-तीस हाथ बढ़ता ही मरता गया। नदी की तलेटी में चट्टान थी, जो पानी के बहाव से फसल खिरती जाती थी। वहाँ पानी का ताला कुछ जोर से बढ़कर चक्कर खाता था। वहाँ पहुँचकर, पानी कम होने पर भी, हाथ-पाँव मारने पर भी, रघुनाथ के पैर नहीं टिके और उछलता हुआ पानी उसके मुँह में गया। वह नदी के बहाव की ओर जाने लगा। बालिका ने जान लिया कि बिना निकाले

वह पानी से निकल न सकेगा। वह झट साड़ी का कछौटा कसकर पानी में कूद पड़ी। जल्दी से तैरती हुई आकर उसने रघुनाथ का हाथ पकड़ना चाहा कि इतने में रघुनाथ एक और चक्कर काट, सिर पानी के नीचे कर, खांसने लगा। लड़की के हाथ उसकी चमड़े की पेट्टी आई, जो उसने पतलून के ऊपर बांध रखी थी। वह एक हाथ से उसे खींचती हुई, रघुनाथ को छरों के बहाव से निकाल लाई और दूसरे हाथ से पानी हटाती हुई, किनारे की ओर बढ़ने लगी। अब रघुनाथ भी सीधा हो गया था। पानी चीरने में खड़ा या मुड़ा आदमी, लेटे हुए की अपेक्षा बहुत दुखःदाई होता है। हाँफती हुई कुमारी ने बिड़राए हुए रघुनाथ को किनारे लगाया। रघुनाथ मुंह और बालों का पानी निचोड़ता हुआ, तरबतर कुरते और पतलून से धाराएँ बहाता हुआ, चट्टान पर बैठा। पाँच-सात बार खांसने पर, आँखें पोंछने पर, उसने देखा कि भीगी हुई कुमारी उसके सामने खड़ी है और उन्हीं पिघलती हुई आँखों से घृणा, दया और हँसी झलकाती हुई कह रही है कि—

इस अनाड़ी के सामने भी कोई अपना लहंगम-पसारेगी !

ये सब घटनायें इतनी जल्दी-जल्दी हुई थीं कि रघुनाथ का सिर चकरा रहा था। अभी पानी की गूँज कानों को ढोल किये हुए थी और मानसिक क्षोभ और लज्जा से वह पागल-सा हो रहा था। उसके मन की पिछली भित्ति पर चाहे यह अंकित रहा हो कि इस लड़की ने मुझे नदी में से निकाला है, पर सामने की भित्ति पर यही था कि ~~शब्द~~ ^{शब्द} के कौड़ों से यह मेरी चमड़ी उधेड़े डालती है। रघुनाथ उसे पकड़ने के लिए लपका और लड़की दो खेतों की बाड़ के बीच तड़प सड़क पर दौड़ चली। रघुनाथ पीछा करने लगा।

गाँव की लड़कियाँ हड्डियों और गहनों का बण्डल नहीं होतीं। वहाँ वे दौड़ती हैं, कूदती हैं, तैरती हैं, हँसती हैं, गाती हैं, खाती हैं और पचाती हैं। शहरों में आकर वे खूँटे से बंधकर कुम्हलाती हैं, पीली पड़ जाती हैं, भूखी रहती हैं, सोती हैं, रोती हैं और मर जाती हैं।

रघुनाथ ने मील की दौड़ में इनाम पाया था। इस समय का दौड़ना उसके बहुत गुण बैठ। पानी में गोते खाने के पीछे की सारी शरीर की शून्यता मिटने लगी। पाव मील दौड़ने पर लड़की जितने हाथ आगे बढ़ती थी, वे घटने लगे और सौ गज और जाते-जाते अचानक चीख मारकर, लड़-खड़ाकर, वह गिरने लगी। रघुनाथ उसके पास जा पहुँचा। अवश्य ही रघुनाथ को इतने हँफानेवाले श्रम के और मानसिक क्षोभ के पीछे यही भाव था कि इस लड़की को गुस्ताखी के लिए दण्ड दूँ। रघुनाथ ने उसे दोनों बाँहें डालकर पकड़ लिया। रघुनाथ के लिए स्त्री की और उस लड़की के लिए पुरुष का यह पहला स्पर्श था। रघुनाथ कुछ सोच भी न पाया था कि मैं क्या करूँ, इतने में लड़की ने मुँह उसके सामने करके अपने नखों से उसकी पीठ में और बगल में बहुत तेज चुटकियाँ काटीं। रघुनाथ की बाँहें ढीली हुई, पर क्रोध नहीं। उसने एक मुक्का लड़की की नाक पर जमाया। लड़की साँस लेते रुकी। इतने में दौड़ने के बेग से, जो अभी न रुका था और मुक्के से, दोनों नीचे गिर पड़े। दोनों धूल में लोटमलोट हो गये।

रघुनाथ धूल झाड़ता हुआ उठा। क्या देखता है कि लड़की के नाक से लहू बह रहा है। अपने विजय का पहला आवेश एकदम से भूलकर, वह पश्चात्ताप और दुःख के पाश में फँस गया। उसका मुँह पसीना-पसीना हो गया। वह चाहता था कि इन लहू के बूंदों के साथ मैं भी धरती में समा जाऊँ और उनके साथ ही अपनी आँखें भूमि में गड़ा भी रहा था। परन्तु फिर क्षण में आँखें उठ आईं। लड़की अपने भीगे और धूल लगे हुए आँचल से नाक पोंछती हुई, उन्हीं आँखों से वही घृणा की और पछतावे की दृष्टि डालती हुई, कह रही थी—

“वाह, अच्छे मर्द हो! बड़े बहादुर हो! स्त्रियों पर हाथ उठाया करते हैं?”

रघुनाथ चुप।

“वाह, पिराग जी में खूब इलम पढ़ा! स्त्रियों पर हाथ उठाते होंगे।”

रघुनाथ ने नीचे सिर से, आँखें न उठाकर कहा;—

“मुझे बड़ी भूल हो गई। मुझे पता ही नहीं था कि मैं क्या कर रहा हूँ। मेरा सिर ठिकाने नहीं है। मुझे चक्कर—”

“अभी चक्कर आवेंगे? स्त्रियों पर हाथ नहीं चलाया करते हैं।”

सड़क यहाँ चौड़ी हो गई थी। कचनार की एक बेल आम पर चढ़ी हुई थी और आम के तले पत्थरों का थाँवला था। सुनसान था। दूर से नदी की कलकल ओ रह-रहकर खातीचिड़े की ठकठक ठकठक आ रही थी। इस समय रघुनाथ का घोघापन हटने लगा और स्त्रियों की ओर से भँप, इस पिघलती हुई आँखोंवाली के वचन-वाणों के नीचे भागने लगी। ढाढ़स करके उसने पूछा—

“तुम्हारा नाम क्या है?”

“भागवन्ती।”

“रहती कहाँ हो?”

“माँ की पास—वही जिसने कुएं पर पानी पिलाया था।”

उस दिन का स्मरण आते ही रघुनाथ फिर चुप हो गया। फिर कुछ ठहरकर बोला—“तुम मेरे पीछे क्यों पड़ी हो?”

“तुम्हें आदमी बनाने को। जो तुम्हें बुरा लगा हो, तो मैंने भी अपने किये का लहू बहाकर फल पा लिया। एक सलाह दे जाती हूँ।”

“क्या?”

“कल से नदी में नहाने मत जाना।”

“क्यों?”

“गोते खाओगे तो कोई बचाने वाला नहीं मिलेगा।”

रघुनाथ भँपा, पर सम्हल कर बोला—“अब कोई मेरी जान बचायेगा तो मैं पीछा नहीं करूँगा, दो गाँधी भी सुन लूँगा।”

“इसलिए नहीं, मैं आज अपने बाप के यहाँ चली जाऊँगी।”

“तुम्हारा घर कहाँ है?”

“जहाँ अनाड़ियों के डूबने के लिए कोई नदी नहीं है।”

“हूँ ! फिर वही बात लाई। तो वहाँ पर खिड़ामेवालों के भागने के लिए रास्ता भी न होगा।”

“जी, यहाँ जो मैं आपके हाथ आगई !”

“नहीं तो ?”

“काँटा न लगता तो प्रयाग तक दौड़ते तो हाथ न आती।”

“काँटा ! काँटा कैसा ?”

“यह देखो।”

रघुनाथ ने देखा कि उसके दहने पैर के तलवे में एक काँटा चुभा हुआ है। उसको यह सूझी कि यह मेरे दोष से हुआ है। बालिका के सहारे वह घुटने के बल बैठ गया और उसका पैर खींचकर रुमाल से धूल झाड़कर काँटे को देखने लगा।

काँटा मोटा था, पर पैर में बहुत पैठ गया था। वह उठकर बाड़ से एक और बड़ा काँटा तोड़ लाया। उससे और पतलून की जेब के चाकू से उसने काँटा निकाला। निकालते ही लोह का डोरा बह निकला। काँटा प्रायः दो इंच लम्बा और जहरीली कँटीली का था।

“ओफ़”, कहकर रघुनाथ ने कमीज की आस्तीन फाड़कर उसके पाँव में पट्टी बांध दी।

बालिका चुप बैठी थी। रघुनाथ काँटे को निरख रहा था।

“अब तो दर्द नहीं है ?”

“कोई एहसान थोड़ा है; तुम्हारे भी कभी काँटा गड़ जाय तो निकलवाने आ जाना।”

“अच्छा।”—रघुनाथ का जी जला था। यह बरताय !

“अच्छा क्या ? जाओ, अपना रास्ता लो।”

“यह काँटा मैं ले जाऊँगा—आज की घटना की यादगारी रहेगी।”

“मैं इसे ज़रा देख लूँ।”

रघुनाथ ने अँगूठे और तर्जनी से काँटा पकड़कर उसकी ओर बढ़ाया। अपनी दो अँगुलियों से उसे उठाकर और दूसरे हाथ से रघुनाथ को धक्का

देकर, लड़की हँसती-हँसती बौड़ गई। रघुनाथ धूल में एक कलामुण्डो खाकर ज्यों ही उठा कि बालिका खेतों को फाँवती हुई जा रही थी।

अब कीवफ़ा उसका पीछा करने का साहस हमारे चरित्रनायक ने नहीं किया। नदी-तट पर जाकर कोट उठाय़ा और चौधियाये मस्तिष्क से घर की राह ली।

रघुनाथ के हृदय में स्त्री-जाति की अज्ञानता का भाव और उससे पृथक् रहने का कुहरा तो था ही, अब उनके स्थान में उद्वेगपूर्ण ग्लानि का धूम इकट्ठा हो गया था। पर उस धूम के नीचे-नीचे उस चपल लड़की की स्मृति की चिनगारी भी चमक रही थी। अदृश्य ही अपने पिछले अनुभव से वह इतना चमक गया था कि किसी स्त्री से बात करने की उसकी इच्छा न थी। परन्तु रह-रहकर उसके चिन्त में, उस पिघलती हुई आँखोंवाली का और अधिक हाल जानने और उसके वचन-कोड़े सहने की इच्छा होती। रघुनाथ का हृदय एक पहेली हो रहा था और उस पहेली में पहेली उस स्वतन्त्र लड़की का स्वभाव था। रघुनाथ का हृदय धुँएँ से घुट रहा था और विवाह के पास आते हुए अवसर को वह उसी भाव से देख रहा था, जैसे चैत्रकृष्ण में बकरा आनेवाले नवरात्रों को देखता है।

इधर पिता और चाचा घर खोज रहे थे। आस-पास गाँवों में तीन-चार पात्रियाँ थीं, जिनके पिता अधिक धन के स्वामी न होने से, अब तक अपना भार न उतार सके थे और अब बृहस्पति के सिंह का कवल हो जाने को, अपने नरकगमन का पर्वाण-सा देखकर भी, आत्मघात नहीं कर रहे थे। हिन्दू-समाज में धौंस से कुछ नहीं होता, जरूरत से सब हो जाता है। बड़े से बड़ा महाराज थैलियों के मुंह खुलवाकर भी, शास्त्र-जड़ लोगों से यह नहीं कहला सकता कि 'अष्टवर्षा भवेद्गौरी' पर हरताल लगा दो। उलटा अष्ट का अर्थ गर्भाष्टम करके सात वर्ष तीन

महीने की आयु निकाल बैठेंगे। परन्तु कभी शुक्र का छिपना और कभी बृहस्पति का भगना, कभी घर का न मिलना और कभी पल्ले पैसा न होना, कभी नाड़ी-विरोध और कभी कुछ—समझदार आदमी चाहे तो कन्या को चौदह-पन्द्रह वर्ष की करके, काशीनाथ से लेकर आजकल के महामहोपाध्यायों तक को अँगूठा दिखला सकता है।

दो घर तो ज्योतिषी ने खो दिये। तीसरे के बारे में भी उन्होंने लत्तापात करना चाहा था, पर कुछ तो ज्योतिषी जी के डाकखाने के द्वारा मनीआर्डर का ग्रहों पर प्रभाव पड़ा और कुछ रघुनाथ के पिता के इस बिहारी के दोहे के पाठ का ज्योतिषी जी पर—

सुत पितु मारक जोग लखि,
उपज्यो हिय अति सोग।
पुनि विहँस्यो गुन जोयसी,
सुत लखि जारज जोग ॥

विधि मिल गई। भण्डीपुर में सगाई निश्चित हुई। बीस दिन पीछे बरात चढ़ेगी और रघुनाथ का विवाह होगा।

(६)

कन्यादान के पहले और पीछे, वर-कन्या को, ऊपर एक दुशाला डालकर, एक-दूसरे का मुंह दिखाया जाता है। उस समय दुलहा-दुलहिन जैसा व्यवहार करते हैं, उससे ही उनके भविष्य दाम्पत्य-सुख का थर्मा-मीटर माननेवाली स्त्रियाँ बहुत ध्यान से, उस समय के दोनों के आकार-विकार को याद रखती हैं। जो हो, भण्डीपुर की स्त्रियों में यह प्रसिद्ध है कि मुंहबिखौनी के पीछे लड़के का मुंह सफ़ेद फ़क हो गया और विवाह में जो कुछ होम वगैरह उसने किया, वे पागल की तरह। मानो उसने कोई भूत देखा था। और लड़की ऐसी गुम हुई कि उसे काटो तो खून नहीं। दिन भर वह चुप रही और बिड़राई आँखों से ज़मीन देखती रही; मानो उसे भी भूत दिख रहे हों। स्त्रियों ने इन लक्षणों को बहुत अशुभ माना था।

दुलहिन डोले में बिदा होकर समुराल आ रही थी। रघुनाथ छोड़े पर था। दुपहर चढ़ने से कहाँ और बरातियों ने एक बड़ की छाया के नीचे, बाबड़ी के किनारे, डेरा लगाया कि रोटी-पानी करके और धूप काट के चलेंगे। कोई नहाने लगा, कोई बूल्हा सुलगाने। दुलहिन पालकी का पर्दा हटाकर, हवा ले रही थी और अपने जीवन की स्वतन्त्रता के बदले में पाई हुई सुनहरी हथकड़ियों और चाँबी की बेड़ियों को निरख रही थी। मनुष्य पहले पशु है, फिर मनुष्य। सभ्यता का या शांति का भाव पीछे आता है। पहले पाशविक बल का और विजय का। रघुनाथ ने पास आकर कहा—

“क्या कहा था, ऐसे मर्द के आगे कौन लहंगा पसारेली?”

सिर पालकी के भीतर करके, बालिका ने परदा डाल लिया।

रघुनाथ ने यह नहीं सोचा कि उसके जी पर क्या बीतती होगी। उसने अपनी विजय मानी और उसी की अकड़ में बदला लेना ठीक समझा।

“हाँ, फिर तो कहना; इस बुढ़ू के आगे कौन लहंगा पसारेली?”

चुप।

“क्यों, अब वह कंची की-सी जीभ कहाँ गई?”

चुप।

कहाँ तो रघुनाथ छेड़ से चिढ़ता था, अब कहाँ वह स्वयं छेड़ने लगा। उसकी इच्छा पहले तो यह थी कि यह बोली कभी न सुनूँ, परन्तु अब वह चाहता था कि मुझे फिर वैसे ही उत्तर मिलें। विवाह के पहले अचम्भे के पीछे, उसने दुःख की आह के साथ ही साथ एक सन्तोष की आह भी भरी थी, क्योंकि पहले दिनों की घटनाओं ने उसके हृदय पर एक बड़ा अद्भुत परिवर्तन कर दिया था।

“कहो जी, अब प्रयागवालों की अकल सिखाने आई हो? अब इतनी बातें कैसे सुनी जाती हैं?”

“मैं हाथ जोड़ती हूँ, मुझसे मत बोलो। मैं मर जाऊँगी।”

“तो नदी में डूबते हुए युवुओं को कीन निकालेगा ?”

“अब रहने दो। यहाँ से हट जाओ। चले जाओ।”

“क्यों ?”

“क्यों क्या ? अब इस चक्की में ऐसा ही पिसना है। जनम भर का रोग है; और जनम भर का रोना है।”

“तहीं; मुझे अकल सीखने का—” रघुनाथ ने ध्यंग्य से आरम्भ किया था, पर इतने में एक कहार चिलम में तमाखू डालने आ गया। भूमिका की सफ़ाई बिना कहे और बिना हुए ही रह गई।

(७)

हिन्दू-घरों में, कुछ दिनों तक, दम्पति चोरों की तरह मिलते हैं। यह संशुक्त कुटुम्ब-प्रणाली का घर या शाप है। रघुनाथ ने ऐसे चोरी के अवसर आगे आकर ढँढ़ने आरम्भ किये, पर भागवन्ती टल जाती थी। उसने रघुनाथ को एक भी बात कहने का, या सुनने का मौका न दिया।

जुलाई में रघुनाथ इलाहाबाद जाकर थर्डेयर में भरती हो गया। दशहरे और बड़े दिन की छुट्टियों में आकर उसने बहुतेरा चाहा कि दो बातें कर सके, पर भागवन्ती उसके सामने ही नहीं होती थी। हाँ कई बार उसे यह सन्देह हुआ कि वह मेरी आहट पर ध्यान रखती है और छिप-छिपकर मुझे देखती है, पर ज्योंही वह इस सूत पर आगे बढ़ता कि भागवन्ती लोप हो जाती।

पढ़ने की चिन्ता में विधन डालनेवाली अब उसको यह नई चिन्ता लगी। यह बात उसके जी में जम गई कि मंने अमानुष निर्दयता से और बोली-ठोली से उसके सीधे हृदय को दुखा दिया है। परन्तु कभी-कभी यह सोचता कि क्या दोष मेरा ही है ? उसने क्या कम ज्यादती की थी ? जो ताने-तिशने उस समय उसके हृदय को बहुत ही चीरते हुए जान पड़े थे, वे अब उसकी स्मृति में बहुत प्यारे लगने लगे। सोचता था कि मैं ही जाकर क्षमा मागूंगा। जिन जाँघों ने उसका पीछा किया था, उन्हें बाँधकर उसके सामने पड़कर कहूँगा कि उस दिनवाली चाल से मुझे

कुचलती हुई चली जा। अथवा यह कहूंगा कि उसी नदी में मुझे ढकेल दे। योंतरह-तरह के तर्क-वितर्कों में उसका समय कटने लगा। नहाकी में अब उसकी कदर रही और न प्रोफेसरों की आंखें बंदी रहीं। उसी कीचड़ लगे हुए पतलून को मेज पर रखकर सोचता, सोचता, सोचता रहता।

होली की छुट्टियाँ आईं। पहले सलाह हुई कि घर न जाऊँ, काशी में एक मित्र के पास ही छुट्टियाँ बिताऊँ। उस मित्र ने प्रसङ्ग चलने पर कहा—‘हाँ भाई, ब्याह के पीछे पहली होली है, तुम काहे को चलते हो?’ वह रघुनाथ के हृदय के भार को क्या समझ सकता था? रघुनाथ ने हँसकर बात टाल दी। रात को सोचा कि चलो छुट्टियों में बोडिंग में ही रहूँ। पास ही पब्लिक लाइब्रेरी है, दिन कट जायेंगे। रात को जब सोया तो पिघलती हुई आंखें, वही नाक से बहता हुआ खून और वही आँसुओं से न ढकनेवाली हँसी! नींद न आ सकी। जैसे कोई सुपने में चलता है, वैसे बेहोशी में ही सबरे टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गया। पता नहीं कि किधर जा रहा है। चेत तब हुआ जब कुली “टूँडला” “टूँडला” चिल्लाये। रघुनाथ चौंका। अच्छा जो हो, अबकी दफ़ा फिर उद्योग करूँगा—यों कहकर हृदय को दृढ़ करके घर पहुँचा।

होली का दिन था। जैसे कोजागर पूर्णिमा को चोरों के लिए घर के दरवाजे खुले छोड़कर हिन्दू सोते हैं, वैसे माता-पिता टल गये थे। मा पकवान बना रही थी और बाप—खैर बाप भी कहीं थे। रघुनाथ भीतर पहुँचा। भागवन्ती सिर पर हाथ धरे हुए कोने में बैठी थी। उसे देखते ही खड़ी हो गई। वह दरवाजे की तरफ़ बढ़ने न पाई थी कि रघुनाथ बोला, “ठहरो, बाहर मत जाना।”

वह ठहर गई। धूँघट खींचकर कोने की पीढ़ी के बान को देखने लगी।

“कहो कंसी हो? आज तुमसे बातें करनी हैं।”

चुप।

“प्रसन्न रहती हो? कभी मेरी भी याद करती हो?”

चुप।

“मेरी छुट्टी तीन ही दिन की है।”

चुप।

“तुम्हें मेरी कसम है, चुप मत रहो! कुछ तो बोलो! जवाब दो! पहले की तरह ताने ही से बोलो! मेरी शपथ है—सुनती हो?”

“मेरे कानों में पानी थोड़ा ही भर गया है।”

“हाँ, बस, यों ठीक है; कुछ ही कहो पर कहती जाओ। अच्छा होता तुम मुझे उस दिन न निकालतीं और डूब जाने देतीं।”

“अच्छा होता यदि मेरा काँटा न निकालते और पैर खल कर में मर जाती।”

“तुमने कहा था कि कोई एहसान थोड़ा है; काँटा गड़ जाय तो में भी निकाल दूंगी।”

“हाँ निकाल दूंगी।”

“कैसे?”

“उसी काँटे से।”

“उसी काँटे से! वह है कहाँ?”

“मेरे पास।”

“क्यों?—कब से?”

“जब से पतलून टूटने में बन्द होकर आगरे गई तब से।”

न मालूम पीढ़ी का बान कैसा अच्छा था, निगाह उस पर से नहीं हटी। शायद ताँत गिनी जा रही थी।

“अनाड़ी की बात की नक़ल करती हो?”

गिनती पूरी हो गई। अब अपने नखों की बारी आई।

“क्यों, फिर चुप?”

“हाँ”—नखों पर से ध्यान नहीं हटा।

रघुनाथ ने छत की ओर देखकर कहा—“अनाड़ियों की पीठ नख आजमाने के लिए अच्छी होती है।”

नख छिपा लिये गये।

“काँटा निकालोगी?”

“हाँ।”

“काँटा छत में चोड़ा ही है।”

“तो कहाँ है?”

“मे तो अनाड़ी हूँ, मुझे लसलो-पसो करना नहीं आता। साफ़ कहना जानता हूँ, सुनो!” यह कहकर रघुनाथ बढ़ा और उसने उसके दोनों हाथ पकड़ लिए।

उसने हाथ नहीं हटाये।

“उस समय मैं जंगली था, बहूशी था, अधूरा था। मनुष्य जब तक स्त्री की परछाई नहीं पा लेता है, तब तक पूरा नहीं होता। मेरे बुद्धूपन को क्षमा करो। मेरे हृदय में तुम्हारे प्रेम का एक भयंकर काँटा गड़ गया है। जिस दिन तुम्हें पहले-पहल देखा, उस दिन से बह गड़ रहा है और अब तक गड़ा जा रहा है। तुम्हारी प्रेम की दृष्टि से मेरा यह शूल हटेगा।”

घूँघट के भीतर, जहाँ आँखें होनी चाहिए, वहाँ कुछ गीलापन दिखा।

“देखो, मैं तुम्हारे प्रेम के बिना जी नहीं सकता। मेरा उसी दिन का रूखापन और जंगलीपन भूल जाओ। तुम मेरे प्राण हो, मेरा काँटा निकाल दो।”

रघुनाथ ने एक हाथ उसकी कमर पर डालकर उसे अपनी ओर खींचना चाहा। मालूम पड़ा कि नदी के किनारे का किला, नींव के गल जाने से धीरे-धीरे धँस रहा है। भागवन्ती का बलवान् शरीर, निस्तार होकर, रघुनाथ के झुंघे पर लूम गया। कन्धा आँसुओं से गीला हो गया।

“मेरा क्रसूर—मेरा गँवारपन—मैं उजड़ू—मेरा अपराध—मेरा पाप—मैंने क्या-क्या कह डा—डा—डा आ—” घिघी बँध चली।

उसका मुँह बन्द करने का एक ही उपाय था। रघुनाथ ने वही किया।

६—दुखवा में कासे कहुँ मोरी सजनी ?

[श्री चतुरमेन शास्त्री]

(१)

मेरी के बिन थे । बादशाह ने उम्मी फागुन में सलीमा से नई शादी की थी । सल्तनत की सब भूमिओं से दूर रहकर, नई दुल्हन के साथ प्रेम और आनन्द की कलील करने, वे सलीमा को लेकर, काश्मीर के दौलतखाने में चले आये थे ।

रात दूध में नहा रही थी । दूर के पहाड़ों की चोटियाँ बर्फ से सँकीर्ण होकर चाँदनी में बहार दिखा रही थीं । आरामबाग के नीचे पहाड़ी नदी, बल खाकर बह रही थी ।

मोतीमहल के एक कमरे में शमादान जल रहा था और उसकी खुली खिड़की के पास बैठी, सलीमा रात का सौन्दर्य निहार रही थी । खुले हुए बाल उसकी फीरोजी रंग की ओढ़नी पर खेल रहे थे । चिकन के काम से सजी और मोतियों से गुँथी हुई, उस फीरोजी रंग की ओढ़नी पर, कसी हुई कमल्लाब की कुरती और पल्लों की कमरपेटी पर, अंगूर के बराबर बड़े मोतियों की माला भूम रही थी । सलीमा का रंग भी मोती के समान था । उसकी देह की गठन निराली थी । संगमरमर के समान पैरों में जूरी के काम के जूते पड़े थे, जिन पर दो हीरे चमाचम चमक रहे थे ।

कमरे में एक क्रीमती ईरानी कालीन का फर्श बिछा हुआ था, जो पैर रखते ही हाथ भर नीचे धँस जाता था । सुगन्धित मसालों से बने हुए शमादान जल रहे थे । कमरे में चार पूरे कद के आईने लगे थे । संगमरमर के आंधारों पर, सीने-चाँदी के फूलदानों में, ताजे फूलों के गुलबस्तें रखी थी । दीवारों और दरवाजों पर चतुराई से गुँथी हुई नाग-

केसर और चम्पे की मालायें भूम रही थीं, जिनकी सुगन्ध से कमरा महक रहा था। कमरे में अनगिनत बहुमूल्य कारीगरी की देश-विदेश की वस्तुएँ करीने से सजी हुई थीं।

बादशाह दो दिन से शिकार को गये थे। आज इतनी रात गई, अभी तक नहीं आये। सलीमा चाँदनी में दूर तक आँखें बिछाये सवारों की गर्ब देखती रही। आखिर उससे स्थिर न रहा गया। वह खिड़की से उठकर, अनमनी-सी होकर मसनद पर आ बंठी। उम्र और चिन्ता की गर्मी जब उससे सहन न हुई, तब उसने अपनी चिकन की ओढ़नी भी उतार फेंकी और आप ही आप भुंभलाकर बोली—“कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब क्या करूँ?” इसके बाद उसने पास रखी बीन उठा ली। दो-चार अँगुली खलाई; मगर स्वर न मिला! उसने भुनभुनाकर कहा—“मर्दों की तरह यह भी मेरे वश में नहीं है।” सलीमा ने उकताकर, उसे रखकर दस्तक दी। एक बाँदी दस्तबस्ता आ हाज़िर हुई।

बाँदी अत्यन्त सुन्दरी और कमसिन थी। उसके सौन्दर्य में एक गहरे विषाद की रेखा और नेत्रों में निराश की स्याही थी। उसे पास बैठने का हुक्म देकर सलीमा ने कहा—“साफ़ी, तुझे बीन अच्छी लगती है या बाँसुरी?”

बाँदी ने नम्रता से कहा—“हुज़ूर जिसमें खुश हों।”

सलीमा ने कहा—“तू किसमें खुश है?”

बाँदी ने कम्पित स्वर में कहा—“सरकार! बाँदियों की खुशी ही क्या?”

क्षण भर सलीमा ने बाँदी के मुँह की तरफ़ देखा—वैसा ही विषाद, निराशा और व्याकुलता का मिश्रण हो रहा था।

सलीमा ने कहा—“मे क्या तुझे बाँदी की नज़र से देखती हूँ?”

“नहीं, हज़रत की तो लोंडो पर खास मेहरबानी है।”

“तब तू इतनी उदास, भिभकी हुई और एकान्त में क्यों रहती

है ? जब से तू नौकर हुई है, ऐसी ही देखती हूँ। अपनी तकलीफ़ मुझसे तो कह, प्यारी साक़ी !”

इतना कहकर सलीमा ने उसके पास खिसककर उसका हाथ पकड़ लिया।

बाँदी काँप गई; पर बोली नहीं।

सलीमा ने कहा—“कसमिया ! तू अपना दर्द मुझसे कह, तू इतनी उदास क्यों रहती है ?”

बाँदी ने कम्पित स्वर से कहा—“हुजूर क्यों इतनी उदास रहती हूँ ?”

सलीमा ने कहा—“इधर जहाँपनाह कुछ कम आने लगे हैं। इसी से तबीअत ज़रा उदास रहती है।”

बाँदी—“सरकार ! प्यारी चीज़ न मिलने से इंसान को उदासी आ ही जाती है। अमीर और गरीब, सभी का दिल तो दिल ही है।”

सलीमा हँसी। उसने कहा—“समझी, तब तू किसी को चाहती है ? मुझे उसका नाम बता, मैं उसके साथ तेरी शादी करा दूँगी।”

साक़ी का सिर धूम गया। एकाएक उसने बेगम की आँखों से आँखें मिलाकर कहा—“मैं आपको चाहती हूँ !”

सलीमा हँसते-हँसते लोट गई। उस मदमाती हँसी के बेग में, उसने बाँदी का कम्पन नहीं देखा। बाँदी ने वंशी लेकर कहा—“क्या सुनाऊँ ?”

बेगम ने कहा—“ठहर, कमरा बहुत गर्म मालूम देता है, इसके तमाम दरवाज़े और खिड़कियाँ खोल दे। चिरागों को बुझा दे, चटखती चाँदनी का लुत्फ़ उठाने दे और वे फूल-मालायें मेरे पास रख दे।”

बाँदी उठी। सलीमा बोली—“सुन, पहले एक गिलास शरबत दे, बहुत प्यासी हूँ।”

बाँदी ने सोने के गिलास में ख़शबदार शरबत बेगम के सामने ला धरा। बेगम ने कहा—“उफ़, यह तो बहुत गर्म है। क्या इसमें गुलाब नहीं दिया ?”

बांदी ने नम्रता से कहा—“दियां तो हे, सरकार !”

“अच्छा इसमें थोड़ा-सा इस्तम्बोल और मिला।”

साक्री गिलास लेकर दूसरे कमरे में चली गई। इस्तम्बोल मिलाया और भी एक चीज मिलाई। फिर वह सुवासित मादिरा का पात्र बीनम के सामने ला धरा।

एक ही साँस में उसे पीकर बेगम ने कहा—“अच्छा, अब सुना। तूने कहा था कि तू मुझे प्यार करती है। सुना, कोई प्यार का गाना सुना।”

इतना कह और गिलास को गलीचे पर लुढ़काकर, मदमाती सलीमा उस कोमल मल्लमली मसनद पर खूद भी लुढ़क गई और रस-भरें नेत्रों से साक्री की ओर देखने लगी। साक्री ने बीनो का सुर मिलाकर गाना शुरू किया—

“दुखवां मे काँसै कहूँ मीरी संजनी...”

बहुत देर तक साक्री की बीनो और कण्ठध्वनि कमरे में धूम-धूमकर रोती रही। धीरे-धीरे साक्री खूद रोने लगी। बेगम मादिरा और धोवन के नशे में चूर होकर झूमने लगीं।

गीत खत्म करके साक्री ने देखा, सलीमा बीमुंघ बड़ी है। शराब की तेज़ी से उसके गाल एकदमं सुख हो गये हैं और सांभल-राग-रंजित होठ रह-रहकर फड़क रहे हैं। साँस की सुगन्ध से कमरा महक रहा है। जैसे मन्द पर्वत से कोमल पेसी काँपने लगती है, उसी प्रकार सलीमा का वर्धस्थल धीरे-धीरे काँप रहा है। प्रस्वैद की बूँदें ललाटे पर, बीपिक के उज्ज्वल प्रकाश में, मीतिथी की तरह चमक रही हैं।

बीनो रखकर, साक्री क्षण भर बीगम के पास आकर खड़ी हुई। उसका शरीर काँपा, आँखें जलने लगीं, कण्ठ सूख गया। वह घुटने के बल बैठकर बहुत धीरे-धीरे अपने आँचल से बीगम के मुख का पसीना पीछने लगी। इसके बाद उसने झुककर बेगम का मुँह चूम लिया।

इसके बाद ज्योंही उसने अचानक आँख उठाकर देखा, खूद बीन-

दुनिया के मालिक शाहजहाँ खड़े, उसकी यह करतूत अचरज और क्रोध से बेख रहे हैं।

साक्षी को साँप डस गया। वह हत-बुद्धि की तरह बाबशाह का मुँह ताकने लगी। बादशाह ने कहा—“तू कौन है? और यह क्या कर रही थी?”

साक्षी चुप खड़ी रही। बादशाह ने कहा—“जवाब दे!”

साक्षी ने धीमे स्वर में कहा—“जहाँपनाह! कनीज अगर कुछ जवाब न दे, तो?”

बाबशाह सन्नाटे में आगये। बाँदी की इतनी रमर्धा!

उन्होंने कहा—“मेरी बात का जवाब नहीं? अच्छा तुझे नंगी करके कोड़े लगाये जायेंगे!”

साक्षी ने कम्पित स्वर में कहा—“मैं मर्ब हूँ!”

बाबशाह की आँखों में सरसों फूल उठी, उन्होंने अग्निमय नेत्रों से सलीमा की ओर देखा। वह बेगुथ पड़ी सो रही थी। उसी तरह उसका भरा यौवन खुला पड़ा था। उसके मुँह से निकला—“उफ़ फ़ाहशा!” और तत्काल उनका हाथ तलवार की मूठ पर गया। फिर नीचे की उन्होंने घूमकर कहा—“दोदख के कुत्ते! तेरी यह मजाल!”

फिर कठोर स्वर से पुकारा—“मादूम!”

क्षण भर में एक अभ्यंकर रूपवाली तातारी औरत बाबशाह के सामने अदब से आ खड़ी हुई। बादशाह ने हुक्म दिया—“इस मर्बूद को तहखाने में डाल दे ताकि बिना खाये-पिये मर जाय।”

मादूम ने अपने कर्कश हाथों से युवक का हाथ पकड़ा और ले चली। थोड़ी देर में दोनों एक लोहे के मजबूत दरवाजे के पास आ खड़े हुए। तातारी बाँदी ने छाभी निकाल दरवाजा खोला और क़ंबी को भीतर ठकेल दिया। कोठरी का गब, क़ंबी का बोझ ऊपर पड़ते ही, काँपती हुई नीचे की धसकने लगी।

(९६)

(२)

प्रभात हुआ। सलीमा की बेहोशी दूर हुई। चौककर उठ बैठी। बाल सँवारे, ओढ़नी ठीक की और चोली के बटन कसने को आईने के सामने जा खड़ी हुई। खिड़कियाँ बन्द थीं। सलीमा ने पुकारा—
“साक्री! प्यारी साक्री! बड़ी गर्मी है, ज़रा खिड़की तो खोल दो।
निगोड़ी नींद ने तो आज ग़ज़ब ढा दिया। शराब कुछ तेज़ थी।”

किसी ने सलीमा की बात न सुनी। सलीमा ने ज़रा जोर से पुकारा—“साक्री!”

जवाब न पाकर सलीमा हैरान हुई। वह ख़ुद खिड़की खोलने लगी। मगर खिड़कियाँ बाहर से बन्द थीं। सलीमा ने विस्मय से मन ही मन कहा—“क्या बात है? लौंडियाँ सब क्या हुईं?”

वह द्वार की तरफ़ चली! देखा, एक तातारी बाँदी नंगी तलवार लिये पहरे पर मुस्तैद खड़ी है। बेगम को देखते ही उसने सिर झुका लिया।

सलीमा ने क्रोध से कहा—“तुम लोग यहाँ क्यों हो?”

“बादशाह के हुक्म से।”

“क्या बादशाह आगये?”

“जी हाँ।”

“मुझे इत्तिला क्यों नहीं की?”

“हुक्म नहीं था।”

“बादशाह कहाँ हैं?”

“जीनतमहल के दौलतखाने में।”

सलीमा के मन में अभिमान हुआ। उसने कहा—

“ठीक है, ख़ूबसूरती की हाट में जिनका कारबार है, वे मुहब्बत को क्या समझेंगे? तो अब जीनतमहल की क्रिस्मत खत्म।”

तातारी स्त्री चुपचाप खड़ी रही। सलीमा फिर बोली—“मेरी साक्री कहाँ है?”

“क़ैद में !”

“क्यों ?”

“जहाँपनाह का हुक्म।”

“उसका क़ुसूर क्या था ?”

“मे अर्ज़ नहीं कर सकती।”

“क़ैदख़ाने की चाभी मुझे दे, मैं अभी उसे छुड़ाती हूँ।”

“आपको अपने कमरे से बाहर जाने का हुक्म नहीं है।”

“तब क्या मैं भी क़ैद हूँ ?”

“जी हाँ।”

सलीमा की आँखों में आँसू भर आये। वह लौटकर मसनद पर पड़ गई और फूट-फूटकर रोने लगी। कुछ ठहरकर उसने एक ख़त लिखा—

“हुज़ूर ! मेरा क़ुसूर माफ़ फ़र्मावें। दिन भर की थकी होने से ऐसी बेसुध सो गई कि हुज़ूर के इस्तक्रबाल में हाज़िर न रह सकी। और, मेरी उस प्यारी लौंडी की भी जाँ-बख़शी की जाय। उसने हुज़ूर के दीलतख़ाने में लौट आने की इत्तिला मुझे वाजिबी तौर पर न देकर, बेशक भारी क़ुसूर किया है; मगर वह नई, कमसिन, ग़रीब और दुखिया है।

कनीज़

सलीमा”

चिट्ठी बादशाह के पास भेज दी गई। बादशाह की तबीअत बहुत ही नासाज़ थी। तमाम हिन्दुस्तान के बादशाह की औरत फ़ाहशा निकले ! बादशाह अपनी आँखों से पर-पुरुष को उसका मुँह चूमते देख चुके थे ! वे गुस्से से तिलमिला रहे थे और राम ग़लत करने को अन्धा-धुन्ध शराब पी रहे थे। जीनतमहल मौक़ा देखकर, सौतियाडाह का बुल्लार निकाल रही थी। तातारी बाँदी को देखकर बादशाह ने आग़ होकर कहा—“क्या लाई है ?”

बाँदी ने दस्तबस्ता अर्ज की—“खुदावांद ! सलीमा बीबी की अर्जी है।”

इतना कहकर उसने सामने खत रख दिया।

बादशाह ने गुस्से से होंठ चबाकर कहा—“उससे कह दे कि मर जाय।” इसके बाद खत में एक ठोकर मारकर उन्होंने उधर से मुंह फेर लिया।

बाँदी लौट आई। बादशाह का जवाब सुनकर सलीमा धरती पर बैठ गई। उसने बाँदी को बाहर जाने का हुक्म दिया और दरवाजा बन्द करके फूट-फूटकर रोई। घंटों बीत गये; दिन छिपने लगा। सलीमा ने कहा—“हाय ! बादशाहों की बेगम होना भी क्या बदनसीबी है ! इन्तजारी करते-करते आँखें फूट जायँ, मिन्नतें करते-करते ज़बान घिस जाय, अदब करते-करते जिस्म टुकड़े-टुकड़े हो जाय, फिर भी इतनी-सी बात पर कि मैं ज़रा सी गई, उनके आने पर जाग न सकी, इतनी सज़ा ? इतनी बेइज्जती ?

तब मैं बेगम क्या हुई ? जीनत और बाँदियाँ सुनेंगी, तो क्या कहेंगी ? इस बेइज्जती के बाद मुंह दिखाने लायक कहाँ रही ? अब तो मरना ही ठीक है। अफ़सोस ! मैं किसी गरीब किसान की औरत क्यों न हुई !”

धीरे-धीरे स्त्रीत्व का तेज उसकी आत्मा में उदय हुआ। गर्व और दृढ़ प्रतिष्ठा के चिह्न उसके नेत्रों में छा गये। वह साँपिन की तरह चपेट खाकर उठ खड़ी हुई। उसने एक ओर खत लिखा—

“दुनिया के मालिक ! आपकी बीबी और कनीज़ होने की बजह से मैं आपके हुक्म को मानकर मरती हूँ। इतनी बेइज्जती पाकर, एक मलिका का मरना ही मुनासिब भी है। मगर इतने बड़े बादशाह की औरतों को इस क्रूर मारपीट से न समझना चाहिए कि एक अदना-सी बेवकूफी की इतनी बड़ी सज़ा दी जाय। मेरा क्रुसूर सिर्फ़ इतना ही था कि मैं बेखबर सो गई थी। ख़र, सिर्फ़ एक बार हुज़ूर को देखने की

हवाहिश लेकर मरती हूँ। मैं उस पाक परबरविगार के पास जाकर अर्ज करूँगी कि वह मेरे शोहर को सलामत रखे।

सलीमा”

खत को इत्र से सुवासित करके, ताजे फूलों के एक गुलबस्ते में इस तरह रख दिया कि जिससे किसी की उस पर कौरन ही नज़र पड़ जाय। इसके बाद उसने जवाहरात की पेंटी से एक बहुमूल्य अंगूठी निकाली, और कुछ देर तक आँख गड़ा-गड़ाकर उसे देखती रही। फिर उसे चाट गई !

(३)

बादशाह शाम की हवाखोरी को मज़र-बाग में टहल रहे थे। दो-तीन खोजे घबराये हुए आये, और चिट्ठी पेश करके अर्ज की—
“हुज़ूर, ग़ज़ब हो गया ! सलीमा बीबी ने ज़हर खा लिया है, और बे मर रही हैं।”

क्षण भर में बादशाह ने खत पढ़ लिया। भपटे हुए सलीमा के महल में पहुँचे। प्यारी बुलहिन सलीमा ज़मीन में पड़ी है। आँखें ललाट पर चढ़ गई हैं। रंग कोयले के समान हो गया है। बादशाह से रहा न गया। उन्होंने घबराकर कहा—“हकीम, हकीम को बुलाओ !” कई आवामी दौड़े।

बादशाह का शब्द सुनकर सलीमा ने उनकी तरफ़ देखा, और धीरे स्वर में कहा—“जहे किस्मत !”

बादशाह ने मज़दीक बैठकर कहा—“सलीमा ! बादशाह की बेगम होकर क्या तुम्हें यही लाजिम था ?”

सलीमा ने कष्ट से कहा—“हुज़ूर, मेरा कुसूर बहुत मामूली था।”

बादशाह ने कड़े स्वर में कहा—“बदनसीब ! शाही ज़मानेजाने में मर्द को भेष बदलकर रखना, मामूली कुसूर समझती है ? कानों पर यक़ीन कभी न करता; मगर आँखों देखे को भी झूठ मान लूँ ?”

जैसे हजारों बिच्छूओं के एक साथ डंक मारने से आदमी तड़पता है, उसी तरह तड़पकर सलीमा ने कहा—“क्या ?”

बादशाह डरकर पीछे हट गये। उन्होंने कहा—“सच कहो, इस वक्त तुम खुदा की राह पर हो, यह जवान कौन था ?”

सलीमा ने अकचकाकर पूछा—“कौन जवान ?”

बादशाह ने गुस्से से कहा—“जिसे तुमने साक़ी बनाकर पास रक्खा था ?”

सलीमा ने घबराकर कहा—“हैं ! क्या वह मद है ?”

बादशाह—“तो क्या तुम सचमुच यह बात नहीं जानती ?”

सलीमा के मुँह से निकला—“या खुदा !”

फिर उसके नेत्रों से आँसू बहने लगे। वह सब मामला समझ गई। कुछ देर बाद बोली—“लाविन्द ! तब तो कुछ शिकायत ही नहीं; इस क्रूसूर की तो यही सज़ा मुनासिब थी। मेरी बदगुमानी माफ़ फ़रमाई जाय। मैं अल्लाह के नाम पर पड़ी कहती हूँ, मुझे इस बात का कुछ भी पता नहीं है।”

बादशाह का गला भर आया। उन्होंने कहा—“तो प्यारी सलीमा ! तुम बेक्रूसूर ही चलीं ?” बादशाह रोने लगे।

सलीमा ने उनका हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखकर कहा—“मालिक मेरे ! जिसकी उम्मीद न थी, मरते वक्त वह मज़ा मिल गया। कहा-मुना माफ़ हो, और एक अर्ज लौंडी की मंज़ूर हो।”

बादशाह ने कहा—“जल्दी कहो सलीमा !”

सलीमा ने साहस से कहा—“उस जवान को माफ़ कर देना।”

इसके बाद सलीमा की आँखों से आँसू बह चले और थोड़ी ही देर में वह ठंडी हो गई !

बादशाह ने घुटनों के बल बैठकर उसका ललाट चूमा और फिर बालक की तरह रोने लगे।

गजब के अँधेरे और सदी में युवक भूखा-प्यासा पड़ा था। एकाएक धीरे चीत्कार करके किवाड़े खले। प्रकाश के साथ ही एक गम्भीर शब्द तहखाने में भर गया—“बदनसीब नौजवान! क्या होश-हवास में है?”

युवक ने तीव्र स्वर में पूछा—“कौन?”

जवाब मिला—“बादशाह।”

युवक ने कुछ भी अदब किये बिना कहा—“यह जगह बादशाहों के लायक नहीं है—क्यों तशरीफ़ लाये हैं?”

“तुम्हारी कैफ़ियत नहीं सुनी थी, उसे सुनने आया हूँ।”

कुछ देर चुप रहकर युवक ने कहा—“सिर्फ़ सलीमा की भूठी बदनामी से बचाने के लिए कहता हूँ, सुनिए—सलीमा जब बच्ची थी, मैं उसके बाप का नौकर था। तभी से मैं उसे प्यार करता था। सलीमा भी प्यार करती थी; पर वह बचपन का प्यार था। उम्र होने पर सलीमा परदे में रहने लगी, और फिर वह शाहंशाह की बेगम हुई। मगर मैं उसे भूल न सका। पाँच साल तक पागल की तरह भटकता रहा। अन्त में भेष बदलकर, बाँदी की नौकरी कर ली। सिर्फ़ उसे देखते रहने और त्सदमत करके दिन गुज़ार देने का इरादा था। उस दिन उज्ज्वल चाँदनी, सुगन्धित पुष्पराशि, शराब की उत्तेजना और एकान्त ने मुझे बेबस कर दिया। उसके बाद मैंने आँचल से उसके मुख का पसीना पोंछा और मँह चूम लिया। मैं इतना ही ख़तावार हूँ। सलीमा इसकी बाज़त कुछ नहीं जानती।”

बादशाह कुछ देर चुपचाप खड़े रहे। इसके बाद वे बिना ही दरवाज़ा बन्द किये, धीरे-धीरे चले गये।

सलीमा की मृत्यु की दस दिन बीत गये। बादशाह सलीमा के कमरे में ही दिन-रात रहते हैं। सामने नदी के उस पार, पेड़ों के झुरमुट

में, सलीमा की सफ़ेद क़ब्र बनी है। जिस खिड़की के पास सलीमा बैठी उस रात को बादशाह की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी खिड़की में, उसी खीकी पर बैठे हुए, बादशाह, उसी तरह, सलीमा की क़ब्र दिन-रात देखा करते हैं" किसी को पास आने का हुक्म नहीं। जब आधी रात हो जाती है, तो उस गम्भीर रात्रि के सन्नाटे में एक मर्म-भेदिनी गीत-ध्वनि उठ खड़ी होती है। बादशाह साफ़-साफ़ सुनते हैं; कोई कण-कोमल स्वर में गा रहा है—

“दुखबा में कासे कहूँ मोरी सजनी?”



७—एक घंटा

[श्री. रघुमलाल दुजालाल चम्पशी]

मन'ओं का ज्ञान-क्षेत्र कितना संकुचित है ! संसार की बातें तो जानना दूर रहा, हम अपने ही जीवन की ही बातें नहीं जानते। यदि हम अपने जीवन की ही सब बातें जान लें, तो हम आश्चर्य से मुग्ध हो जायें। कितनी घटनायें अलक्षित रूप से आती हैं और चली जाती हैं। उनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। प्रातःकालीन समीर की तरह वे हमको अज्ञानावस्था में थपकी देकर चली जाती हैं। यह अज्ञान हमारे लिए अच्छा ही है। यदि हम में परोक्ष बातें जान लेने की दिव्य शक्ति हो जाय, तो हम क्षण भर के लिए भी निश्चिन्त न बैठ सकें। सम्पत्ति और विपत्ति का उत्थान-पतन देखते ही देखते हम घबड़ा जायें। रघुमाथ के जीवन के एक ही घंटे में कितनी बातें हो गईं, उन्हे वह खबर नहीं जानता। यदि वह जान सकता, तो न जाने उसकी क्या दशा होती।

रघुमाथ, ब्राह्मण का पुत्र, अल्प-शिक्षित अतएव दरिद्रता से ग्रस्त था। बीस वर्ष की अवस्था में वह बिलकुल निराधार हो गया। शरीर हृष्ट-पुष्ट; गौर-वर्ण मुख-मण्डल पर ग्राम्य-जीवन-सुलभ सरलता खेलती थी। गांव में जीवन-निर्वाह का उपाय न देखकर, उसने राजनांदगांव जाना निश्चय कर लिया। राजनांदगांव व्यापार का केन्द्र हो गया है। वहाँ परिश्रमी लोगों के लिए जीविका का अभाव नहीं है। उसका मामा भी वहीं रहता है। यह सोचकर एक दिन उसने घर की सब चीजें बेचकर एक सौ रुपये एकत्र किये। दो-चार कपड़े और कुछ ऐसी ही आवश्यक चीजों की एक गठरी बनाकर, वह घर से बाहर निकल पड़ा।

कुआर का महीना था। आकाश शुभ्र था। पृथ्वी पर भी शुभ्रता फैली हुई थी। खेतों में किसान अपने-अपने कामों में लगे थे। धीमी-धीमी हवा बह रही थी। खेतों में काम करती हुई, कुछ स्त्रियाँ गा रही थीं,—“अगम पहाड़ बन भीहड़ बटोहिया, मोहि छाड चले कहाँ

भाज रे बटोहिया।' जन्म-भूमि को छोड़ते हुए रघुनाथ के लिए यह विप्रोद-गान बहुत ही व्यथा-जनक था। उसने पीछे लौटकर एक बार अपने गाँव की ओर दृष्टि-पात किया। पर गाँव हरे-भरे झाड़ों से बिलकूल छिप गया था। अनन्त आकाश में जाकर विलीन होनेवाली एक धूस्र-रेखा ही। दबलाई पड़ती थी। एक दार्ढ्य निःश्वास लेकर रघुनाथ आगे बढ़ा।

दो-तीन घंटे तक चलने के बाद रघुनाथ कुछ थक गया। धप भी कड़ी हो गई। रघुनाथ किसी तरह आगे बढ़ रहा था। पैदल चलने का उसे अभ्यास नहीं था। कुछ देर के बाद सूर्य की किरणें असह्य हो गईं। रघुनाथ बिलकुल थक गया। सड़क के किनारे दो-चार आम के पेड़ लगे हुए थे। उन्हीं की छाया में वह चला गया। नाला बह रहा था, पानी पीकर वहीं लेट गया। सोचा, इधर से कोई बेलगाड़ी निकलेगी, तो उसी पर बैठकर चला जाऊँगा। थका तो था ही, लेटते ही उसे नींद आगई।

जब रघुनाथ निद्रित था, ससार जाग्रत था। बाह्य जगत् पर उसकी दृष्टि नहीं, पर उस पर जगत् की दृष्टि थी। कितने लोग उस पथ पर से आये और गये; कोई घोड़े पर, कोई गाड़ी पर और कोई पैदल ही। एक बार एक मोटर-गाड़ी भी धड़-धड़ करती निकल गई। किसी ने उस पर दृष्टि-पात भी नहीं किया। किसी ने उसे देखकर भी नहीं देखा। कोई उसे शराबी समझकर, अपन साथी में शराबियों की दुर्गति का हाल बतलाता चला गया। कोई उसे दुर्भिक्ष-पीड़ित दरिद्र समझकर, वर्तमान काल की दशा पर टीका-टिप्पणी करने लगा। यो हो न जान कितने लोग आये और गये, पर रघुनाथ उनकी निन्दा और सहानुभूति को समदृष्टि से सहता हुआ निद्रिचन्त सोता रहा।

थोड़ी देर के बाद एक टॉगा आकर खड़ा हुआ। उसके चक्के की एक कील टूटकर भिर पड़ा थी। उसमें से दो स्त्री-पुरुष उतरे। दोनों की वृद्धावस्था थी। पुरुष की अवस्था लगभग साठ वर्ष की थी और स्त्री

की कोई पचास वर्ष की। जब तक कोचवान गाड़ी का चक्का सुधारने लगा, तब तक दोनों वहीं टहलने लगे। इतने में रघुनाथ पर उनकी दृष्टि पड़ी। स्त्री ने कहा—देखो तो, यह कैसा सुन्दर लड़का सो रहा है!

वृद्ध ने कहा—कैसी अच्छी नींद सो रहा है। मेरे भाग्य में ऐसी नींद कहाँ?

स्त्री—उठाऊँ?

पुरुष—मत उठाओ। बेचारा थका-माँदा सो रहा है।

स्त्री—कोई गरीब लड़का है। कितना सुन्दर है! ब्राह्मण का लड़का जान पड़ता है। इसे देखकर मुझे अपने मोहन की सुधि आ जाती है। यह कहकर स्त्री ने एक दीर्घ निःश्वास लिया।

वृद्ध ने कहा—जाने दो, न जाने किसका लड़का है।

स्त्री—जान पड़ता है, बेचारे का कोई नहीं। नहीं तो वह सड़क पर क्यों सोता? सुनो, मुझे यह लड़का बड़ा अच्छा लगता है। तुम एक लड़का गोद लेना चाहते हो। इसे ही क्यों नहीं ले लेते? कहो तो इसे उठाऊँ?

भाग्य-लक्ष्मी रघुनाथ पर हँस रही थी, पर वह चुप पड़ा हुआ था। यदि वह जाग जाता तो कदाचित् वृद्ध उसे अपने साथ लिवा ले जाता, क्योंकि वह भी उसकी ओर स्नेहाद्रि दृष्टि से देख रहा था।

वह वृद्ध ब्राह्मण राजनांदगाँव के व्यवसायियों में सबसे धनी था। पर रघुनाथ निःश्चिन्त सोता था। उसी समय कोचवान ने आकर कहा—गाड़ी ठीक हो गई है।

दोनों गाड़ी पर बैठकर रवाना हो गये।

इसके बाद दो आदमी आकर वहीं बैठ गये और बातचीत करने लगे।

एक ने कहा—बड़ी मुश्किल से जान बची। कानिस्टबिल ने देख लिया था। वह बड़ा चालाक है।

दूसरे ने कहा—तुम तो बड़ा भद्दा काम करते हो। ज़रा सावधान रहते तो अभी एक हजार हाथ आते।

एक--(रघुनाथ की ओर देखकर) अरे यह कौन सो रहा है ?

दूसरा--कोई मुसाफिर होगा।

एक--यार, इसकी कमर में तो कुछ है।

दूसरा--सच कहते हो, पचास रुपये से कम न होंगे। अच्छा माल मिला। देखो, कोई आता तो नहीं है ?

पहला--(इधर-उधर देखकर) नहीं, कोई नहीं आ रहा है।

दूसरा--देखो, मैं छुरा निकालकर इसकी गर्दन के पास रखता हूँ। तुम चुपचाप इसकी कमर से रुपये निकाल लो। अगर यह जाग गया तो मैं इसे खत्म ही कर दूंगा।

पहला--अच्छा।

रघुनाथ के लिए यह समय बहुत ही भीषण था। उसके प्राण संकट में थे। पर वह निश्चित सो रहा था।

पहले आदमी ने छुरा निकाला ही था कि किसी के पैरों की आवाज आई। दोनों चुपचाप भाग गये और वहाँ एक लड़की आई। लड़की चौदह-पन्द्रह साल की रही होगी। रघुनाथ को देखकर वह लज्जा से खड़ी हो गई। इधर-उधर देखने लगी। कोई नहीं था। लड़की ने मन ही मन भगवान् से प्रार्थना की कि इसी के साथ मेरा विवाह हो। पर कुछ कह न सकी, क्योंकि अभी खड़-खड़ करती हुई एक गाड़ी आई। लड़की चुपचाप हट गई। गाड़ीवान ने रघुनाथ को सोते देखकर पुकारा--अरे, कौन सोता है ?

रघुनाथ की नींद पूरी हो गई थी। गाड़ीवान की आवाज से वह जाग पड़ा। आँखें खोलते ही गाड़ीवान को देखा। उसने पूछा--क्यों भाई, कहाँ जाते हो ?

गाड़ीवान ने कहा--राजनाँदगाँव।

रघुनाथ ने कहा--भाई, चार आने देंगे। हमें भी के चलोगे ?

गाड़ीवान ने कहा--चलो।

रघुनाथ निश्चित होकर गाड़ी में बैठ गया।

८—गंगा, गंगदत्त और गंगी

[भी पाण्डेय बेंचम शमा 'उग्र']

गंगा...

महात्मा वेदव्यास जी ने महाभारत में लिखा है—गंगापुत्र भीष्म के पिता श्री शान्तनु महाराज को देखते ही बूढ़ा प्राणी जवान हो जाता था।

मगर, मैं भूल कर रहा हूँ। वह भीष्म के पिता जी नहीं, दादा जी थे, जिनमें उबत गुणों का आरोप महाभारतकार ने किया है।

एक बार भीष्म पितामह के पितामह जी सुरसरि-तट पर, गंगा-तरंग-हिम-शीतल शिलाखण्ड पर विराजमान भगवान् के ध्यान, तप या योग में निरत थे। काफी वय हो जाने पर भी वह तेजस्वी थे—बली—विशाल बाहु। ललाट उज्ज्वल और उन्नत, आँखें बड़ी और कमलवत्। वह सुथी, दर्शनीय थे !

गंगा के मानस पर उनकी अद्भुत छवि ज्योंही प्रतिकलित हुई, जीवन-तरंगे लहराने लगीं। भीष्म के दादा जी पर सुग्ध हो नवयुवती सुन्दरी का रूप धर गंगा प्रकट ही तो हुई। ध्यानावस्थित राजर्षि की दाहिनी पलथी पर वह महाउन्मत्त हो जा बैठी।

चमक कर नेत्र खोलते ही तप में बाधा की तरह अपने आधे अंग पर गंगा को मौजें मारते दादा जी ने देखा।

‘कौन... औरत...?’ गम्भीर स्वर से प्रश्न हुआ।

‘जी, मैं गंगा हूँ, महाराज ! आपके दिव्य-रूप को देखते ही—चन्द्र पर चक्री की तरह—मैं पागल हो उठी हूँ। अब मैं आपकी हूँ—हर तरह से।’

लज्जा से अनुरंजित हो गंगा ने अपनी गोरी बाहें भीष्म के दादा के सुकंठ की ओर बढ़ा दीं।

‘मगर, सुन्दरी....! मैं नीतिज्ञ हूँ, विज्ञ हूँ....।’

‘तो, क्या हुआ महाराज ! मैं भी दिव्य हूँ, पवित्र हूँ।’

गंगे ! —दादा जी ने सतेज जवाब दिया—तुम एकाएक मेरी दाहिनी जाँघ पर आ बैठीं, जो बेटा या बहू के बैठने का स्थान है। अब तुम्हें पत्नी रूप में स्वीकार करने से सनातनी आर्य-मर्यादा भंग हो जायगी। मर्यादा—अपनी चाल—टूटने से कुल विनष्ट हो जाता है। कुल के विनाश से पितरों को घोर नरक-यातना होती है, जिससे मनुष्य का सर्वनाश हो जाता है।

क्षत्रिय राजर्षि का तर्क उचित और मान्य—गंगा मारे लाज के पृथ्वी में डूबती नज़र आने लगीं। हताश हो, सूखी-सी, वह दादा जी की गोद से नीचे सरक रहीं।

और गंगा-सी पवित्र, दर्शनीया रमणी को लज्जित और निराश करने का क्षत्रिय महाराज के मन में घोर खेद हुआ।

महाराज ! —सजल गंगा बोलीं—देव विधानानुसार मैं माता बनना चाहती हूँ, इसी हेतु से तपोपूत, कुलीन जानकर आपकी सेवा में आई। लेकिन आपने तो मुझको बेटा बना दिया !

‘निराश न हो गंगे ! कभी अवसर मिले तो मेरे पुत्र शान्तनु से तुम अपनी इच्छा प्रकट कर सकती हो। मुझे इसमें ज़रा भी आपत्ति न होगी। बल्कि तुम सी दिव्य वधू पाकर मेरी सात पीढ़ियाँ तर जायेंगी।’

महाराज की जय हो ! —गम्भीर वाणी से गंगा ने भीष्म के दादा को आशीर्वाद दिया—देवताओं का अभिप्राय पूरा हुआ। अब मैं देवव्रत की माता बन सकूंगी। आर्य ! आपके सद्ध्यवहार और सदाचार से सन्तुष्ट हो मैं आपको अक्षय यौवन का वरदान देती हूँ। आज से, आपके दर्शन करते ही, बूढ़ा से बूढ़ा प्राणी भी फ़ौरन नवयुवक हो जायगा।

राजर्षि को आश्चर्य-चकित छोड़ गंगा, अपनी ही लहरों में लीन हो गई ।

गंगदत्त....

उन्हीं दिनों पंडित गंगदत्त शर्मा नाम के एक मूर्ख विद्वान् इन्द्रप्रस्थ महानगर के निकटस्थ किसी ग्राम में रहा करते थे । पंडित जी को मूर्ख विद्वान् लिखने में कलम की कोई भूल नहीं । क्योंकि दुनिया में बहुत ऐसे प्राणी हैं जो अक्ल रखते हुए भी बेवकूफी करते हैं । पंडित गंगदत्त शर्मा वैसे लोगों के पुराण-कालीन अगुआ थे, इसमें ज़रा भी शकोशुबह की गुञ्जायश नहीं है ।

भीष्म पितामह के दादा जी की तरह पंडित गंगदत्त जी भी दादा-स्वरूप हो गये थे, मगर, गंगा के तट पर पद्मासनासीन योग नहीं, घोर भोग-विलास की वासना उनके मन में अब भी लहरा रही थी !

पंडित जी के ५५ लड़के थे और ५२ लड़कियाँ । वह उन सबके नाम कहाँ तक याद रखते । अतः १०७ मनकों की एक माला उन्होंने तैयार कराई और प्रत्येक दाने पर एक-एक नाम खुदा लिया । ५५ लड़के, ५२ लड़कियों का जोड़ १०७ ।

पंडित गंगदत्त ने सोचा, दो दाने और होने से सुमेर के साथ पूरी माला तैयार हो जायगी । मगर अब ! गंगदत्त जी का शरीर शिथिल था । मन ही का कुनमुनाना नहीं सकता था अतः.. .

गांगी !—अपनी धर्मपत्नी को सम्बोधित कर गंगदत्त जी बोले—
सुन्दरी ! दो बच्चों के अभाव से माला अधूरी रहती है । यदि तू कृपा करे..... !

चुप रहो !—स्त्री-सुलभ लज्जा से लाल और पति की पुरुष-दुर्लभ निर्लज्जता से पीली पड़कर गांगी बोली—पौने दो सौ सालों से विलास करते आ रहे हो, और अब भी दो मनके बाक़ी हैं ! हाथ हिलने लगे—बयार में झोपड़ी से लटकते तिनके की तरह, देह झूलने लगी—रसोई घर की छान के झाले की तरह, इन्द्रियाँ पड़ गई हैं शिथिल ! नाक से

पानी, आँख में पानी—कमर गई है झुक। लेकिन दो मनकों की अभी कमी है ! महाराज ! अब तो राम-राम !

शान्त सुन्दरी !—अपनी १५० वर्ष की पत्नी के पपोले गालों को धोधा-सा मुँह बनाकर स्पर्श करते हुए गंगदत्त जी ने कहा—राम-राम नहीं, मैं 'शिव-शिव' का उपासक हूँ। और भगवान् शंकर ऐसे दयालु हैं कि भक्त को माँगते ही—मति गति सम्पति भूति बढ़ाई—फ़ौरन सौंप देते हैं। मुझसे और भोला बाबा से मित्रता भी है। तुम ज़रा क्षमा करो—मुझे तप कर आने दो ! दो ही क्या सौ-सौ दाने बनाने की योग्यता—यौवन, सदाशिव से मैं वरदान माँग लाऊँ। जानती हो, तप से आर्यो के लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं।

धिक ! ब्राह्मण !—ब्राह्मणी ने सच कहा—आर्यावर्त में रहते हुए भी आप बिजानी नहीं, ज्ञानी नहीं, कोरे अज्ञानी हैं ! आपके पुत्र हैं, पुत्रियाँ हैं और हैं पुत्र-पुत्रियों के बच्चे.... ! फिर भी शंकर ऐसे भगवान् की सन्तुष्ट कर आप लेंगे केवल यौवन ! रटनाकर से माँगना पक ! हिमालय से भर आँख धूल की कामना ! छिः ! सो बार छिः—ब्राह्मण !

तब यह माला पूरी कैसे होगी ?

गंगदत्त को ज्ञान का उतना ध्यान नहीं था। उन्हें तो माला पूरी करने की चिन्ता थी। गंगदत्त जी की मूर्खता विकारहीन थी।

'माला पूरी होगी चिता पर.... मेरे मुँह से कुभाषा न सुनिए ! मैं कहे देती हूँ—जप या तप से जवान बनकर अगर आप मेरे सामने आवेंगे तो, कह नहीं सकती, किस भाव से मैं आपका स्वागत करूँगी,

याने !—तोते-सी गोल आँखें नचाकर आश्चर्य से गंगदत्त ने पूछा—मैं जवान हो जाऊँगा तो मुझे देखते ही तुम अहिंसा धर्म से विरत हो उठोगी ?

'मुझे विरत या निरत कुछ भी न होना होगा। सारी गृहस्थी की

में मालकिन हैं। ये १०७ बच्चे मेरे हैं। आपके जवान होने पर घर की जो परिस्थिति होगी उसे काल ही जानता होगा।'

गंगदत्त जी ! ओ पंडित गंगदत्त जी !—बाहर से किसी ने पुकारा।
कौन ? आवाज तो ब्राह्मण मोहदत्त की मालूम पड़ती है। सुन्दरी !
—बुढ़ी से गंगदत्त जी ने कहा—जरा एक आसन तो लाओ। मेरा मित्र, ब्राह्मण मोहदत्त, इन्द्रप्रस्थ से आया है.....!

तब तक एक निहायत जवान और गठीला, तेजस्वी ब्राह्मण कृटी के आँगन में आ धमका।

हा हा हा ! गंगदत्त ! बूढ़े !—आगन्तुक ने कहा—तुमने मुझे पहचाना नहीं ! हा हा हा हा ! मैं इन्द्रप्रस्थ के तपस्वी सम्राट् के दर्शन-मात्र से जवान हो गया ! हा हा हा हा !

क्या ?—आँखें फाड़-फाड़कर गठीले ब्राह्मण को गंगदत्त ने देखा, पहचाना, था वह मोहदत्त ही !

क्या ?—ब्राह्मणी बेचारी कुछ समझ ही न सकी—तपस्वी राजा के दर्शनों से बूढ़ा मोहदत्त जवान हो गया ? अब तो मेरा ब्राह्मण—यह आतुर मर्द बिना जवान बने शायद ही रहे ! तो क्या जवानी बाँछनीय है ? तो क्या राजा के दर्शन तथा यौवन-लाभ कोई सबूलाभ है ?—ब्राह्मणी व्याकुल विचारने लगी।

और गांगी नाम से पाठक यों न समझें कि द्वापर युग की वह ब्राह्मणी मूर्ख थी। नहीं, वह बिडुषी थी, पूरी। ब्राह्मणी का घर का नाम था मनोरमा, मगर, पंडित गंगदत्त ने उसको बदलकर गांगी इसलिए कर दिया था कि अर्द्धाङ्गिनी का नाम भी अगर पति ही की तरह हो तो परम उत्तम ! खैर.....

अरे मोहा...!—गंगदत्त ने पूछा—तू जवान कैसे हो गया ! परसों तक तो तेरी गति थी—'अंग गलितं पलितं मुण्डम्' और आज ! क्या एक ही रात में तूने भगवान् शंकर को प्रसन्न कर लिया.....? पा...क्या ?

भाई गंगदत्त !—मोहदत्त ने समझाया—देर न करो ! बुढ़ापे में एक क्षण भी काटना नरकवास है । ब्राह्मणी को संग लो और चलो मेरे साथ इन्द्रप्रस्थ ! महाराज के दर्शन कर मुक्त हो जाओ जरा के जाल से ।

हाँ, हाँ !—आतुर गंगदत्त ने ब्राह्मणी की ओर देखते हुए कहा—चलो प्रिये ! रथ भी मेरा मित्र मोहदत्त लेता आया है । जो वक्त पर काम आवे वही मित्र । वाह भाई मोहदत्त ! आज यह संवाद, ऐसी सविच्छा से यहाँ लाकर तुमने हमें कृतार्थ कर दिया ! चलो देर न करो !—ब्राह्मणी को उन्होंने पुनः ललकारा ।

मगर, वह आर्या टस से मस न हुई...

‘जवानी ऐसी नारकीय अवस्था के लिए मैं न तो किसी देव से वरदान माँगूंगी, न ही पर-पुरुष का मुंह ताकती फिरूंगी ।’

जवानी—नारकीय कैसे ?—स्त्री के हठ से चिढ़कर गंगदत्त ने पूछा ।

‘इसे मैं जानती हूँ । १०७ बार माता बनने में जो नारकीय कष्ट मुझे भोगने पड़े, वे क्यों ? इसी जवानी के लिए । बचपन में अज्ञान है, बुढ़ापे में ज्ञान मगर, इस जवानी में ज्ञानाज्ञान का ऐसा गोरखधन्धा है जिसमें पड़कर धोका खाये बिना शायद ही कोई बचा हो । ज्ञान ही की तरह, मैं तो, शुद्ध अज्ञान को भी दिव्य मानती हूँ । मगर, भ्रम से हँ मुझे घृणा । और भ्रम ही में जवानी सबकी मचलती चलती है ।’

‘यौवन ऐसी देव-दुर्लभ अवस्था को यह मूर्खा ब्राह्मणी भ्रम और नरक का फाटक कह रही है ! देखने हो मोहदत्त..स्त्रीबुद्धिःप्रलयंकरी !’

अच्छा, इन्हें बूढ़ी ही रहने दीजिए !—मोहदत्त ने मित्र को राय दी—आप तो चलकर महाराज के दर्शन प्राप्त कीजिए और प्राप्त कीजिए अप्राप्य यौवन—अनायास ! मेरे कहने का अभिप्राय यह कि जो चीज अनायास मिले उसे ग्रहण कर भोग लेने में ब्राह्मण के लिए शास्त्रानुसार भी कोई दोष नहीं ।

धमा, आर्य मोहदत्त जी !—नम्रता से ब्राह्मणी ने व्यंग्य किया—
अनायास अगर मैला मिल जाय, तो क्या ब्राह्मण उसका शास्त्रानुसार
भोग करेगा ? अ—हँ ! आप दोनों सज्जन मेरे तर्क पर नाक फुला रहे
हैं। मैं सच कहती हूँ—और ब्राह्मणी सच ही कहती है—यौवन मानव
जीवन का मैला है।

अरी मूर्खा ! क्रोध मुझे न दिला... !—बिगड़े अब पंडित गंगदत्त
जी—चरक भगवान् ने लिखा है कि मैला पेट में न रहे तो आदमी जी
नहीं सकता ! मनुष्य के अंग-अंग से, रोम-रोम से, क्या प्रकट होता
है ?—मैला ! इस मैले संसार में वही मोटा नजर आवेगा जो पुष्ट हो,
जिसमें मैला ज्यादा हो। यौवन ? हाँ, है मैला। वह, जिसकी सफ़ाई
होते ही मनुष्य-जीवन की भी सफ़ाई हो जाती है—चौका लग जाता है।
मैले का महत्त्व तुमको समझना होगा नारी...।”

इसके बाद मोहदत्त से, दुखितभावेन गंगदत्त ने कहा—जाओ भाई !
मैं इस औरत के वश में हूँ। बिना अर्द्धाङ्गिनी की इच्छा—कोई भी
काम शास्त्र के मत से मैं नहीं कर सकता। चलो बाहर। इस कुटी की
बायु में मुझे जरा और मरण भयंकर नजर आ रहे हैं।

कुटी के बाहर आते ही मोहदत्त ने देखा, उनके रथ को घेरकर
कोई सौ-सवा सौ नर-नारियों की भीड़ खड़ी है। कुछ साफ़ न समझ
उन्होंने गंगदत्त से पूछा—क्यों ? क्या ये लोग आपके दर्शनार्थ आये हैं—
या शिष्य हैं, कि यजमान ?

अरे बाह !—गंगदत्त ने मुंह पसारकर उत्तर दिया—ब्राह्मण !
तुम मेरे परिवार को भूल गये ? मैं कुल मिलाकर १०७ आदमियों का
पिता हूँ। ये सब मेरे बच्चे ! आपके रथ की कलात्मयी कारीगरी देख
रहे हैं।

‘हा हा हा ! भाई गंगदत्त ! पहली जवानी में जब तुमने इतनी
सृष्टि रच दी तो एक बार और जवान होने से तुम्हारा नाम प्रजापति
वक्ष (द्वितीय) मशहूर होगा।’

यह बुड्ढी ब्राह्मणी माने तब तो। मैं तो प्रजापति को भी, सृष्टि में क्रान्ति बिखा दूँ—मगर, मेरी औरत, जरूठ होने से, बुद्धिहीन हो गई ! दुखकातर गंगदत्त ने उत्तर दिया। वह मुँह में पानी भरकर अपने मित्र का नवयौवन निहारने लगे। तब तक, दोनों, रथ के निकट आ रहे। भीड़ छूट गई।

बाह !—रथ के सफ़ेद घोड़ों की तारीफ़ करते हुए गंगदत्त ने कहा—
मोहदत्त ! घोड़े तो बड़े बाँके हैं।

घोड़े मैंने श्वेत द्वीप से मँगाये हैं। मुझे रथ का बड़ा शौक है।—
मस्त मोहदत्त ने रास सँभाली—वह बँट भी गया रथ पर—आओ गंगदत्त मित्र ! इन्द्रप्रस्थ से होते आओ ! औरत के फेर में स्वर्गलाभ से वंचित न हो !

हाँ !—उछलकर आतुर और बड़ा ब्राह्मण अब अपने मित्र के पादों में डट गया—सारथी का काम औश्रम में मैंने भी सीखा है—ये घोड़े-बाह ! रास जरा मुझे तो देना—!

और गंगदत्त ने मोहदत्त के रथ के बाँके घोड़ों को इशारा किया। और क्षण भर बाद, दोनों मित्र, इन्द्रप्रस्थ की ओर सनकते नज़र आने लगे।

कोई ज्यादा दूर जाना तो था नहीं। शाम होने से पहले ही राजधानी में मोहदत्त का रथ गंगदत्त हाँकते दिखाई पड़े।

याने, मनोरथ उन्होंने अपना पूरा किया अविलम्ब दर्शन लाभ कर महाराज्य के, जिन्हें अनन्त यौवन का वरदान गंगा ने दिया था !

और लो, ब्राह्मण गंगदत्त भी मोहदत्त की तरह पूर्ण नव-यौवन पा गये।

यौवन पाते ही गंगदत्त ने अपने मित्र का साथ छोड़ दिया और छोड़ दिया स्वार्थपूर्ण उजलत से ! उन्हें बड़ी इच्छा हुई पहले वर्षण में मुँह देखने की। मगर, वहाँ वर्षण कहाँ। इन्द्रप्रस्थ के बाज़ार में बिकते होंगे बीसियों, लेकिन पैसे—? ब्राह्मण के पास पैसे कहाँ ! गंगदत्त ने

सोचा—तो किसी तालाब के पानी में मुंह देखना चाहिए। मगर, रात का ध्यान आते ही यह विचार भी छोड़ देना पड़ा।

नवयुवक ब्राह्मण गंगदत्त जी रात अधिक बीत जावे तक राजधानी की सड़कों पर चक्कर काटते रहे। मगर, आइना पाने की सूरत उन्हें न दिखाई पड़ी। आखिर, हताश हो, ज्योंही वे अपनी कुटी की ओर लौटना चाहते थे त्योंही, नर्तकी रामा के घर की ओर उनकी नजर गई।

रामा अपनी रमणीक बेंटक में बंठी (प्राचीन चीन के) दर्पण में मुंह देख रही थी। कंचन की चौकी पर रत्न का एक दीपक पास ही जल रहा था।

ब्राह्मण ने विचार किया—यदि किसी तरह इस नर्तकी के दर्पण में मैं अपना मुंह देख पाता !

आखिर, आतुर गंगदत्त जी, बिबेकहीन हो, दधे पाँव, नर्तकी के पीछे जा खड़े हुए और चोरों की तरह उन्होंने दर्पण में झाँका।

‘अहो ! अहो ! धन्य ! धन्य !’—अपना नवरूप देखते ही गंगदत्त पागलों की तरह प्रसन्नता से नाच और चिल्ला उठे।

नर्तकी रामा चौंककर मारे भय के घिघियाये लगी—बच्चाओ ! चोर ! उचक्का !

संकड़ों नागरिक जुट गये और ब्राह्मण बिकल यज्ञोपवीत दिखाकर ही, पिटते-पिटते बचा !

कुटी की ओर लौटते हुए गंगदत्त ने सोचा—बेशक मैं जबान हो गया। क्योंकि, जबानी की पहली निशानी—अबिबेक—मुझमें प्रकट हो गई ! नर्तकी के दर्पण में मैंने अपना मुंह देखा आतुर होकर—बच्चा पीठपूजा पाते-पाते ! वाह !

बाह !—नवब्राह्मण ने सोचा—वेदया वह युवती... ? मेरी पत्नी भी अगर महाराज के दर्शन कर ले, तो वह भी इसी वेदया—सी नवेली—अह !—गंगदत्त का प्राचीन उच्छृङ्खल होने से पुनः बिचका—मैं...

ब्राह्मण अपनी पत्नी की समता वेदया के यौवन से ! है न अविवेक ?
वाह ! अब मैं जवान हो गया—बेशक !

और गंगदत्त का पूरा कुल एक ही जगह पर बसा हुआ था—उनकी कुटी के चौगिर्द । अधिक रात हो जाने के कारण सभी सो गये थे । ब्राह्मणों के घृत के दीपक भी बुझ चुके थे । ऐसे अवसर पर गंगदत्त चुपचाप अपनी भोपड़ी में घुसे ।

कौन... ?—सजग ब्राह्मणी ने खाँसकर पूछा ।

मैं हूँ... सुन्दरी !—निर्भय और प्रसन्न गंगदत्त ने कहा ।

पति की आवाज पहचानते ही ब्राह्मणी ने अग्निहोत्र की आग से दीपक प्रज्वलित किया और देखा ।

अरे, ज्ञानदत्त ! पुत्र !—देखते ही ब्राह्मणी बिगड़ी—पापी ! इस रात मैं अपनी माता को तू 'सुन्दरी' पुकारने यहाँ आया है ? क्या तूने आज सुरा पी है ? निकल ! तेरी कुटी उधर है... हायरे मेरा ब्राह्मण रथ पर चढ़कर कहाँ चला गया ?

मैं—मैं ही हूँ वह ब्राह्मण तुम्हारा सुन्दरी !—गंगदत्त ने पुनः समझाना चाहा—मैं जवान हो गया हूँ—राजर्षि के दर्शन कर । डरो मत ! भागो भी मत ! मैं तुम्हारा पति हूँ ।

बापरे ! दौड़ो रे !—ब्राह्मणी अधिक अपमान न सह सकी—बच्चाओ ! मेरा पुत्र पागल हो गया है ?

और सारा कुल—अंधेरी रात में उल्कायें हाथों में लिये—कुटी के चारों ओर इकट्ठा हो गया ।

भारी कोलाहल मचा—कौन लड़का है ? कौन ऐसा नालायक है ? मारो ! इसकी हत्या कर दो ! सभी झपटे अपने बेचारे ब्राह्मण बाप पर, उसके कायाकल्प से अज्ञान ।

अब गंगदत्त बड़े फेर में पड़े । किसी को उनकी बात पर एतबार ही न आया । उन्हीं के अनेक लड़के इस वक्त देखने में गंगदत्त जी के चचा मालूम पड़ते थे !

गंगदत्त जी ने एक-एक का नाम लेकर परिचय दिया। बहुत-सी घरेलू बातें बताईं। यहाँ तक कि सारे कुल को उन्होंने अपने पीछे का एक धब्बा भी खोलकर दिखाया—मगर, फिर भी किसी ने विश्वास न किया।

तब, मारे भुंभलाहट, खीझ और लाचारी के नौजवान गंगदत्त ब्राह्मण बालकों की तरह रो पड़े।

‘हायरे! जवानी लेकर मैंने कहाँ का पाप खरीदा... मेरी सारी शान्ति नष्ट हो गई!’

मगर, सारा कुल इतना क्षुब्ध हो उठा कि, अगर भाग न जाते तो गंगदत्त जी की हत्या उन्हीं के परिवार के लोग उस रात में ज़रूर कर देते।

गांगी....

उक्त घटना के कई दिनों बाद तक जब पंडित गंगदत्त जी का कोई पता कुलवालों को न लगा, तब ब्राह्मणी विकल हो उठी। उसने अपने पुत्रों को राजधानी में भेजकर मोहदत्त से पता लगाया तो भेद सारा खुल गया। अब मालूम हुआ गंगदत्त के कुल को कि उस रात में जो नवयुवक पिटते-पिटते बचा उसकी बातें सच थीं। वह और कोई नहीं—पंडित गंगदत्त स्वयं थे, जो राजाधिराज के दर्शन से युवक बन गये थे।

अब तो सारे कुल में स्यापा छा गया! ब्राह्मणी दहाड़ मार-मार कर रोने लगी। पति के अपमान से जो नरक उसे परलोक में भोगना पड़ेगा उसकी कल्पना-मात्र से वह काँप-काँप उठी।

आह!—उसने सोचा—पतिदेव इसलिए भाग गये कि बूढ़ी मैं उनके योग्य नहीं, बल्कि दुख का कारण हूँ। तो...? क्या मैं भी पर-पुरुष से आँखें भिलाकर नवयुवती बनूँ और पतिदेव को सुखी करूँ, जो आर्या का परम धर्म है? मगर नहीं, पर-पुरुष की ओर मैं कदापि न देखूंगी। मैं...!—गांगी गम्भीर हो सोचने लगी—मैं तपस्विनी बनूंगी।

पति के प्रसन्नतार्थ यौवन पाने के लिए माता गौरी पार्वती की तपस्या करूँगी।

और ब्राह्मणी, दृढ़, दूसरे ही दिन, उठ, भोर, सारी मोह-माया त्याग, तप करने हिमालय चली गई।

और उसने ऐसी तपस्या की कि ऐसी तपस्विनी माता पार्वती प्रसन्न हो प्रकट हो गई। उन्होंने ब्राह्मणी को क्रौरन युवती बना दिया।

फिर भी, यह सब करते-कराते ग्यारह महीने बीत गये। ग्यारह महीने बाद, जवान सूनकर, गांगी एक रात, अपनी कुटी में लौट आई। और...

माता पार्वती के प्रसाद से, उसी रात, गांगी के पतिदेव भी पुनः भोपड़ी पर पधारे—

‘गांगी ! देवी ! लो शंकर की तपस्या कर मैं फिर से बूढ़ा बनकर आगया ! तुम बूढ़ी—मैं बूढ़ा ! प्रिये ! हममें द्वैध अब नहीं—हम एकाकार हैं ! आग लगे ऐसी कायाकल्पित नवजबानी में जिसके कारण मैं पिटते पिटते, मरते-मरते बचा—अरे... ।

इसी समय, कुटी के बाहर आती गांगी नवयौवना को गंगदत्त ने गौर से गुरेरकर ताका।

कौन ? ब्राह्मणी ? क्या तू भी राजर्षि के दर्शन कर आई ?

‘हम स्त्रियाँ माता गौरी की कृपा से नवयौवना, जीवन, तम, मन, धन, पाती हैं साजन !’

गौरी की कृपा से रसोली गांगी ने शंकर के वरदान से सूखे गंगदत्त के झिलने हिनशीतल हाथों को प्रेम से पुलकित हो अपनी मृणाल-सी बाहु में लपेट लिया।

६—श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी

[श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला']

(१)

श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी श्रीमान् पंडित गजानन्द शास्त्री की धर्मपत्नी हैं। श्रीमान् शास्त्री जी ने आपके साथ यह चौथी शादी की है, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी के पिता को षोड़शी कन्या के लिए पंचालोम साल का वर बुरा नहीं लगा, धर्म की रक्षा के लिए। बेटा का पेशा अस्थिराचार किये शास्त्री जी ने युवती पत्नी के आने के साथ 'शास्त्रिणी' का साइमबोर्ड टाँगा, धर्म की रक्षा के लिए। शास्त्रिणी जी उसनी ही उम्र में गङ्गा पालिस्य पर अधिराम लेखनी-धालन कर चलीं, धर्म की रक्षा के लिए। मुझे यह कहानी लिखनी पड़ रही है, धर्म की रक्षा के लिए।

इससे सिद्ध है, धर्म बहुत ही व्यापक है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने-वालों का कहना है कि नश्वर संसार का कोई काम धर्म के बायरे से बाहर नहीं। संतान पैदा होने के पहले से मृत्यु के बाद—पिण्डदान तक, जीवन के समस्त भविष्य, वर्तमान और भूल को व्याप्त कर धर्म ही धर्म है।

जितने देवता हैं, उन्हीं देवता हैं, इसलिए धर्मात्मा है। मन्त्र को भी देवता कहा है। ये जबानी के देवता हैं। जबानी जीवन भर का शुभ मुहूर्त है। सबसे पुष्ट, कर्मठ और तेजस्वी देवता मन्त्र, जो भस्म होकर नहीं मरे; लिहाजा यह काल और काल के देवता सबसे व्यादा सम्पन्न, कलसः क्षिप्रायें भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, धार्मिकता सिद्धे हुए। मन्त्र को कोई देवता न माने तो न माने, पर यह निश्चय है कि आज तक कोई देवता इन पर प्रभाव नहीं डाल सका। किसी धर्म, शास्त्र या अनुशासन को ये मानकर नहीं चले, बल्कि धर्म, शास्त्र और अनु-

शासन के माननेवालों ने ही इनकी अनुवर्तिता की है। यौवन को भी कोई कितना निथ कहे, चाहते सब हैं, वृद्ध सर्वस्व भी स्वाहा कर। चिह्न तक लोगों को प्रिय हैं—खिजाब की कितनी खपत है ! धातुपुष्टि की दवा राजमे ज़रादा बिकती है। साबुन, सैंट, पाउडर, श्रीम, हेज़लीन, वेसलीन, तेल, फुल्ल के लाखों कारखाने हैं और इस दरिद्र देश में। जब न थे, तब राम जी और सीता जी उबटन लगाते थे। नाम और प्रसिद्धि कितनी है—संसार की सिनेमा स्टारों को देख जाइए। किसी शहर में गिनिए—कितने सिनेमा-हाउस हैं। भीड़ भी कितनी—आबारागर्द मवेशी काइन्ज हाउस में इतने न मिलेंगे। देखिए—हिन्दू, मुसलमान, त्रिब, पारसी, जैन, बौद्ध, क्रिस्तान, सभी; साफ़ा, टोपी, पगड़ी, कैप, हंड और पाग से लेकर नंगा सिर—घुटना तक; अद्वैतवादी, विशिष्टा-द्वैतवादी, द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी, शुद्धाद्वैतवादी, साम्राज्यवादी, आतङ्क-वादी, समाजवादी, क्राजी, नाज़ी, सूफ़ी से लेकर छायावादी तक; खड़े, बेंड़े सीधे, टेढ़े, सब तरह के तिलक-त्रिपुण्ड; बुरकेवाली, घूँघटवाली, पूरे और आधे और चौथाई बालवाली खुली, और मुंदी चश्मेवाली आँखें तक देख रही हैं। अर्थात् संसार के जितने धर्मात्मा हैं, सभी यौवन से प्यार करते हैं। इसलिए उसके कार्य को भी धर्म कहना पड़ता है। किसी के न कहने—न मानने से वह अधर्म नहीं होता।

अस्तु, इस यौवन के धर्म की ओर शास्त्रिणी जी का धावा हुआ, जब वे पन्द्रह साल की थीं, अविवाहिता। यह आवश्यक था, इसलिए पाप नहीं। मैं इसे आवश्यकतानुसार ही लिखूंगा। जो लोग विशेष रूप से समझना चाहते हों वे जितने दिन तक पढ़ सकें, काम-विज्ञान का अध्ययन कर लें। इस शास्त्र पर जितनी पुस्तकें हैं, पूरे अध्ययन के लिए पूरा मनुष्य-जीवन थोड़ा है। हिन्दी में अनेक पुस्तकें इस पर प्रकाशित हैं, बल्कि प्रकाशन को सकल बनाने के लिए इस विषय की पुस्तकें आधार तानी गई हैं। इससे लोगों को मालूम होगा कि यह धर्म किस अवस्था से किस अवस्था तक किस-किस रूप में रहता है।

(१२१)

(२)

शास्त्रिणी जी के पिता जिला बनारस के रहनेवाले हैं, देहात के, पयासी, सरयूपारीण ब्राह्मण, मध्यमा तक संस्कृत पढ़े; घर के साधारण जमींदार, इसलिए आचार्य भी विद्वत्ता का लोहा माते हैं। गाँव में एक बाग़ कलमी लंगड़े का है। हर साल भारत-सम्राट् को आम भेजने का इरादा करते हैं, जब से वायुयान-कम्पनी चली। पर नीचे से ऊपर को देखकर ही रह जाते हैं, साँस छोड़कर। जिले के अँगरेज हाकिमों को आम पहुँचाने की पितामह के समय से प्रथा है। यह भी सनातन-धर्मानुयायी हैं। नाम पं० रामखेलावन है।

रामखेलावन जी के जीवन में एक सुधार मिलता है। अपनी कन्या का, जिन्हें हम शास्त्रिणी जी लिखते हैं, नाम उन्होंने सुपर्णा रक्खा है। गाँव की जीभ में इसका यह रूप नहीं रह सका, प्रोग्रेसिव राइटर्स की साहित्यिकता की तरह 'पद्मा' बन गया है। इस सुधार के लिए हम पंडित रामखेलावन जी को धन्यवाद देते हैं। पंडित जी समय काटने के विचार से आप ही कन्या को शिक्षा देते थे; फलस्वरूप कन्या भी उनके साथ समय काटती गई और पन्द्रह साल की अवस्था तक सारस्वत में हिलती रही। फिर भी गाँव की वधू-वनिताओं पर, उसकी विद्वत्ता का पूरा प्रभाव पड़ा। दूसरों पर प्रभाव डालने का उसका जमींदारी स्वभाव था, फिर संस्कृत पढ़ी, लोग मानने लगे। गति में चापल्य उसकी प्रतिभा का सबसे बड़ा लक्षण था।

उन दिनों छायाबाद का बोलवाला था, खास तौर से इलाहाबाद में। लड़के पंत के नाम की माला जपते थे, ध्यान लगाये। कितनी लड़ाइयाँ लड़ीं, प्रसाद, पंत और माखनलाल के विवेचन में। भगवती-चरण बायरन से आगे हैं, पीछे रामकुमार, कितनी ताकत से सामने आते हुए। महादेवी कितना खींचती है।

मोहन उसी गाँव का, इलाहाबाद विश्वविद्यालय में बी० ए० (पहले साल) में पढ़ता था। यह रंग उस पर भी चढ़ा और दूसरों से

अधिक । उसे पंत की प्रकृति प्रिय थी, और इस प्रियता से जैसे पंत में बदल जाना चाहता था । सङ्कोच, लज्जा, माजित मधुर उच्चारण, निर्भीक नम्रता, शिष्ट आलाप, सज-धज उसी तरह । रचनाओं से रच गया । साधना करते सधी रचना करने लगा । पर सम्मेलन शरीरक अब तक नहीं गया । पिता हार्डकोर्ट में क्लर्क थे । गर्मी की छुट्टियों में गांव आया हुआ है ।

सुपर्णा से परिचय है जैसे पर्ण और सुमन का । सुमन पर्ण के ऊपर है, सुपर्णा नहीं समझी । जमीन्दार की लड़की जिस तरह वहाँ की समस्त डालों के ऊपर अपने को समझती थी, उसके लिए भी समझी । ज्यों-ज्यों समय की हवा से हिलती थी; सुमन की रेणु से रंग जाती थी; समझती थी, वह उसी का रंग है । मोहन शिष्ट था, पर अपना आसन न छोड़ता था ।

सुपर्णा एक दिन बाग में थी । मोहन लौटा हुआ घर आ रहा था । सुपर्णा रंग गई । बुलाया । मोहन फिर भी घर की तरफ चला ।

‘मोहन! ये आम बाबू जी दे गये हैं, ले जाओ । तकवाहा बाजार गया है ।’

मोहन बाग की ओर चला । नज़दीक गया तो सुपर्णा हँसने लगी—‘कैसा धोखा देकर बुलाया है ? आम बाबू जी ने तुम्हारे यहाँ कभी और भी भिजवाये हैं ?’ मोहन लजाकर हँसने लगा ।

‘लेकिन तुम्हारे लिए कुछ आम चुनकर मैंने रखे हैं । चलो ।’

मोहन ने एक बार संयत दृष्टि से उसे देखा । सुपर्णा साथ लिये बीस बाग की तरफ चली—मैंने तुम्हें आते देखा था, तुमसे मिलने को छिपकर चली आई । तकवाहे को सोदा लेने बाजार (बूसेरे गाँव) भेज दिया है । याद है मोहन ?

‘क्या ?’

‘मेरी गुड़ियों ने तुम्हारे साथ, खेल में ।’

‘वह तो खेल था ।’

‘नहीं, वह सही था। मैं अब भी तुम्हें वही समझती हूँ।’

‘लेकिन तुम पयासी हो। शादी तुम्हारे पिता को मंजूर न होगी।’

‘तो तुम मुझे कहीं ले चलो। मैं तुमसे कहने आई हूँ। दूसरे से ब्याह करना मैं नहीं चाहती।’

मोहन की सुन्दरता गाँव की रहनेवाली सुपर्णा ने दूसरे युवक में नहीं देखी। उसका आकर्षण उसकी माँ को मालूम हो चुका था। उसका मोहन के घर जाना बन्द था। आज पूरी शक्ति लड़ाकर, मौका देखकर मोहन से मिलने आई है। मोहन खिन्ना। उसे यहाँ वह प्रेम न बिखा, वह जिसका भक्त था, कहा—

‘लेकिन मैं कहां ले चलूँ?’

‘जहाँ रहते हो।’

‘वहाँ तो पिता जी हैं।’

‘तो और कहीं।’

‘खायेंगे क्या?’

खाना पड़ता है, यह सुपर्णा को याद न था। मोहन से लिपटी जा रही थी।

इसी समय तकवाहा बाजार से आगया। देर का गया था। देखकर सचेत करने के लिए आवाज दी। सुपर्णा घबराई। मोहन खड़ा हो गया।

तकवाहा बाग़ आ सौदा देकर मोहन को जमींदार की ही दृष्टि से घूरता रहा। मतलब समझकर मोहन धीरे-धीरे बाग़ से बाहर निकला और घर की ओर चला।

तकवाहा धार्मिक था। जैसा देखा था, पंडित रामखेलावन जी से ग्याख्या समेत कहा। साथ ही इतना उपदेश भी दिया कि मालिक! पानी की भरी खाल है, कब क्या हो जाय! बिटिया रानी का जल्द ब्याह कर देना चाहिए।

पंडित रामखेलावन जी भी धार्मिक थे। धर्म की सूक्ष्मतम दृष्टि

से देखने लगे तो मालूम पड़ा कि वे पृथ्वी के गर्भ में हैं, नौ-दस महीने में क्या होगा। फिर ? इस महीने लगन है—ब्याह हो जाना चाहिए।

जल्दी में बनारस चले।

(३)

पंडित गजानन्द शास्त्री बनारस के वैद्य हैं। बंदकी साधारण चलती है, बड़े दाँव-पेच करते हैं तब। पर आशा बहुत बढ़ी-चढ़ी है। सदा बड़े-बड़े आदमियों की तारीफ़ करते हैं और ऐसे स्वर से, जैसे उन्हीं में से एक हों। बंदकी चले इस अभिप्राय से शाम को रामायण पढ़ते-पढ़वाते हैं, तुलसीकृत; अर्थ स्वयं कहते हैं। गोस्वामी जी के साहित्य का उनसे बड़ा जानकार—विशेषकर रामायण का, भारतवर्ष में नहीं, यह श्रद्धा-पूर्वक मानते हैं। सुननेवाले ज्यादातर विद्यार्थी हैं, जो भरसक गुरु के यहाँ भोजन करके विद्याध्ययन करने काशी आते हैं। कुछ साधारण जन हैं, जिन्हें असमय पर मुफ़्त दवा की जरूरत पड़ती है। दो-चार ऐसे भी आदमी, जो काम तो साधारण करते हैं, पर असाधारण आदमियों में गप लड़ाने के आदी हैं। मज्जे की महफ़िल लगती है। कुछ महीने हुए, शास्त्री जी की तीसरी पत्नी का असच्चिकित्सा के कारण देहान्त हो गया है। बड़े आदमी की तलाश में मिलनेवाले अपने मित्रों से शास्त्री जी बिना पत्नीवाली अड़चनों का बयान करते हैं और उतनी बड़ी गृहस्थी आठाबाठा जाती है—इसके लिए विलाप। सुपात्र सरयूपारीण ब्राह्मण हैं; मामलोर सुकुल।

पंडित रामखेलावन जी बनारस में एक ऐसे मित्र के यहाँ आकर ठहरे, जो वैद्य जी के पूर्वोक्त प्रकार के मित्र हैं। रामखेलावन जी लड़की के ब्याह के लिए आये हैं, सुनकर मित्र ने उन्हें ऊपर ही लिया, और शास्त्री जी की तारीफ़ करते हुए कहा, ऐसा सुपात्र बनारस शहर में न मिलेगा। शास्त्री जी की तीसरी पत्नी अभी गुजरी है; फिर भी उम्र अभी अधिक नहीं—जवान है। शास्त्री, वैद्य, सुपात्र और उम्र भी अधिक नहीं—सुनकर पंडित रामखेलावन जी ने मन ही मन बाबा विश्व-

नाथ को दण्डवत् की ओर बाबा विश्वनाथ ने हिन्दू-धर्म के लिए क्या-क्या किया है, इसका उन्हें स्मरण दिलाया। वे भक्तवत्सल आशुतोष हैं, यह यहीं से विदित हो रहा है—मर्यादा की रक्षा के लिए अपनी पुरी में पहले से घर लिए बैठे हैं—आने के साथ मिला दिया। अब यह बंधान न उखड़े, इसकी बाबा विश्वनाथ को याद दिलाई।

पंडित रामखेलावन जी के मित्र पंडित गजानन्द शास्त्री के यहाँ उन्हें लेकर चले। जमींदार पर एक धाक जमाने की सोची। कहा—लेकिन बड़े आदमी हैं; कुछ लेन-देनवाली पहले से कह दीजिए, आखिर उनकी बराबरी के लिए कहना ही पड़ेगा कि जमींदार हैं।

‘जैसा आप कहें।’

‘कुल मिलाकर तीन हजार तो दीजिए, नहीं तो अच्छा न लगेगा।’

‘इतना तो बहुत है।’

‘ढाई हजार? इतने से कम में न होगा। यह दहेज की बात नहीं बनाव की बात है।’

‘अच्छा, इतना कर दिया जायगा। लेकिन विवाह इसी लगन में हो जाना चाहिए।’

मित्र चौंका। सन्देह मिटाने के लिए कहा—भाई, इस साल तो नहीं हो सकता।

पंडित रामखेलावन जी घबराकर बोले—आप जानते ही हैं, ग्यारह साल के बाद लड़की जितना ही पिता के यहाँ रहती है, पिता पर पाप बढ़ता है। पन्द्रह साल की है। सुन्दर जोड़ी है। लड़की अपने घर जाय, चिन्ता कटे। जमाना दूसरा है।

मित्र को आशा बँधी। सहानुभूति पूर्वक बोले—बड़ा जोर लगाना पड़ेगा, अगले साल हो तो बुरा तो नहीं?

पंडित रामखेलावन जी चलते हुए रुककर बोले—अब इतना सहारा दिया है, तो खेवा पार ही कर दीजिए। बड़े आदमी ठहरे, कोई हमसे भी अच्छा तब तक आ जायगा।

मित्र को मजबूती हुई। बोले—उनकी स्त्री का देहागत हुआ है, अभी साल भी पूरा नहीं हुआ। बरखी से पहले तो मंजूर न करेंगे। लेकिन एक उपाय है, अगर आप करें।

‘आप जो भी कहें हम करने को तैयार हैं, भला हमें ऐसा दामाद कहाँ मिलेगा?’

‘बात यह कि कुल सरार्थे एक ही महीने में करबानी पड़ेंगी, और फिर ब्रह्म-भोज भी तो है, और बड़ा। कम से कम तीन हजार खर्च होंगे। फिर तत्काल विवाह। आप हजार रुपये भी बीजिए। पर उन्हें नहीं। अरे रे! इसे वे अपमान समझेंगे। हम हैं। इससे आपकी इज्जत बढ़ेगी, और आखिर हमें बढ़कर उनसे कहना भी तो है कि बराबर की जगह है? हजार जब उनके हाथ पर रखेंगे कि आपके ससुर जी ने बरखी के खर्च के लिए दिये हैं, तब यह दस हजार के इतना होगा, यही तो बात थी। वे भी समझेंगे।’

पंडित रामखेलावन जी दिल से कसमसाये, पर चारा न था। उतरे गले से कहा—अच्छी बात है। मित्र ने कहा—तो रुपये कब तक भेजिएगा? अच्छा, अभी चलिए; देख तो लीजिए, लेकिन विवाह की बातचीत न कीजिएगा, नहीं तो निकाल ही देंगे। समझिए—पत्नी मरी है।

रामखेलावन दबे। धीरे-धीरे चलते गये। लड़की कुछ पढ़ी भी ह? पढ़ती तो थी—तीन साल हुए, जब मैं गया था गबाही थी—मौका देखने के लिए?—मित्र ने पूछा।

लड़की तो सरस्वती है। आपने देखा ही है। संस्कृत पढ़ी है।

ठीक है। देखिए, बाबा विश्वनाथ हैं।—मित्र की तरह पर उतरे गले से कहा।

रामखेलावन जी डरे कि बिगाड़ न दे। दिल से जानते थे, बदमाश हैं, उनकी तरफ से भूठ गबाही दे चुका है रुपये लेकर; लेकिन लाचार थे; कहा—हम तो आपमें बाबा विश्वनाथ को ही देखते हैं, यह काम आपका बनाया बनेगा।

मित्र हँसा। बोला—कह तो चुके। गाढ़े में काम न दे, वह मित्र नहीं—दुःमन है। सामने देखकर—वह देखिए, वह शास्त्री जी का ही मकान है, सामने—। था वह किराये का मकान। अच्छी तरह देखकर कहा—हैं नहीं बैठक में; शायद पूजा में हैं।

दोनों बैठक में गये। मित्र ने पंडित रामखेलावन जी को आश्वासन देकर कहा—आप बैठिए। मैं बुलाये लाता हूँ।

पंडित रामखेलावन जी एक कुर्सी पर बैठे। मित्रवर आवाज बेते हुए जीने पर चढ़े।

जिस तरह मित्र ने यहाँ रोब गाँठा था उसी तरह शास्त्री जी पर गाँठना चाहा। वह देख चुका था, शास्त्री जी खिजाब लगाते हैं, अर्थ विवाह के सिवा दूसरा नहीं। शास्त्री जी बढ़-बढ़कर बातें करते हैं, यह मौका बढ़कर बातें करने का है। उसका मंत्र है, काम निकल जाने पर बेटा बाप का नहीं होता। उसे काम निकालना है।

शास्त्री जी ऊपर एकान्त में दवा कूट रहे थे। आवाज पहचानकर बुलाया। मित्र ने पहुँचने के साथ देखा—खिजाब ताजा है। प्रसन्न होकर बोला—मेरी मानिए, तो वह ब्याह कराऊँ, जैसा कभी किया न हो, और बहू अप्सरा, संस्कृत पढ़ी, रुपया भी दिलाऊँ।

शास्त्री जी पुलकित हो उठे। कहा—आप हमें दूसरा समझते हैं? इतनी मित्रता—रोज़ की उठक-बैठक, आप मित्र ही नहीं—हमारे सर्वस्व हैं। आपकी बात न मानेंगे तो क्या रास्ता चलते की मानेंगे ? आप भी !

‘आपने अभी स्नान नहीं किया शायद ? नहाकर चन्दन लगाकर, अच्छे कपड़े पहनकर नीचे आइए। विवाह करनेवाले ज़मींदार साहब हैं। वहीं परिचय कराऊँगा ! लेकिन अपनी तरफ़ से कुछ कहिएगा मत। नहीं तो, बड़ा आदमी है, भड़क जायगा।

घर की शेखी में मत भूलिएगा। आप-जैसे उसके नौकर हैं। हैं, जन्म-पत्र अपना हर्गिज़ न दीजिएगा। उम्र का पता चला तो न करेगा। मैं सब ठीक कर दूँगा। चुपचाप बैठे रहिएगा। नौकर कहाँ है ?’

‘बाज़ार गया है।’

‘आने पर मिठाई भँगवाइएगा। हालाँ कि खायगा नहीं। मिठाई से इनकार करने पर नमस्कार करके सीधे ऊपर का रास्ता नापिएगा। मैं भी यह कह दूँगा, शास्त्री जी ने आधे घण्टे का समय दिया है।’

शास्त्री गजानन्द जी गद्गद हो गये। ऐसा सच्चा आदमी यह पहला मिला है, उनका दिल कहने लगा। मित्र नीचे उतरा और मित्र से गम्भीर होकर बोला—पूजा में है; मैं तो पहले ही समझ गया था। दस मिनट के बाद आँख खोली, जब मैंने घंटी टिनटिनाई। जब से स्त्री का देहान्त हुआ है, पूजा में ही तो रहते हैं। सिर हिलाकर कहा—चलो। देखिए, बाबा विश्वनाथ ही हैं—हे प्रभो। शरणागत-शरण ! तुम्हीं हो—बाबा विश्वनाथ !—कहते हुए मित्र ने पलकें मूंद लीं।

इसी समय पैरों की आहट मालूम दी। देखा, नौकर आ रहा था। डाँटकर कहा—पंखा भल। शास्त्री जी अभी आते हैं।

नौकर पंखा भलने लगा। वैद्य का बैठका था ही। पं० रामखेलावन जी प्रभाव में आगये। आधे घंटे बाद, जीने में खड़ाऊँ की खटक सुन पड़ी। मित्र उठकर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, उँगली के इशारे पं० रामखेलावन जी को खड़े हो जाने के लिए कहकर। मित्र की देखा-देखी पंडित जी ने भी भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ लिए। नौकर अचंभे से देख रहा था। ऐसा पहले नहीं देखा था।

शास्त्री जी के आने पर मित्र ने घुटने तक झुककर प्रणाम किया। पं० रामखेलावन जी ने भी मित्र का अनुसरण किया। ‘बैठिए, गदाधर जी,’ कोमल सभ्य कंठ से कहकर गजानन्द जी अपनी कुर्सी पर बैठ गये। वैद्य जी की बढ़िया गद्दीदार कुर्सी बीच में थी। पं० रामखेलावन जी आश्चर्य और हर्ष से देख रहे थे। आश्चर्य इसलिए कि शास्त्री जी बड़े आदमी तो हैं ही, उम्र भी अधिक नहीं, २५ से ३० की कहने की हिम्मत नहीं पड़ती।

शास्त्री जी ने नौकर को पान और मिठाई ले आने के लिए भेजा

और स्वाभाविक बनावटी विनम्रता के साथ मित्रवर गदाधर से आगन्तुक अपरिचित महाशय का परिचय पूछने लगे। पं० गदाधर जी बड़े उदात्त कंठ से पं० रामखेलावन जी की प्रशंसा कर चले, पर किस अभिप्राय से वे गये थे, यह न कहा। कहा—महाराज ! आप एक अत्यन्त आवश्यक गृहधर्म से मुक्त होना चाहते हैं।

पलकें मूँदते हुए, भावावेश में, शास्त्री जी ने कहा—काशी तो मुक्ति के लिए प्रसिद्ध है।

हाँ, महाराज !—मित्र ने और आबिष्ट होते हुए कहा—वह तो सबसे बड़ी मुक्ति है, पर यह साधारण मुक्ति ही है, आप—जैसे बाबा विश्वनाथ के परमसिद्ध भक्त स्वीकार-मात्र से इस भव-बंधन से मुक्ति दे सकते हैं।—कहकर हाथ जोड़ दिये। पं० रामखेलावन जी ने भी साथ दिया।

हाँ, नहीं, कुछ न कहकर एकान्त धार्मिक दृष्टि को परमसिद्ध पं० गजानन्द जी शास्त्री पलकों के अन्दर करके बैठे रहे।

इस समय नौकर पान और मिठाई ले आया। शास्त्री जी ने खट से आँखें धोलकर देखा, नौकर को शुद्ध जल ले आने के लिए कहकर बड़ी नम्रता से पं० रामखेलावन जी को जलपान करने के लिए पूछा। पं० रामखेलावन जी दोनों हाथ उठाकर जीभ काटकर, सिर हिलाते हुए बोले—नहीं-नहीं, महाराज, यह तो अधर्म है। चाहिए तो हमें कि हम आपकी सेवा करें, बल्कि आपके सेवा-सम्बन्ध में सदा के लिए...

अहाहा ! क्या कही ! क्या कही !—कहकर, पूरा दोना उठाकर एक रसगुल्ला मुँह में छोड़ते हुए मित्र ने कहा—बाबा विश्वनाथ जी के घर से काशी का एक-एक बालक अन्तर्यामी होता है, फिर उनकी सभा के पारिषद शास्त्री जी तो.....

शास्त्री जी अभिन्न स्नेह की दृष्टि से प्रिय मित्र को देखते रहे। मित्र ने, स्वल्पकाल में रामभवन का प्रसिद्ध मिष्टान्न उदरस्थ कर जलपान के पश्चात् मगही बीड़ों की एक नत्थी मुखव्यादान कर यथास्थान रखी।

शास्त्री जी बिनयपूर्वक नमस्कार कर जीना तय करने को चले। उनके पीठ फेरने पर मित्र ने रामखेलावन जी को पंजा दिखाकर हिलाते हुए आश्वासन दिया। शास्त्री जी के अदृश्य होने पर इशारे से पं० राम-खेलावन जी को साथ लेकर वासस्थल की ओर प्रस्थान किया।

रामखेलावन जी के मौन पर शास्त्री जी का पूरा-पूरा प्रभाव पड़ चुका था। कहा—अब हमें इधर से जाने दीजिए; कल रुपये लेकर आयेंगे। लेकिन इसी महीने विवाह हो जाय।

इसी महीने,—इसी महीने—गंभीर भाव से मित्र ने कहा—जन्म-पत्र लड़की का लेते आइएगा। हाँ, एक बात और है। बाक्री डेढ़ हजार में बारह सो का जेवर होना चाहिए, नया; आइएगा, हम खरीदवा देंगे।—दलाली की सोचते हुए कहा—आपको ठग लेगा। आप इतना तो समझ गये होंगे कि इतने के बिना बनता नहीं, तीन सौ रुपये रह जायेंगे। खिलाने-पिलाने और परजों को देने को बहुत है। बस्कि कुछ बच जायगा आपके पास। क्रिजू ड खर्च हो, यह मैं नहीं चाहता। इसी लिए ठोस-ठोस कामवाला खर्च कहा। अच्छा, नमस्कार!

(४)

शास्त्री जी का ब्याह हो गया। सुपर्णा पति के साथ है; शास्त्री जी ब्याह करते-करते कोमल हो गये थे। नवीना सुपर्णा की यथाभ्यास सब प्रकार प्रीत रखने लगे। बाग से लौटने पर सुपर्णा के हृदय में मोहम के लिए क्रोध पैदा हुआ। घरवालों ने सख्त मिगरानी रखने के अलावा, डर के मारे उससे कुछ नहीं कहा। उसने भी बिरोध किये बिना विवाह के बहाव में अपने को बहा दिया। मन में यह प्रतिहिंसा लिये हुए कि मोहन इस बहते में मिलेगा और उसे हो सकेगा ती उचित शिक्षा देगी। शास्त्री जी को एकांत भक्त देखकर मन में मुस्कराई।

सुपर्णा की जीवट शास्त्री जी के लिए भी जीवन सिद्ध हुई। शास्त्री जी अपना दारोबार बढ़ाने लगे। सुपर्णा की बंधक की अनुबाधित हिन्दी-पुरानें देने लगे, नाड़ी-विचार चर्चा आदि करने लगे। उस आग में तृण

की तरह जल-जलकर जो प्रकाश देखने लगे, वह मर्त्य में उन्हें दुर्लभ मालूम दिया । एक दिन श्रीमती गजानन्द शास्त्रिणी के नाम से स्त्रियों के लिए बिना फ्रीसवाला रोग-परीक्षणालय खोल दिया—इस विचार से कि दवा के दाम मिलेंगे, फिर प्रसिद्ध होने पर फ्रीस भी मिलेगी ।

लेकिन ध्यान से सुपर्णा के पढ़ने का कारण कुछ और है । शास्त्री जी अपनी मेज की सजावट तथा प्रतीक्षा करते रोगियों के समय काटने के विचार से 'तारा' के ग्राहक थे । एक दिन सुपर्णा 'तारा' के पन्ने उलटने लगी । मोहन की एक रचना छपी थी । यह उसकी पहली प्रकाशित कविता थी । विषय था व्यर्थ प्रणय । बात बहुत कुछ मिलती थी । लेकिन कुछ निन्दा थी—जिस प्रेम से कवि स्वर्ग से गिर जाता है—उसकी । काव्य की प्रेमिका का उसमें वही प्रेम दर्शाया गया था । सुपर्णा चौंकी । फिर संयत हुई और नियमित रूप में 'तारा' पढ़ने लगी ।

एक साल बीत गया । अब सुपर्णा हिन्दी में लिख लेती है । मोहन से उसका हाड़-हाड़ जल रहा था । एक दिन उसने पातिव्रत्य पर एक लेख लिखा । आजकल के छायावाद के सम्बन्ध में भी पढ़ चुकी थी और बहुत कुछ अपने पति से सुन चुकी थी । काशी हिन्दी के सभीवादों की भूमि है । प्रसाद काशी के ही है । उनके युवक पाठक शिष्य अनेक शास्त्रियों को बना चुके हैं । पं० गजानन्द शास्त्री गंगा नहाते समय कई बार तर्क कर चुके हैं, उत्तर भी भिन्न मुनि के भिन्न मत की तरह अनेक मिल चुके हैं । एक दिन शास्त्री जी के पूछने पर एक ने कहा—छायावाद का अर्थ है शिष्टतावाद; छायावादी का अर्थ है सुन्दर साफ वस्त्र और शिष्ट भाषा धारण करनेवाला; जो छायावादी है, वह सुवेश और मधुरभाषी है; जो छायावादी नहीं है वह काशी के शास्त्रियों की तरह अँगौछा पहननेवाला है या नंगा है ।—दूसरे दिन दो थे । नहा रहे थे । शास्त्री जी भी नहा रहे थे । छायावाद क्या है ?—शास्त्री जी ने पूछा । उन्होंने शास्त्री जी को गंगा में गहरे ले जाकर डुबाना शुरू किया, जब कई कुल्ले पानी पी गये, तब छोड़ा; शिथिल

होकर शास्त्री जी किनारे आवे, तब लड़कों ने कहा—यही है छायावाद ! फलतः शास्त्री जी छायावाद और छायावादी से मौलिक घृणा करने लगे थे, और जिज्ञासु षोड़शी प्रिया को समझाते रहे कि छायावाद वह है, जिसमें कला के साथ व्यभिचार किया जाता है तरह-तरह से। आइडिया के रूप में, सुपर्णा-जैसी ओजस्विनी लेखिका के लिए इतना बहुत था। आदि से अन्त तक उसके लेख में प्राचीन पतिव्रत-धर्म और नवीन छायावादी व्यभिचार प्रचारक के कण्ठ से बोल रहा था। शास्त्री जी ने कई बार पढ़ा और पत्नी को सती समझकर मन ही मन प्रसन्न हुए। वह लेख सम्पादक जी के पास भेजा गया। सम्पादक जी लेखिका-मात्र को प्रोत्साहित करते हैं, ताकि हिन्दी की मरु-भूमि सरस होकर आबाद हो, इसलिए लेख या कविता के साथ चित्र भी छापते हैं। शास्त्रिणी जी को लिखा। प्रसिद्धि के विचार से शास्त्री जी ने एक अच्छा-सा चित्र उतरवाकर भेज दिया। शास्त्रिणी जी का दिल बड़ गया, साथ उपदेश देनेवाली प्रवृत्ति भी।

इसी समय देश में आन्दोलन शुरू हुआ। पिकेटींग के लिए देवियों की आवश्यकता हुई—पुरुषों का साथ देने के लिए भी। शास्त्रिणी जी की मारफ़त शास्त्री जी का व्यवसाय अब तक भी न चमका था। शास्त्री जी ने पिकेटींग में जाने की आज्ञा दे दी। इसी समय महात्मा जी बनारस होते हुए कहीं जा रहे थे, कुछ घण्टों के लिए उतरे। शास्त्री जी की सलाह से, एक जेवर बेचकर, शास्त्रिणी जी ने दो सौ रुपये की पैली उन्हें भेंट की। तन, मन और धन से देश के लिए हुई इस सेवा का साधारण जनता पर असाधारण प्रभाव पड़ा। सब धन्य-धन्य कहने लगे। शास्त्रिणी जी पूरी तत्परता से पिकेटींग करती रहीं। एक दिन पुलिस ने हमरी स्त्रियों के साथ उन्हें भी लेकर एकान्त में, कुछ भील ग़रर से दूर, संध्या समय, छोड़ दिया। वहाँ से उनका मायका नज़दीक था। रास्ता जाना हुआ। लड़कपन में वहाँ तक वे खेलने जाती थीं। पैदल मायके चली गईं। हमरी देवियों से नहीं कहा, इसलिए कि

ले जाना होगा और सबके लिए वहाँ सुविधा न होगी। प्रातःकाल देवियों की गिनती में यह एक घटी, संवादपत्रों ने हल्ला मचाया। ये तीन दिन बाद विश्राम लेकर मायके से लौटीं, और शोकसंतप्त पतिदेव को और उच्छृङ्खल रूप से बड़बड़ाते हुए संवाद-पत्रों को शान्त किया—प्रतिवाद लिखा कि सम्पादकों को इस प्रकार अधीर नहीं होना चाहिए।

आन्दोलन के बाद इनकी प्रैक्टिस चमक गई। बड़ी देवियाँ आने लगीं। बुलावा भी होने लगा। चिकित्सा के साथ लेख लिखना भी जारी रहा। ये बिलकुल समय के साथ थीं। एक बार लिखा—देश को छायावाद से जितना नुकसान पहुँचा है, उतना गुलामी से नहीं। इनके विचारों का आदर नीम-राजनीतिज्ञों में क्रमशः जोर पकड़ता गया। प्रोप्रेसिव राइटर्स ने भी बधाइयाँ दीं और इनकी हिन्दी को आदर्श मानकर अपनी सभा में सम्मिलित होने के लिए पूछा। अस्तु, शास्त्रिणी जी दिन पर दिन उन्नति करती गईं। इसी समय नया चुनाव शुरू हुआ। राष्ट्रपति ने कांग्रेस को वोट देने के लिए आवाज उठाई। हर जिले से कांग्रेसी उम्मीदवार खड़े हुए। देवियाँ भी। वे मर्दों के बराबर हैं। शास्त्रिणी जी भी जौनपुर से खड़ी होकर सफल हुईं। अब उनके सम्मान की सीमा न रही। एम० एल० ए० है। 'कौशल' में उनके निबन्ध प्रकाशित होते थे। लखनऊ आने पर, 'कौशल' के प्रधान सम्पादक एक दिन उनसे मिले और 'कौशल'-कार्यालय पधारने के लिए प्रार्थना की। शास्त्रिणी जी ने गर्वित स्वीकारोक्ति दी।

'कौशल'-कार्यालय सजाया गया। शास्त्रिणी जी पधारीं। मोहन एम० ए० होकर यहाँ सहाकारी हैं, लेकिन लिखने में हिन्दी में अकेला। शास्त्रिणी जी ने देखा। मोहन ने उठकर नमस्कार किया। आप यहाँ?—शास्त्रिणी जी ने प्रश्न किया। जी हाँ,—मोहन ने नम्रता से उत्तर दिया—यहाँ सहायक हूँ। शास्त्रिणी जी उद्धत भाव से हँसीं। उपदेश के स्वर में बोलीं—आप गलत रास्ते पर थे!

१०—कोटर और कुटीर

[श्री सियारामशरण गुप्त]

कोटर

दोपहरी का समय था। सूर्य अग्नि-शलाकाओं से पृथ्वी का शरीर दग्ध कर रहा था। वृक्षों के पत्ते निस्पन्द थे। मानो किसी और भयंकर काण्ड की आशंका से साँस-सी साधे खड़े थे। इसी समय अपने छोटे से कोटर के भीतर बैठे हुए चातक-पुत्र ने कहा—“पिता !”

बाहर की सहज स्निग्ध वनस्थली के वर्तमान रूखेपन की तरह ही वह स्बर कुछ नीरस था। चातक ने अपनी चोंच कुमार की पीठ पर फेरते हुए प्यार से कहा—“क्या है बेटा ?”

“हे और क्या ? व्यास के मारे चोंच तक प्राण आगये हैं।”

“बेटा, अधीर न हो। समय सदा एक-सा नहीं रहता।”

“तो यही तो मैं भी कहता हूँ—समय सदा एक-सा नहीं रहता। पुरानी बातें पुराने समय के लिए थीं। आप अब भी उन्हें इस तरह छाती से चिपकाये हुए हैं, जिस तरह बानसी मरे बच्चे को चिपकाये रहती है। घनश्याम की बाट आप जोहते रहिए। अब मुझसे यह नहीं सध सकता।”

“घनश्याम के सिवा हम और किसी का जल ग्रहण नहीं करते। यही हमारे कुल का व्रत है। इस व्रत के कारण अपने गोत्र में न तो किसी की मृत्यु हुई और न कोई दूसरा अनर्थ।”

“आप कहते हैं,—कोई अनर्थ नहीं हुआ; मैं कहता हूँ, व्यास की इस यन्त्रणा से बढ़कर और अनर्थ क्या होगा। जहाँ से भी होगा मैं जल ग्रहण करूँगा ही।”

चातक सिहरकर पंख फड़फड़ाने लगा। मानो उसने, उन अभव्य वचनों और कानों के बीच में, कोलाहल की परिखा-सी खड़ी कर देनी

चाही! थोड़ी देर तक चुप रहकर वह बोला—“बेटा, धैर्य रख। अपने इस व्रत के कारण ही पानी बरसता है और धरती-माता की गोद हरी-भरी होनी है। यह व्रत इस तरह नष्ट कर देने की वस्तु नहीं।

लाड़ले लड़के ने कहा—“व्रत-पालन करते हुए इतने दिन तो हो गये, पानी का कहीं चिह्न तक नहीं है। गरमी ऐसी पड़ रही है कि धरती के नदी-नाले सब सूख गये। फिर सूर्य के ओर निकट रहनेवाले आकाश के मेघों में पानी टिक ही कैसे सकता है?”

“बेटा, पृथ्वी का यह निर्जल उपवास है। इसी पुण्य से उसे जीवन-दान मिलेगा। भोजन का पूरा स्वाद और पूरी तृप्ति पाने के लिए, थोड़ी-सी क्षुधा सहन करना अनिवार्य ही नहीं, आवश्यक भी है।”

“पिता जी, मैं थोड़ी-सी क्षुधा से नहीं डरता। परन्तु यह भी नहीं चाहता कि क्षुधा ही क्षुधा सहन करता रहूँ। मैं ऐसा व्रत व्यर्थ समझता हूँ। देवताओं का अभिशाप लेकर भी मैं इसे तोड़ूँगा। घनश्याम को भी तो सोचना था कि उनके बिना किसी के प्राण निकल रहे हैं। आदमी ने मेघों पर अविश्वास करके, कृषि की रक्षा के लिए नहर, तालाब और कुओं का बन्दोबस्त कर लिया है। कृषि ने आपकी तरह सिर नहीं हिलाया कि मैं तो घनश्याम के सिवा और किसी का जल नहीं छुऊँगी। हमीं क्यों इस तरह का कष्ट सहें। आप चाहे मुझे रखें या छोड़ें, मैं यह भ्रंश न मानूँगा।”

चातक ने देखा मामला बेश्च हुआ चाहता है। यह इस तरह न मानेगा। कहा—“यह बताओ, तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे?”

चातक-पुत्र चुप। उसने अभी तक इस बात पर विचार ही नहीं किया था। वह सोचता था, जिस प्रकार लाखों जीव-जन्तु जल पीते हैं, उसी प्रकार मैं भी पीऊँगा। परन्तु वह प्रकार कैसा है, यह उसकी समझ में न आया था।

लड़के को चुप देखकर पिता ने समझा—‘कमजोरी यहीं है।’ वह जानता था कि कमजोरी के ऊपर से ही आक्रमण करना विजय की पहली

सीढ़ी है। बोला—“चुप कैसे रह गये ? बताओ तुम जल कहाँ से ग्रहण करोगे ?”

हिचकिचाकर, अपनी बात स्वयं ही खण्ड-खण्ड करते हुए, लड़के ने कहा—जहाँ से और दूसरे ग्रहण करते हैं, वहीं से मैं भी करूँगा।

पिता ने कहा—पड़ोस में वह पोखरी है। अनेक पशु-पक्षी और आदमी भी वहाँ जल पीते हैं। तुम वहाँ जल पी सकोगे ? बोलो, है हिम्मत ?

चातक-पुत्र को उस पोखरी के स्मरण से ही फुरहरी आगई। वह, उसमें कितनी गंदगी है। पत्ते, सूखी डंठलें आदि गिर-गिरकर उसमें सड़ती रहती हैं। कीड़े कुलबुलाते हुए उसमें साफ़ दिखाई देते रहते हैं। लोग उसमें कपड़े निखारने आते हैं या गन्दे करने; कई बार सोचने पर भी वह समझ नहीं सका था। एक बार एक आदमी को अंजुली से पानी पीते देख, उसने पिता से कहा था—‘देखो पिता जी, ये कैसे घृणित जीव हैं।’ अवश्य ही उसने अपने व्रत का जिक्र उस समय नहीं किया था; परन्तु उसके मन में उसी का गर्व छलक उठा था। अब इस समय वह पिता से कैसे कहे कि मैं उस पोखरी का पानी पिऊँगा।

चातक बोला—“बेटा, अभी तुम नासमझ हो। चाहे जहाँ से पानी ग्रहण करना इस समय तुम आसान समझ रहे हो। परन्तु जब इसके लिए बाहर निकलोगे तब तुम्हें मालूम पड़ेगा। हमारी प्यास के साथ करोड़ों की प्यास है और तृप्ति के साथ करोड़ों की तृप्ति। तुमसे अकेले तृप्त होते कैसे बनेगा ?”

चातक-पुत्र इस समय अपने हठ को पुष्ट करनेवाली कोई युक्ति सोच रहा था। पिता की बात बिना सुने वह बोल उठा—मैं गंगा-जल ग्रहण करूँगा।”

चातक ने कहा—“गंगा जी तो यहाँ से पाँच दिन की उड़ान पर हैं। तू नहीं मानता, तो जा। परन्तु यदि तूने और कहीं एक बूँद भी ली, तो हमें मुँह न दिखाना।

चातक-पुत्र प्रणाम करके फुर से उड़ गया।

कुटीर

बुद्धन का कच्चा खपरैल का घर था। छोटी-छोटी दो कोठरियाँ, फिर उन्हीं के अनुरूप आँगन और उसके आगे पौर। पुराना छप्पर नीचे झुककर, घर के भीतर आश्रय लेने की बात सोच रहा था। जीर्ण-शीर्ण दीवारें रोशनदान न होने की साध, दरारों के 'दस्तक' से पूरी किया चाहती थीं।

उस घर में और कुछ हो या न हो, आँगन के बीच, चातक-पुत्र के विश्राम करने योग्य नीम का एक वृक्ष था। तीसरी उड़ान की थकान मिटाने के लिए, वह उसी पर उतरा।

नीम की स्निग्धता और सघनता ने चातक-पुत्र को अपने निजी सहकार की याद दिला दी। विश्राम पाकर भी उसके जी में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न हो गई। पकी बिनौरी की तरह उस वेदना में भी कुछ माधुर्य था।

नीचे वृक्ष की छाया में बुद्धन लेटा हुआ था। अवस्था उसकी पचास के ऊपर थी। फिर भी, अभी कुछ दिन पहले तक, उसके पैरों में जीवन-यात्रा की इतनी ही मंजिल तय करने योग्य शक्ति और मालूम होती थी। एक दिन एकाएक पक्षाघात ने उसे अचल कर दिया। जीवन और मृत्यु ने आपस में सुलह करके, मानो आधे-आधे शरीर का बटवारा कर लिया। स्त्री पहले ही गत हो चुकी थी। घर में १५-१६ वर्ष का एकमात्र पुत्र, गोकुल ही अवशिष्ट था। उसी के सहारे उसके दिन पूरे हो रहे थे।

गोकुल एक जगह काम पर जाता था। काम करके प्रतिदिन सन्ध्या समय तक लौट आता था। आज अभी तक नहीं आया था, इसलिए बुद्धन उसके लिए छटपटा रहा था। ऊपर आकाश में तारे छिटक आये थे। इधर-उधर चारों ओर सन्नाह था और घर में अकेला बुद्धन। यद्यपि उसमें खाट से नीचे उतरने तक की शक्ति नहीं थी, तौ भी उसका

मन न जाने कहाँ-कहाँ चौकड़ी भर रहा था। गोकुल सबेरे थोड़े से चने खाकर काम पर गया था। बुद्धन के लिए भी थोड़े से चने और पीने का पानी यथास्थान रख गया था। आज खाने के लिए घर में और कुछ था ही नहीं। कह गया था—“शाम को मजूरी के पैसों का आटा लाकर रोटी बनाऊँगा।” परन्तु आज वह अभी तक नहीं आया था। अनेक आशंकाओं से बुद्धन का मन चंचल हो उठा। जो समय आनन्द की स्निग्ध शीतल छाया में शीतकाल के दिन की तरह, मालूम भी नहीं होने पाता और निकल जाता है, वही दुःख की दाहक ज्वाला में, निदाघ के दीर्घ दिनों की भाँति, अकाट्य हो उठता है। रात बहुत नहीं बीती थी, परन्तु बुद्धन को मालूम हो रहा था कि बरसों का समय हो गया। बार-बार अपने कान खड़े करके, उस सन्नाटे में वह गोकुल के पद-शब्द सुनने का प्रयत्न कर रहा था।

बड़ी देर बाद उसकी प्रतीक्षा सफल हुई। किड़ाड़ खुलने की आवाज सुनकर वह चौका। वास्तव में यह गोकुल ही था। उसने कहा—“कौन गोकुल ! बेटा, आज बड़ी देर लगाई ?”

गोकुल धीरे से पिता की खाट के पास आकर रोने लगा।

बुद्धन ने घबराकर पूछा—“क्या हुआ, बेटा, क्या हुआ ?”

“आज मजूरी नहीं मिली। अब कैसे चलेगा ?”

“ऐं, मजूरी नहीं मिली ! फिर इतनी देर क्यों हुई ?”

प्रकृतिस्थ होकर गोकुल ने उसे अपना हाल सुनाया—

सबेरे घर से निकलते ही गोकुल को सामने खाली घड़ा मिला। देखकर उसके पैर ढीले पड़ गये। सोचा, आज भगवान् ही मालिक है। काम पर पहुँचकर उसने देखा—ओवरसियर साहब आज कुछ श्यादा खफ़ा हैं। इंजीनियर साहब काम देखने आये थे। जान पड़ता है, काम देखने की जगह वे ओवरसियर साहब को ही देख गये थे। अन्याय का वह बोझ उन्होंने दिन भर मजदूरों पर अच्छी तरह उतारा। शाम को मजदूरी देने के समय भी साफ़ इनकार कर दिया—‘आज दाम नहीं दिये

जायेंगे'—उस अदालत के फ़ैसले की तरह, जिसकी कहीं अपील नहीं हो सकती, ओवरसियर साहब का हुक्म मानकर मजदूर अपने-अपने घर लौट गये।

गोकुल लौटा चला आ रहा था कि एक जगह उसे रास्ते में कुछ पड़ा हुआ दिखाई दिया। पास पहुँचने पर मालूम हुआ, रुपये-पैसे के रखने का बटुआ है। उठाकर देखा तो काफ़ी वक़्तदार था। वह सोच में पड़ गया—इसे खोलकर देखना चाहिए या नहीं। न देखने का निश्चय ही उसे दृढ़ करना पड़ा। कौतूहल-निवृत्ति करने के लिए उसने उसे टटोला। टटोलने पर मालूम हुआ—रुपये हैं और बहुत कम भी नहीं। थोड़ी देर तक वह वहीं खड़ा-खड़ा सोचता रहा—इसका क्या करूँ? उसके पिता ने उसे अब तक जो कुछ सिखाया था, उसने उसे इस बात के सोचने का अवसर ही नहीं दिया कि बटुआ अपने पास रख ले। वह यही सोच रहा था कि यह बटुआ किसका है? जब उसे मालूम होगा कि उसका बटुआ खो गया है, तब उसकी क्या दशा होगी? रुपये-पैसे का क्या मूल्य है, यह बात वह कुछ दिनों में ही अच्छी तरह जान गया था। उस व्यक्ति की उस समय की दशा का विचार करके, वह इस प्रकार सिहर उठा, मानो उसी का बटुआ खो गया हो।

उसे ध्यान आया कि कुछ दूर उसने एक गाड़ी जाती हुई देखी थी। उस पर, कान में मोती पिरोई सोने की बाली पहने हुए, एक महतो बैठे थे। सम्भव है यह बटुआ उन्हीं का हो। और किसी के पास इतने रुपये होना आसान भी नहीं है। यहाँ कुएँ पर गाड़ी रोककर उन्होंने पानी पिया होगा और आग जलाकर तमाखू भरी होगी। एक जगह आग जलाई जाने के चिह्न मौजूद थे। उसने इस बात का विचार ही नहीं किया कि गाड़ी तक जाने में कितना समय लगेगा और वह दौड़ पड़ा।

लगभग आधे घंटे के परिश्रम से वह उस गाड़ी के पास पहुँच गया। गोकुल ने हाँकते-हाँकते पूछा—महतो, तुम्हारा कुछ खो तो नहीं गया?

महतो ने चौंककर गाड़ी में दबड़-उधर देखा। साथ त्री जेब पर साथ

रक्खा, तो पाषाण की तरह निस्पन्द हो गये। गोकुल से महतो की वह अवस्था देखी न गई। वह बटुआ दिखाकर, उसने भट से प्रश्न कर दिया—यह तुम्हारा है ?

एक क्षण में ही जीवन और मृत्यु का द्वन्द्व-सा हो गया। मानो बिजली के खटके से प्रकाश बुझाकर, घर फिर से उद्दीप्त कर दिया गया हो ! महतो ने कहा—भगवान् तुझे सुखी रखे भैया। इसे कहाँ पाया ?

रास्ते में पड़ा था। इसमें कितने रुपये हैं ?

महतो ने हिसाब लगाकर बताया—बयालीस रुपये, एक अठन्नी, एक घिसी हुई बेकाम दुअन्नी, दस या बारह आने पैसे, एक कागज, एक चाँदी का छल्ला—

गोकुल ने बटुआ खोलकर रुपये गिने। सब ठीक निकले। बटुआ हाथ में लेकर महतो की आँखों में आँसू भर आये। बोले—इतनी बड़ी रकम पाकर भी, जिसे उसका लोभ न हो; भैया, मैंने ऐसा आदमी आज तक नहीं देखा। यदि किसी और को यह बटुआ मिलता, तो मेरा मरण हो जाता। मेरा रोम-रोम असीष रहा है, भगवान् तुम्हें सदा सुखी रखें। यह कहकर महतो ने, बटुए से निकालकर, गोकुल को दो रुपये देने चाहे। उसने सिर हिलाकर कहा—मेरे बप्पा ने किसी से भीख लेने के लिए मुझे मना कर दिया है। मुफ्त के ये रुपये मैं न लूँगा।

महतो के सजल नेत्र विस्मय से खुले ही रह गये। गोकुल थोड़ी ही देर में उस अन्धकार में उनकी आँखों से ओझल हो गया।

सब वृत्तान्त सुनाकर गोकुल अपराधी की भाँति खड़ा होकर बोला—“बप्पा, आज खाने के लिए कुछ नहीं है। महतो से कुछ उधार माँग लाता, तो सब ठीक हो जाता। मेरी समझ में यह बात उस समय आई ही नहीं।

बुद्धन की आँखों से भर-भर आँसू भरने लगे। गोकुल को अपनी दोनों भुजाओं में भरकर, उसने छाती से लगा लिया। आनन्दातिरेक ने उसका कण्ठावरोध कर दिया। उसे मालूम हुआ कि उसके क्षुधित और

निर्जीव शरीर में प्राणों का संचार हो गया है। उसे जिस तृप्ति का अनुभव होने लगा, वह दो-एक दिन की तो बात ही क्या, जीवन भर की क्षुधा शान्त कर सकती है। धन-सम्पत्ति, मान और बड़ाई सब उसे तुच्छ-से प्रतीत होने लगे। मानो एकाएक उसके सब दुःख-रोग दूर हो गये हैं। अब वह बिना किसी चिन्ता के मृत्यु का आलिङ्गन इसी क्षण कर सकता है।

बड़ी देर में अपने को सँभालकर बुद्धन बोला—“अच्छा ही किया बेटा, जो तू महतो से रुपये उधार नहीं लाया। वह उधार माँगना भी एक तरह का माँगना ही होता। भगवान् ने तुझे ऐसी बुद्धि दी है, मैं तो यही देखकर निहाल हो गया। दो-एक दिन की भूख हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती। जिस तरह चातक अपने प्राण देकर भी मेघ के सिवा किसी दूसरे का जल लेने का व्रत नहीं तोड़ता, उसी तरह तू भी ईमानदारी की टेक न छोड़ना। मुझे मालूम हो गया कि यह तू मुझसे भी अच्छी तरह जानता है। फिर भी कहता हूँ, सदा ऐसी ही मति रखना। चाहे जितनी बड़ी विपत्ति पड़े, अपनी नियत न डुलाना।”

ऊपर चातक-पुत्र सुन रहा था। उसकी आँखों से भी भरभर आँसू भरने लगे। बड़ी कठिनता से वह रात बिता सका। पौ फटते ही बड़े सबेरे वह फिर उड़ा, परन्तु आज वह विपरीत दिशा को चला; उसी दिशा को जिधर से वह आया था। उसकी उड़ान पहले से तेज हो गई थी, फिर भी अपने कोटर तक पहुँचने में उसे चार दिन की जगह सात दिन लग गये। दूसरे दिन से ही मेघों ने उठकर ऐसी भड़ी लगा दी कि बीच-बीच में कई जगह रुककर ही वह वहाँ तक पहुँच सका।

११—शरणगत

[श्री वृन्दावनलाल वर्मा]

रज्जब अपना रोजगार करके ललितपुर लौट रहा था। साथ में स्त्री थी; और गाँठ में दो-तीन सौ की बड़ी रकम। मार्ग बीहड़ था, और सुनसान। ललितपुर काफ़ी दूर था। बसेरा कहीं न कहीं लेना ही था, इसलिए इसने मड़पुरा नामक गाँव में ठहर जाने का निश्चय किया। उसकी स्त्री को बुझार हो आया था, रकम पास में थी और बेलगाड़ी किराये पर करने में खर्च ज्यादा पड़ता, इसलिए रज्जब ने उस रात आराम कर लेना ही ठीक समझा।

परन्तु ठहरता कहाँ? जात छिपाने से काम नहीं चल सकता था। उसकी पत्नी नाक और कानों में चाँदी की बालियाँ डाले थी और पैजामा पहने थी। इसके सिवा गाँव के बहुत-से लोग उसको पहचानते भी थे। वह उस गाँव के बहुत-से कर्मण्य और अकर्मण्य द्वार खरीद चुका था।

अपने जानकारों से उसने रात भर के बसेरे के लायक स्थान की याचना की। किसी ने भी मंजूर न किया। उन लोगों ने अपने द्वार रज्जब की अलग-अलग और छिपे-लुके बेचे थे। ठहराने में तुरन्त ही तरह-तरह की खबरें फैलतीं, इसलिए सबने इनकार कर दिया।

गाँव में एक गरीब ठाकुर रहता था। थोड़ी-सी ज़मीन थी, जिसको तिसात जोते हुए थे। निज का हल-बैल कुछ भी न था। लेकिन अपने किसानों से दो-तीन साल का पेशगी लगान वसूल कर लेने में, ठाकुर को किसी विशेष बाधा का सामना नहीं करना पड़ता था। छोटा-सा मकान था, परन्तु उसको गाँववाले 'गढ़ी' के आवर-व्यंजक शब्द से पुकारा करते थे। और ठाकुर को डर के मारे 'राजा' शब्द से सम्बोधित करते थे।

शामत का मारा रज्जब इसी ठाकुर के दरवाजे पर अपनी ज्वर-प्रस्त पत्नी को लेकर पहुँचा।

ठाकुर पौर में बैठा हुक्का पी रहा था। रज्जब ने बाहर से ही सलाम करके कहा—“दाऊजू, एक दिनती है।”

ठाकुर ने बिना एक रत्ती भर इधर-उधर हिले-डुले पूछा—“क्या?”

रज्जब बोला—“मैं दूर से आ रहा हूँ। बहुत थका हुआ हूँ। मेरी औरत को जोर से बुलार आगया है। जाड़े में बाहर रहने से न जाने इसकी क्या हालत हो जायगी, इसलिए रात भर के लिए कहीं दो हाथ जगह दे दी जाय।”

“कौन लोग हो?” ठाकुर ने प्रश्न किया।

“हूँ तो क़साई।” रज्जब ने सीधा उत्तर दिया। चेहरे पर उसके बहुत गिड़गिड़ाहट थी।

ठाकुर की बड़ी-बड़ी आँखों में कठोरता छा गई। बोला—“जानता है यह किसका घर है? यहाँ तक आने की हिम्मत कैसे की तूने?”

रज्जब ने आशा भरे स्वर में कहा—“यह राजा का घर है, इसी लिए शरण में आया हूँ।”

तुरन्त ठाकुर की आँखों से कठोरता गायब हो गई। ज़रा नरम स्वर में बोला—“किसी ने तुझको बसेरा नहीं दिया?”

“नहीं महाराज”, रज्जब ने उत्तर दिया—“बहुत कोशिश की, परन्तु मेरे छोटे पेशे के कारण कोई सीधा नहीं हुआ।” और वह दरवाजे के बाहर ही एक कोने से चिपटकर बैठ गया। पीछे उसकी पत्नी कराहती, काँपती हुई, गठरी-सी बनकर सिमट गई।

ठाकुर ने कहा—“तुम अपनी चिलम लिये हो?”

“हाँ, सरकार।” रज्जब ने उत्तर दिया।

ठाकुर बोला—“तब भीतर आ जाओ और तमाखू अपनी चिलम से पी लो। अपनी औरत को भी भीतर कर लो। हमारी पौर के एक कोने में पड़े रहना।”

जब दोनों भीतर आगये, ठाकुर ने पूछा—“तुम कब यहाँ से उठकर चले जाओगे ?” जवाब मिला—“अंधेरे में ही महाराज ! खाने के लिए रोटियाँ बाँधे हैं, इसलिए पकाने की जरूरत न पड़ेगी।”

“तुम्हारा नाम ?”

“रज्जब।”

(२)

थोड़ी देर बाद ठाकुर ने रज्जब से पूछा—“कहाँ से आ रहे हो ?”

रज्जब ने स्थान का नाम बतलाया।

“वहाँ किसलिए गये थे ?”

“अपने रोज़गार के लिए।”

“काम तो तुम्हारा बहुत बुरा है।”

“क्या कल, पेट के लिए करना ही पड़ता है ! परमात्मा ने जिसके लिए जो रोज़गार मुकर्रर किया है, वही उसको करना पड़ता है।”

“क्या नफ़ा हुआ ?” प्रश्न करने में ठाकुर को ज़रा संकोच हुआ और प्रश्न का उत्तर देने में रज्जब को उससे बढ़कर।

रज्जब ने जवाब दिया—“महाराज, पेट के लायक कुछ मिल गया है—यों ही।”

ठाकुर ने इस पर कोई ज़िद नहीं की।

रज्जब एक क्षण बाद बोला—“बड़े भोर उठकर चला जाऊँगा। तब तक घर के लोगों की तबीअत भी अच्छी हो जायगी।”

इसके बाद दिन भर के थके हुए पति-पत्नी सो गये। काफ़ी रात गये कुछ लोगों ने एक बँधे इशारे से ठाकुर को बाहर बुलाया। फटी-सी रताई ओढ़े ठाकुर बाहर निकल आया।

आगन्तुकों में से एक ने धीरे से कहा—“दाऊजू, आज तो ख़ाली हाथ लौटे हैं। कल संध्या का सगुन बैठा है।”

ठाकुर ने कहा—“आज जरूरत थी। ख़ैर, कल देखा जायगा। क्या कोई उपाय किया था ?”

“हाँ”, आगन्तुक बोला—“एक क़साई रुपये की मोट बांधे इसी ओर आया है। परन्तु हम लोग ज़रा देर में पहुँचे। वह खिसक गया। कल देखेंगे। ज़रा जल्दी।”

ठाकुर ने घृणा-सूचक स्वर में कहा—“क़साई का पैसा न छुयेंगे।”
“क्यों?”

“बुरी कमाई है।”

“उसके रुपयों पर क़साई थोड़े ही लिखा है।”

“परन्तु उसके व्यवसाय से वह रुपया दूषित हो गया है।”

“रुपया तो दूसरों का ही है। क़साई के हाथ में आने से रुपया क़साई का नहीं हुआ।”

“मेरा मन नहीं मानता, वह अशुद्ध है।”

“हम अपनी तलवार से उसको शुद्ध कर लेंगे।”

ज़्यादा बहस नहीं हुई। ठाकुर ने कुछ सोचकर अपने साथियों को बाहर का बाहर ही ढाल दिया।

भीतर देखा, क़साई सो रहा था और उसकी पत्नी भी।

ठाकुर भी सो गया।

सबेरा हो गया, परन्तु रज्जब न जा सका। उसकी पत्नी का बुझार तो हलका हो गया था, परन्तु शरीर भर में पीड़ा थी और वह एक क़दम भी नहीं चल सकती थी।

ठाकुर उसे वहीं ठहरा हुआ देखकर क्रुपित हो गया। रज्जब से बोला—“मैंने ख़ूब मेहमान इकट्ठे किये हैं! गाँव भर थोड़ी देर में तुम लोगों को मेरी पोर में टिका हुआ देखकर, तरह-तरह की बकवास करेगा। तुम बाहर जाओ, इसी समय।”

रज्जब ने बहुत बिनती की, परन्तु ठाकुर न माना। यद्यपि गाँव भर उसके दबदबे को मानता था, तथापि अव्यक्त लोक-मत का दबदबा

उसके भी मन पर था। इसलिए रज्जब माँ के बाहुर सपत्नीक एक पेड़ के नीचे जा बैठे और हिन्दू-मात्र को मन ही मन कोसने लगा।

उसे आशा थी कि पहर-आध पहर में उसकी पत्नी की तबीयत इतनी स्वस्थ हो जायगी कि वह वेदल यात्रा कर सकेगी, परन्तु ऐसा न हुआ। तब उसने एक गाड़ी किराये पर कर लेने का निर्णय किया।

मुश्किल से एक चार काफ़ी किराया लेकर ललितपुर गाड़ी ले जाने के लिए राजी हुआ। इतने में दोपहर हो गई। उसकी पत्नी को जोर का बुखार हो आया। वह जाड़े के मारे धर-धर काँप रही थी; इसी कि रज्जब की हिम्मत उसी समय ले जाने की न थी। चलने में अधिक हवा लगने के भय से रज्जब ने उस समय तक के लिए यात्रा को स्थगित कर दिया, जिस समय तक उस बेचारी की कम से कम कँपकँपी बन्द न हो जाय।

घंटे-डेढ़ घंटे बाद उसकी कँपकँपी तो बन्द हो गई, परन्तु ज्वर बहुत तेज हो गया। रज्जब ने अपनी पत्नी को गाड़ी में डाल दिया और गाड़ीवान से जल्दी चलने को कहा।

गाड़ीवान बोला—“दिन भर तो यहीं लगा दिया! अब जल्दी चलने को कहते हो।”

रज्जब ने मिठास के स्वर में उससे फिर जल्दी करने के लिए कहा।

वह बोला—“इतने किराये में काम नहीं चल सकेगा। अपना रुपया वापस लो। मैं तो घर जाता हूँ।”

रज्जब ने दाँत पीसे। कुछ क्षण चुप रहा। सचेत होकर कहने लगा—“भाई, आज्ञात सबके ऊपर आती है। मनुष्य, मनुष्य को सहारा देता है, जानवर तो देते नहीं। तुम्हारे भी बाल-बच्चे हैं। कुछ दया के साथ काम लो।”

कमाई को दया पर ध्याएयान देते सुनकर, गाड़ीवान को हँसी आ गई।

उसको टस से मस न होता देखकर, रज्जब ने और मंसे दिये। तब उसने गाड़ी हाँकी।

(४)

पाँच-छः मील चलने के बाद संध्या हो गई। गाँव कोई पास में न था। रज्जब की गाड़ी धीरे-धीरे चली जा रही थी। उसकी पत्नी बुझार में बेहोश-सी थी। रज्जब ने अपनी कमर टटोली। रकम सुरक्षित बँधी पड़ी थी।

रज्जब को स्मरण हो आया कि पत्नी के बुझार के कारण अंटी का बोझ कम कर देना पड़ा है और स्मरण हो आया गाड़ीवान का वह हूठ, जिसके कारण उसको कुछ पैसों का व्यर्थ ही देने पड़े थे। उसको गाड़ीवान पर क्रोध था, परन्तु उसको प्रकट करने की उस समय उसके मन में इच्छा न थी।

बातचीत करके रास्ता काटने की कामना से उसने वार्तालाप आरम्भ किया—

“गाँव तो यहाँ से दूर मिलेगा।”

“बहुत दूर। वहीं ठहरेंगे।”

“किसके यहाँ?”

“किसी के यहाँ भी नहीं। पेड़ के नीचे। कल सबेरे ललितपुर चलेंगे।”

“कल का फिर पैसा माँग उठना।”

“कैसे माँग उठूँगा? किराया ले चुका हूँ। अब फिर कैसे माँगूँगा?”

“जैसे आज गाँव में हूठ करके माँगा था। बेटा! ललितपुर होता, तो बतला देता।”

“क्या बतला देते? क्या सेंटमेंट गाड़ी में बैठना चाहते थे?”

“क्यों बेटे, क्या रुपये लेकर भी सेंटमेंट का बैठना कहता है? जानता है, मेरा नाम रज्जब है! अगर बीच में गड़बड़ करेगा तो यहीं छुरी से काटकर कहीं फेंक दूँगा और गाड़ी लेकर ललितपुर चल दूँगा।”

रज्जब क्रोध प्रकट करना नहीं चाहता था, परन्तु शायद अकारण ही वह भली भाँति प्रकट हो गया।

गाड़ीवान ने डधर-उधर देखा। अँधेरा हो गया था। चारों ओर सुनसान था। आसपास भाड़ी खड़ी थी। ऐसा जान पड़ता था, कहीं से कोई अब निकला, और अब निकला ! रज्जब की बात सुनकर उसकी हड्डी कांप गई। ऐसा जान पड़ा, मानो पसलियों में उसकी ठंडी छुरी छू रही हो।

गाड़ीवान चुपचाप बैलों को हाँकने लगा। उसने सोचा—गाँव के आते ही गाड़ी छोड़कर नीचे खड़ा हो जाऊँगा और हल्ला-गुल्ला करके गाँववालों की मदद से अपना पीछा रज्जब से छुड़ाऊँगा। रुपये-पैसे भले ही वापस कर दूँगा, परन्तु और आगे न जाऊँगा। कहीं सचमुच मार्ग में मार डाले !

गाड़ी थोड़ी दूर और चली होगी कि बैल ठिठककर खड़े हो गये। रज्जब सामने न देख रहा था, इसलिए ज़रा अकड़कर गाड़ीवान से बोला—“क्यों बे बदमाश, सो गया क्या ?”

अधिक कड़क के साथ, सामने रास्ते पर खड़ी हुई एक टुकड़ी में से, किसी के कठोर कंठ से निकला—“खबरदार, जो आगे बढ़ा !”

रज्जब ने सामने देखा कि चार-पाँच आदमी बड़े-बड़े लट्ठ बाँधकर, न जाने कहाँ से आ गये हैं। उनमें तुरन्त ही एक ने बैलों की जुआरी पर एक लट्ठ पटका और दो दायें-बायें आकर रज्जब पर आक्रमण करने को तैयार हो गये।

गाड़ीवान गाड़ी छोड़कर नीचे जा खड़ा हुआ। बोला—“मालिक मैं तो गाड़ीवान हूँ। मुझसे कोई सरोकार नहीं।”

“यह कौन है ?” एक ने गरजकर पूछा।

गाड़ीवान की घिघी बँध गई। कोई उत्तर न दे सका।

रज्जब ने कमर की गाँठ को एक हाथ से सँभालते हुए, बहुत ही विनम्र स्वर में कहा—“मैं बहुत गरीब आदमी हूँ। मेरे पास कुछ नहीं है। मेरी औरत गाड़ी में बीमार पड़ी है। मुझे जाने दीजिए।”

उन लोगों में से एक ने रज्जब के सिर पर लाठी उबारी। गाड़ीवान खिसकना चाहता था कि दूसरे ने उसको पकड़ लिया।

अब उसका मुँह खुला। बोला—“महाराज, मुझको छोड़ दो। मैं तो किराये पर गाड़ी लिये जा रहा हूँ। गाँठ में खाने के लिए तीन-चार आने पैसे ही हैं।”

“और यह कौन है ? बतला !” उन लोगों में से एक ने पूछा।

गाड़ीवान ने तुरन्त उत्तर दिया—“ललितपुर का एक क़साई।”

रज्जब के सिर पर जो लाठी उबारी गई थी, वह वहीं रह गई। लाठीवाले के मुँह से निकला—“तुम क़साई हो ? सच बतलाओ !”

“हाँ, महाराज”, रज्जब ने सहसा उत्तर दिया—“मैं बहुत गरीब हूँ। हाथ जोड़ता हूँ; मुझको मत सताओ। मेरी औरत बहुत बीमार है।” औरत जोर से कराही।

लाठीवाले उस आदमी ने अपने एक साथी से कान में कहा—“इसका नाम रज्जब है। छोड़ो ! चलें यहाँ से।”

उसने न माना। बोला—“इसका खोपड़ा चकनाचूर करो बाऊजू, यदि ऐसे न माने तो ! असाई-क़साई हम कुछ नहीं मानते।”

“छोड़ना ही पड़ेगा”, उसने कहा—“इस पर हाथ नहीं पसारेंगे, और न पैसा छुयेंगे।”

दूसरा बोला—“क्या क़साई होने से ? बाऊजू, आज तुम्हारी बुद्धि पर पत्थर पड़ गये हैं—मैं देखता हूँ।” और, तुरन्त लाठी लेकर गाड़ी पर चढ़ गया। लाठी का एक सिरा रज्जब की छाती में अड़ाकर उसने तुरन्त रुपया-पैसा निकालकर दे-देने का हुक्म दिया। नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने ज़रा तीव्र स्वर में कहा—“नीचे उतर आओ ! उससे मत बोलो ! उसकी औरत बीमार है।”

“ही, मेरी बला से”, गाड़ी में चढ़े हुए लठेल ने उत्तर दिया—
“मे कसाइयों की बवा हूँ।” और उसने रज्जब की फिर धमकी दी।

नीचे खड़े हुए उस व्यक्ति ने कहा—“तब रवार, जी उसे छुआ !
नीचे उतरी, महीं तो तुम्हारा सिर खूर किये देता हूँ ! वह मेरी शरण
आया था !”

गाड़ी पर चढ़ा लठेल भस्मसी मारकर नीचे उतर आया।

नीचेवाले व्यक्ति ने कहा—“सब लोग अपने-अपने घर जाथी।
राहगोरों को तंग मत करो।” फिर गाड़ीवान से बोला—“जा रे, हाँकि
ले जा गाड़ी ! ठिकाने तक पहुँचा आना ; सब लौटमा ! महीं ती अपनी
खेर मत समझियो ! और तुम दोनों में से किसी ने भी कभी इस बात
की घबोई कहीं की, तो भूसी की आंग में जलाकर खाक कर दूंगा।”

गाड़ीवान गाड़ी लेकर बढ़ गया। उन लोगों में से जिस आदमी
ने गाड़ी पर चढ़कर रज्जब के सिर पर लाठी तानी थी, उसने क्षुब्ध स्वर
में कहा—

“दाऊजू, आगे से कभी आपके साथ न आऊँगा।”

दाऊजू ने कहा—“न आना। मैं अकेले ही बहुत कर गुजरता हूँ।
परन्तु बुंदेला शरणागत के साथ धात नहीं करता ; इस बात की गाँठ
बाँध लेना।”

१२—पं० बिलवासी मिश्र

[श्री अन्नपूर्णानन्द वर्मा]

जम्बू नामक द्वीप के भारतवर्ष नामक खंड में—अवध के ऊपर और तराई के नीचे—हिन्दुओं का एक प्रसिद्ध तीर्थ-स्थान है, जिसका नाम है बहराइच। यहाँ गाजी मियाँ नाम के एक सिद्ध महापुरुष हो गये हैं जिनके दर्शन-पूजन का बड़ा माहात्म्य माना जाता है। हर साल हजारों हिन्दू यहाँ आकर परमार्थ-चिन्तन का लाभ उठाते हैं। एक अर्थशास्त्री ने पत्ता लगाया है कि जिसने फूल यहाँ गाजी मियाँ की दरगाह में प्रति-वर्ष हिन्दू-स्त्रियों चढ़ाती है उन्हें बटोरकर यदि उनसे शहद निकाला जाय तो इतना काफ़ी शहद तैयार हो सकता है कि हिन्दू-महासभा उसे अपने प्रस्तावों में लगाकर सदियों तक आनन्दपूर्वक चाट सकती है।

यहीं बहराइच में मेरी शादी की बात पक्की हो रही थी और देन-लेन की चर्चा छिड़ गई थी। लड़की के पिता के पास अकूत धन था। अभी तक इतना तय पाया था कि शादी में मुझे एक बीबी, दो इलाका, तीन मोटर, चार घोड़ा, पाँच गाय, छः हजार नक़द और सात हजार का जेवर मिलेगा।

यह सब बहुत ठीक था, सिर्फ़ एक बात गड़बड़ थी। इस संसार में गुलाब में काँटा और मिसरी में फाँसवाली बात हर जगह पाई जाती है। मुझे उड़ती हुई खबर लगी कि लड़की रूप-रंग में उन स्त्रियों के समान है जो रावण-द्वारा नियुक्त होकर अशोक-वाटिका में बेबी सोना पर पहरा दिया करती थीं।

मैंने तो समझा था कि सोने की चिड़िया हाथ लगी, पर इस समा-चार ने मेरी सारी आशाओं पर पानी फेर दिया। इस बात पर पूरा विश्वास कर लेने के पहले अब यह जरूरी हो गया कि इसकी काफ़ी छान-

बीन की जाय। अपने किसी खास आदमी को भेजकर इसका अनुसन्धान कराना उचित जान पड़ा। मैंने इस सम्बन्ध में अपने मित्र पं० बिलवासी मिश्र से मदद लेने का निश्चय किया।

लड़कपन में बिलवासी जी से मेरा धौल-धप्पड़ का रिश्ता रहा और अब वे मेरे खास दोस्तों में हैं। मेरी तरह वे भी अपने घर में पड़े-पड़े सिर्फ भोजन और डासन से काम रखते हैं। भेद इतना है कि वे लेखक और कवि हैं और मैं एक भला आदमी हूँ। उन्होंने अपनी लेखनी के बूते पर साहित्य-बन-विहंग और कवि-कथक आदि की उपाधियाँ प्राप्त की हैं। ये लाखों में एक आदमी हैं। जिस समय इनका पूरा परिचय संसार को प्राप्त हो जायगा, उस समय लोग गली-गली इनकी जय बोला करेंगे। कुछ काम इनके ऐसे हैं जिन्हें अगर इतिहास की अमर सामग्री कही जाय तो अत्युक्ति न होगी। उदाहरण के लिए ये लालटेन की बत्ती अपने अस्तुरे से काटते हैं। अब सोचिए कि दुनिया में एक-से एक बुद्धिमान् हो गये हैं, पर किसी को यह बात नहीं सूझी थी कि अस्तुरे से लालटेन की बत्ती भी काटी जा सकती है। अकसर कोबरा पालिश और भाड़ू की सीक से इन्होंने दावात-कलम का काम लिया है। ठाकुर जी की आरती इन्होंने कई बार मोमबत्ती से की है। पान में सुपारी नहीं रहती तो छुहारे का बीज काटकर डाल लेते हैं। सूजे से दाँत खोदते भी मैंने इन्हें कई बार देखा है।

मैं दोपहर के समय इनके मकान पर पहुँचा। वे खाना खा चुके थे और मुँह में पान भरकर बाहर बैठक में लेटे हुए जुगाली कर रहे थे।

मैंने कहा—“नमस्कार बिलवासी जी !”

उन्होंने उत्तर दिया—“ऊँ-ऊँ।”

“कृशल-समाचार कहिए।”

“ऊँ-ऊँ-ऊँ।”

“इस समय आप क्या कर रहे हैं ?”

“ऊँ-ऊँ-ऊँ।”

“आपसे एक राय करनी है।”

“ऊँ-ऊँ-ऊँ।”

मैं झल्ला गया; मैंने कहा—“आपकी जान में सिवा ऊँ के और भी कोई ऐसा शब्द है जिससे आप मेरा उत्तर दे सकें? आपको जानना चाहिए कि मैं पशुओं की बोली नहीं समझता।”

वे थोड़ी देर मेरी ओर इस प्रकार देखते रहे जैसे मुझे वे कोई बरसाती कीड़ा समझते हों जो ध्यर्थ उनके कानों के पास भन-भन कर रहा था। फिर पान घोंटकर उन्होंने अपना मुँह खाली किया और बोले—“लाला घासीराम जी! आप किसी भले आदमी से ऐसी आशा क्यों करते हैं कि जब वह भोजन के उपरान्त मुँह में पान भरकर लेटा हुआ पेट पर हाथ फेर रहा है, उस समय वह आपकी बातों का उत्तर सिवाय ऊँ के अन्य किस प्रकार से देगा।”

“खैर जाने दीजिए, मैंने समझा था कि आपकी जीभ एँठ गई है। मैं इस वजह इसलिए आया कि मुझे आपसे एक ज़रूरी काम है।”

“काम के नाम से मैं घबराता हूँ। कोई राय देनी हो तो लेटे-लेटे दे सकता हूँ।”

“मैं चाहता हूँ कि आप मेरी भावी पत्नी को देखकर उसकी सूरत-शकल के बारे में अपनी राय दें।”

“बुला लाइए उन्हें। वे आपकी बीबी होनेवाली है—इसलिए उनके साथ सहानुभूति भी प्रकट करूँगा और साथ ही अपनी राय भी जाहिर कर दूँगा। कहाँ हैं—क्या बाहर खड़ी हैं?”

“आप भी पूरे अहमक हैं। वे बहराइच में रहती हैं, वहीं जाकर आपको उन्हें किसी प्रकार देख आना है।”

जाने का नाम सुनकर बिलवासी जी की ठीक वही दशा हुई जो फूँक निकल जाने पर फ़ुटबाल की होती है। पर मेरे विशेष आग्रह करने पर उन्होंने स्वीकार कर लिया और उसी दिन शाम की गाड़ी से रवाना भी हो गये।

चोथे दिन सुबह मुझे दो पत्र मिले, एक बिलवासी जी का, दूसरा लड़की के पिता का। बिलवासी जी का पत्र में ज्यों का त्यों उद्धृत कर देता हूँ। उन्होंने लड़की के सम्बन्ध में केवल इतना लिखा था जो मेरे लक्ष्मण से बहुत काफ़ी था :—

तावा-सी तमाल-सी तमाखू-सी तिलकुट-सी

पावस अमावस के रैन अन्धकार-सी।

कागा-सी करइत-सी काजल-सी कालिका-सी,

कोइल-सी कोयला-सी खासी कोलतार-सी॥

‘बिलवासी’

लड़की के पिता का पत्र पढ़कर मैं दंग रह गया। उसमें लिखा था—‘भाज एक ब्राह्मण देवता कहीं से घूमते-फिरते मेरे यहाँ आगये थे। वे सामुद्रिक शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् जान पड़ते थे। उन्होंने अपना नाम बिलवासी मिश्र बताया था। उन्होंने हम सबका हाथ देखा। मेरी लड़की का हाथ देखकर उन्होंने बतलाया कि इसकी शादी जिसके साथ तब हो रही है वह महामूर्ख, लम्पट और दुराचारी है और छः महीने के अन्दर उसकी मृत्यु अवश्य हो जायगी, या तो चुल्हू भर पानी में या काले पानी में। ईश्वर की अनेक धन्यवाद हैं कि आपके बारे में ये बातें पहले मालूम हो गईं। मैं अपनी लड़की को भाग में नहीं भोंक सकता। आपके साथ उसके विवाह की जो बातचीत चल रही थी उसे अब भूल जाइए।’

मैं अभी तक निश्चय नहीं कर पाया हूँ कि उस समय मुझे पं० बिलवासी मिश्र को धन्यवाद देना उचित था या शाप। इसमें सन्देह नहीं कि लड़की को देखने का उन्होंने अच्छा हीका निकाला, पर उसके घरवालों के भाग में मेरे सम्बन्ध में ऐसी माहि्यात और ऊल-झलूल बातों के कहने का उन्हें कोई अधिकार न था।

१३—अपराध

[श्री विनोदशंकर व्यास]

काशी

५-१०-२५

प्रिय भाई केशव,

तुम्हारा पत्र दो मास से नहीं आया। मुझे दुःख है। कभी दो-चार लाइन तो लिख दिया करो! मैं जानता हूँ, तुम्हें अवकाश नहीं मिलता। तुम दिन-रात अपनी धुन में मस्त रहते हो, तुम्हारी सकलता का समाचार मुझे समाचारपत्रों से ज्ञात हो जाता है।

विश्वास है; पत्र न लिखने पर भी तुम मुझे भूल नहीं सकते। अब तुम दूसरे क्षेत्र में हो और मैं दूसरे! या यों कहना चाहिए कि तुम स्वतन्त्र हो, और मैं परतन्त्र।

तुम समाज से खूले मैदान लड़ रहे हो, यह तुम्हारा ही साहस है। मेरा तो गृहस्थी के बन्धन में पड़कर उत्साह ही जाता रहा। बैठा विचार किया करता हूँ—कट्टर हिन्दू-समाज में फूला-फला हूँ, उसकी बुराई जानते हुए भी कुछ नहीं कर सकता। एक दिन जूता पहनकर पानी पी लिया था, तो चार दिनों तक मा बोली नहीं थीं। तुम्हीं कहो, घर में कलह कर्क या समाज से भगड़ा?

आजकल घर में स्त्रियाँ मुझसे अप्रसन्न हैं। मेरा अपराध यह है कि इधर मैंने 'मञ्जुला' नाम की एक दासी को नियुक्त किया है। उसका किस्सा इस तरह है—एक दिन सन्ध्या-समय मैं बरामदे में बैठा हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। गंगा ने आकर कहा—सरकार, एक औरत नौकरी के लिए आई है, उससे किसी ने कह दिया है कि कोठी में एक दासी की जरूरत है।

मंने कहा—तङ्ग न कर, इस समय पढ़ रहा हूँ।

उसकी ओर ध्यान न देकर मैं पढ़ने लगा। पुस्तक की तरफ से ध्यान हटा; मंने देखा, वह चुपचाप खड़ा है। मंने समझा, इसमें कुछ रहस्य है। मंने कहा—तु क्यों खड़ा है गङ्गा ?

उसने डरते हुए कहा—सरकार, वह बड़ी गरीब मालूम होती है, दो दिनों की भूखी है।

मंने कहा—अच्छा, उसे यहाँ ले आ।

वह बड़ी प्रसन्नता से आगे बढ़ा। लौटकर आया, उसके पीछे वह स्त्री खड़ी हो गई। उसके मंले वस्त्र पुराने और कई जगह फटे हुए थे।

मंने ध्यान से उसे देखा, उसका सौन्दर्य दरिद्रता से प्रणय-भिक्षा माँग रहा था। उसकी डबडबाई आँखें जैसे कुछ बातें कर रही हों। मैं समझ गया, इस स्त्री का करुण रूप ही गङ्गा की सहानुभूति का कारण हुआ है।

मंने कहा—गंगा, यह नौकरी चाहती है, इसकी जमानत कौन करेगा ?

गंगा उस स्त्री की तरफ देखने लगा। स्त्री ने धीमे स्वर में कहा—
मैं इस शहर में कोई नहीं जानता। मैं अभागिनी हूँ, भूखी हूँ।

मंने कहा—इस तरह मैं कैसे रख सकता हूँ, जिम्मेदारी का काम है।

मेरा उत्तर पाकर वह कुछ न बोली और जाने लगी। उसकी आशा का सूर्य अस्त होने जा रहा था।

मुझे कौतूहल हुआ। मंने कहा—गंगा, उसे यहाँ ले आ। वह फिर आकर मौन खड़ी हो गई।

गंगा कहने लगा—सरकार, यह चोर नहीं मालूम पड़ती; भाग्य की सताई हुई है।

मंने कहा—अच्छा, मैं इसे नौकरी देता हूँ। जनाने मकान में भेज दे।

(१५७)

उसकी निरीहता पर मुझे तरस आया और बिना किसी जमानत के मैंने उसे नियुक्त कर लिया।

बोलो केशव ? ठीक किया या नहीं ?

तुम्हारा—

‘प्रभात’

(२)

काशी

१२-१०-२७

भाई केशव !

तुम्हारा पत्र मुझे कल मिला था। सब समाचार विदित हुए। तुमने लिखा है कि समाज में अभी ऐसी-ऐसी पतिता और निस्सहाय बरिद अबलायें हैं, जिनकी सहायता और उत्थान के नाम लेने से हिन्दू-समाज काटने दीड़ता है।

तुम्हारी इन पंक्तियों को पढ़कर मुझे प्रतीत हुआ, जैसे प्रत्यक्ष मैं तुम अपने स्वाभाविक जोशीले शब्दों में कह रहे हो—निर्लज्ज समाज की बातों पर ध्यान देने से साफ़ दिखाई देता है कि पुरुष-जाति ने अपने सुख और अधिकार सुरक्षित रखने के लिए ही समाज के नियम बनाये हैं। कोई पुरुष शराब पीता है, मांस खाता है, वेश्याओं की जूतियाँ साफ़ करता है और फिर घर में चुपचाप आकर रामानन्दी तिलक लगाकर बैठ जाता है। कोई उस पर ध्यान नहीं देता, और समाज देखकर भी उसका कुछ नहीं कर सकता। और, यदि किसी स्त्री से साधारण अपराध हो गया, तो तत्काल वह समाज से निकाल दी जायगी। मैं पूछता हूँ—वह क्या करेगी ? क्या पेट के लिए वेश्या होना अस्वाभाविक है ?

तुम्हारे वह स्वर अभी तक गूँज रहे हैं। मैं भूला नहीं हूँ। तुम्हारी बातों पर मैं खूब विचार करता हूँ।

तुम स्त्रियों को शिक्षित बनाना चाहते हो—राजनीतिक परिस्थिति को समझाने के लिए, देश की वशा पर आँसू बहाने के लिए, और अपनी सन्तान को साहसी और उद्योगी बनाने के लिए, न कि सुन्दर और साहित्यिक भाषा में प्रेम-पत्र लिखने के लिए !

लौर ! इन विषयों पर तुम्हीं विचार करो, मैं तो अपनी आत्मा से लड़ रहा हूँ। देखूँ, सफल होता हूँ या नहीं। विद्रोह का प्रारम्भ है।

हाँ, तुम्हें मैंने 'मंगला' के सम्बन्ध में कुछ लिखा था। उसकी नई खबर सुनी—घर में स्त्रियाँ कहती हैं कि जब से मङ्गला आई है, तब से कई सामान चोरी हो गये हैं। उसी पर सबका सन्देह है। वह कभी-कभी अकेली बैठकर रोती हुई पाई जाती है, इस पर भी लोग अप्रसन्न रहते हैं।

गङ्गा भी कई बार उसकी मिथा कर चुका है। उसका तात्पर्य मैं समझ गया, मङ्गला को मैंने नीकरो के बीच भग्य वासियों की भाँति कभी हँसते-बोलते नहीं देखा है। हो सकता है, इसी लिए मङ्गला उसकी आँखों में लटकती हो ?

अभी कल की बात है, मङ्गला मेरे बच्चे को खिला रही थी। मैंने बच्चे को बुलाते हुए मङ्गला से कहा—उसे यहाँ ले आ।

वह लेकर आई, बच्चा खेलने लगा। मङ्गला खड़ी थी। मैंने पूछा—मङ्गला, तुम्हारे बारे में बहुत-सी बातें सुनी जाती हैं।

बड़े साहस से उसने कहा—कौन-सी बात सरकार ?

मैंने कहा—तू दिन-रात रोनी सूरत क्यों बनाये रहती है ? अब तो तुझे कोई कष्ट नहीं है ?

उसकी आँखें भर गईं। वह बच्चे को लेकर जाना चाहती थी। मैंने कहा—क्यों, ठीक है ?

उसने अस्पष्ट शब्दों में कहा—हँसी कभी आती नहीं, इसी लिए नहीं हँसती। दुःख मैं रोना ही अच्छा लगता है।

मैंने कहा—तेरे दुःख का कारण ? वहाँ तुझे कष्ट है क्या ?

मुझे कोई कष्ट नहीं है।

तब ?

दूसरे के कष्ट के लिए रोती हूँ।

मैं उसकी तरफ़ देखने लगा; उसने आँखें नीची कर लीं। उसी समय एक दासी ने पुकारा—मङ्गला, बच्चे को ले आ। मङ्गला खसी गई, मैं फिर कुछ भी न पूछ सका।

केशव, मैं बहुत-से स्वभाष्यों का अध्ययन कर चुका हूँ, मुझे किसी के खरित्र का अध्ययन करने में बड़ा आनन्द मिलता है; किन्तु मैं सच कहता हूँ, मङ्गला मुझे विचित्र मालूम पड़ती है।

मङ्गला के सम्बन्ध में अभी तक कुछ नहीं समझ सका हूँ। इतना अवश्य जानता हूँ कि वह दुःखी है, और सो भी अपने लिए नहीं।

ॐ ब पत्र समाप्त करता हूँ, फिर कभी लिखूँगा।

स्नेही—

‘प्रभात’

(३)

काशी

२-११-२७

भैया केशव !

तुमने इस बार दो सप्ताह बाद मेरे पत्र का उत्तर दिया है। तुम बीमार थे, अब अच्छे हो गये, यह जानकर प्रसन्नता हुई।

तुम कब तक निराश प्रेमी की भाँति अपना जीवन व्यतीत करोगे ? पहले तुम कहा करते थे कि मैं सांसारिक विलासमय प्रेम नहीं चाहता। मैं चाहता हूँ पवित्र गंगाजल की तरह निर्मल और शुद्ध प्रेम ! अब देखता हूँ, तुम्हारी बातें सत्य हो रही हैं, और इसी लिए शायद तुम बिबाह नहीं करते। क्यों, क्या अभी तक कोई जिला नहीं ?

मैं तो भाई, प्रेम को तमस्कार करता हूँ। मैंने अपने जीवन में कभी स्वच्छ और पवित्र प्रेम देखा ही नहीं। वास्तव में यह सच कवि की

कम्पना है और अभाव के समय रोने का बहाना है। इतना समझने हुए भी मैं कभी-कभी रोता हूँ, इसी लिए रोने का मर्म जानता हूँ। आह ! रोने में भी कभी-कभी बड़ा मज़ा मिलता है—और ऐसे समय रोने में, जब आँसू पोंछनेवाला भी न हो। रहने दो, ऐसी बातें न लिखूँगा, उलटा तुम हँसी उड़ाओगे।

कलुषित वासनाओं से धुंधले आकाश में चाँदनी छिटकी है। मैं प्रेम-राज्य से निर्वासित हूँ ! मंने आँख भरकर प्रेम देखा नहीं है, जी भरकर उसके सङ्गीत को सुना भी नहीं; किन्तु उसके स्वर मेरे परिचित हैं। मैं उस दर्द को जानता हूँ, अतएव उन दर्दवालों के प्रति मेरी सहानुभूति अवश्य है।

मङ्गला के सम्बन्ध में कुछ लिखकर मैं तुम्हें बतलाता हूँ कि यह मुझे एक नवीन अनुभव हुआ है।

उस दिन अमावस्या की काली रात थी। बड़ा सप्ताटा था। मैं नौ बजे ही सो गया था। आधी रात को शोर हुआ, मैं उठकर बैठ गया। आश्चर्य और उत्सुकता से ध्यान लगाकर सुनने लगा, गंगा जोर से कह रहा था—इसको खूब मारो।

मैं कमरे में शय्या से उठा और बाहर आकर देखने लगा—मेरे तीनों नौकरों ने किसी आदमी को पकड़ा है और उसे मार रहे हैं, उनके सामने मङ्गला खड़ी रो रही है।

मैंने डाँटते हुए कहा—मूर्खों ! तुम लोग क्या कर रहे हो ? इतना शोर क्यों मचाया है ? बात क्या है ? वह कौन है ?

उन सबने उस आदमी को पकड़कर मेरे सामने खड़ा कर दिया। मङ्गला को मेरे सामने आने का साहस न हुआ, वह दूर खड़ी थी।

नौकरों में से गंगा एक साँस में कहता गया—हुजूर, इसने चोरी की है, इसे थाने में भेजना चाहिए। साला बड़ा होशियार है। यही कई बार कोठी का सामान इसी तरह ले गया है।

मैंने कहा—इसने क्या चुराया है ? कैसे चुराया है ?

गंगा ने मेरे सामने एक कम्बल और कुछ कपड़े दिखलाते हुए कहा—इसे ऊपर की खिड़की से मंगला ने फेंका था। मुझे इसकी आहट लग गई थी। मैं उस समय जागता रहा, इसने सलाई वाली थी। ऊपर से धम-से कोई चीज नीचे गिरी। मैंने सचेत होकर द्वार खोला, यह भाग रहा था, मैंने इसे पकड़ा है।

मैंने घूमकर देखा, वह थरथर काँप रहा था; हाथ जोड़कर दया-याचना करने लगा।

मैंने आश्चर्य से कहा—क्या मंगला ने फेंका था ?

सब नौकरों ने एक स्वर में कहा—हाँ सरकार, उसी ने फेंका था।

अपराधी की तरह मंगला मेरे सामने आगई और बड़े साहस से उसने कहा—अपराध मेरा है। मैंने ऊपर से फेंका था, इन्होंने इसे लिया, ये निर्दोष हैं।

लम्प के प्रकाश में मैंने देखा—मंगला की आँखों में बिजली चमक रही थी। वह दरिद्र पुरुष मंगला की तरफ देख रहा था; वह अत्यन्त दुर्बल था, आँखें धँसी थीं, बड़ा डरावना मालूम पड़ता था।

मैंने पूछा—मंगला ने तुझे क्यों दिया ? वह तेरी कौन है ?

वह चुप था। मैंने फिर कहा—बोल ! बताता क्यों नहीं ?

उसने कहा—मैं इसी के लिए जीता हूँ, यह मुझे मरने नहीं देती।

रात्रि के दो बज रहे थे। मैं कुर्सी पर बैठकर विचार करने लगा—इन दोनों का प्रेम है, तभी मंगला ने इसके लिए अपराध किया है। ये लोग दरिद्र हैं; किन्तु इनके पास भी हृदय है। ये प्रेम करना जानते हैं। एक के लिए दूसरा अपना सर्वनाश करने के लिए प्रस्तुत है। अभाव और दरिद्रता ने ही मंगला को चोरी करने के लिए बाध्य किया है।

मैंने कहा—मंगला, यदि तू सच-सच सब हाल बता दे तो मैं तुझे छोड़ दूंगा, तूने इसके लिए क्यों चोरी की ?

उसने सलज्ज करुण स्वर में कहा—हम और ये भागकर अपने देश से चले आये हैं। ये मेरे पति हैं। बहुत दिनों तक नौकरी करते

रहि; किन्तु ये नौकरी भी न कर सके, मेरे पास दिन-रात बैठे रहने में ही वे अपना सब कुछ की बैठे। इससे नौकरी होती नहीं और अब कहीं भिखारी भी नहीं। इसलिए वे ही नौकरी करती हैं। मेरा पैट ली यहाँ अर जाता है, पर इसके लिए धोरी करनी पड़ती है।

मने कहा—और कुछ ?

उसने कहा—इतना ही मेरा अपराध है।

उसकी बातों का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैंने कहा—मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।

वह आदमी मेरी तरफ आश्चर्य से देखते हुए मेरे पैरों पर गिर पड़ा !

मैंने फिर कहा—अब तुम लोग क्या करोगे ? कहीं जाओगे ?

मेरे नोकर आश्चर्य से एक दूसरे की ओर देखने लगे। उसने कहा—संसार में कहीं स्थान नहीं है, कहीं जाऊँगा ?

मंगला की विश्वास था कि अपराध क्षमा करते हुए भी अब मैं उसे अपने यहाँ स्थान नहीं दूँगा।

मने कहा—तुम घबराओ नहीं, मंगला को मैं निकालूँगा नहीं। तुम भी यदि नौकरी करना चाहो, तो मेरे यहाँ रह सकते हो।

वह कुछ बील न सका, फूट-फूटकर रोने लगा।

उस दिन से बीनों मेरे यहाँ बड़े आनन्द से रहने लगे, और सब लोगो की इससे बड़ा अस्तोष है। उनको खटका लगा रहता है; पर मैं निश्चित हूँ कि अब वे धोरी नहीं करेंगे।

तुम्हारी क्या सम्मति है ? क्या मैंने भूल की ?

तुम्हारा—

‘प्रभात’

१४—एक दिन

[श्री जैनेन्द्रकुमार]

रात बीत गई। अगला सबेरा आगया।

मैंने कहा—मा, कैसा जी है ?

मा ने कहा—जी वैसा ही है। बेटा, आज मैं अस्पताल नहीं जा सकूंगी। देह में इतना दम नहीं अब रह गया है। डोली में जाऊँ, किसी में जाऊँ, हार जाती हूँ। साँस फूल आती है, शरीर पीर देने लगता है। बेटा, बवाई से भी कुछ आराम नहीं है। अब तू रहने ही दे। परमात्मा के आसरे छोड़ दे। जाना है, तो मुझे चली ही जाने दे। नाहक तुझे भी दुःख दे रही हूँ, और सबको भी दे रही हूँ।

मैंने तत्परता के साथ कहा—सो क्या है, अम्मा ! अस्पताल क्यों जाना, डाक्टर यहीं देख जायगा।

मा ने कहा—देखेगा, तो हाँ, यहीं देख जायेगा !

मैंने कहा—हाँ, जरूर यहीं देख जायेगा, मा। फिर किस बात की है ?

मा कुछ कहे कि खाँसी का दौरा आ उठा। मैंने मा को माथा पकड़कर संभाल लिया। पर, वह संभाले न संभल पाती थीं। साँस धौंकनी की तरह चलती थी, आँखें माथे में चढ़-चढ़ जाती थीं, और भीतर सब अंजर-पंजर को तोड़ती आती हुई खाँसी कहीं जमे कम्बलत कफ़ को तनिक भी उखाड़कर अपने साथ न ला पाती थी। इससे, खाँसी आती थी, और आती थी। मिनट के मिनट हो गये। मुझ पर क्या-क्या न बीत गया कि अन्त में खाँसी के साथ मौत की गाँठ-सा थोड़ा-सा सफ़ेद कफ़ टूटकर आया, और मा आँख मीचकर मूर्छित हो पड़ीं। मैंने कपड़े से कफ़ पीछा और उन्हें चुपचाप खाट पर लिटा दिया।

मैं भपटकर अपनी मेज पर आगया, कार्ड खींचकर लिखा—

“श्रीमन्,

दिवाली कल की बीत गई। बार-बार लिखने की मेरी शक्ति कब बीत जाय, जानता नहीं.....।”

कि श्री—ने आकर कहा—घी आज शाम तक हो जाय तो हो जाय। खुरच-खुरचकर खैर आज तो कर लूंगी। कल के लिए बिलकुल नहीं है।

मैंने कहा—घी !

उसने कहा—और दूधवाले का अब तीसरा महीना लग जायगा। उसका आदमी आया था।

डाक्टर की पाँच रुपया फ्रीस है, और रुपये का बारह छटाँक घी आता है, और बारह छटाँक घी दो दिन में लग जाता है, और तेरह आने के बावन पैसे होते हैं, पाँच और दो सात होते हैं, और वही जेब में सात पैसे ज़रूर हैं, और दूधवाले का तीसरा महीना लग जायगा...

मैंने जोर से कहा—घी नहीं है तो दन्नत के दन्नत कहा जाता है ! पहले से क्यों नहीं कह कर रखा ?

‘पहले से नहीं कहा ? कब से तो कहती आ रही हूँ।’

मैंने और जोर से कहा—नहीं कहती आ रही। एक बार कहती तो न आ जाता।

उसने धीमे से कहा—तो अब कह रही हूँ, सही। अभी मँगा दो।

मैंने जोर से कहा—और नहीं भी मँगा दूँगा क्या ? घी के बिना मुझसे एक दिन न खाया जायगा।

‘और दूधवाला.....?’

मैंने कहा—फिर वही—हाँ, दूधवाले को भी दिया जायगा। कह दिया, बस दिया जायगा।....

वह लौटकर जाने लगी, और कहती गई,—कल के लिए घी बिलकुल नहीं है।....

और मैंने उसकी पीठ पर चिल्लाकर कहा—हाँ, सुन लिया, सुन लिया ।...

मैं पीठ को कुर्सी पर भली भाँति टिकाकर लेट रहा, और सामने दीवार में देखा... घी रुपये का बारह छटाँक आता है, और डाक्टर की पाँच रुपया फ्रीस है, और इकट्ठी और तीन पैसे जो मिलकर सात होते हैं, सो वे ही सात पैसे जरूर मेरी जेब में हैं ।...

कि मैं एकदम जगा। सामने लेटे हुए कार्ड को पढ़ा। लिखा था—
'श्रद्धास्पद श्रीमन्,

दिवाली कब की बीत गई। बार-बार लिखने की शक्ति मेरी कब बीत जाय, जानता नहीं....।'

खुश होकर मैंने उस कार्ड को अपने पास खींच लिया। लिखा—
'...शक्ति कब एकदम बीत जाय, सच, नहीं जानता। आप नहीं जान सकते ताँबे के हर पैसे की जरूरत में होना क्या चीज है। पर क्या आप मुझसे सुनकर मान भी नहीं सकते कि यह बड़ी चीज है, भारी चीज है। किताब के मेरे पैसे आप....'

मुना, कि घर में कहीं मेरी जरूरत है।

गया, कि बहन ने कहा—देख, भाई, यहाँ आ!

कमरे में ले गई, और दिखाया, एक कोने में रूठा लल्लू बैठा हुआ है। मुंह फूला है, और लड़ता है।

मैंने कहा—क्या है रे?

बहन ने कहा—यह शरम के मारे मदरसे नहीं जाता। मास्टर कहते हैं। और स्लेट उसकी फूट गई है।

लल्लू ने चिल्लाकर कहा—तो मैंने नहीं फोड़ी—हाँ—तो...

मैंने कहा—तो, क्यों रे, मदरसे नहीं जायगा तू?

वह गुम हो बैठा, और बहन ने हँसकर कहा—यह तो नहीं जायगा! देखो न, लड़का होकर शरम सताती है! एक मझी मोली स्लेट लाकर

वे वे, नहीं तो, अच्छी स्लेट रोज-रोज इसे तोड़ने के लिए कौन लाता फिरेगा।

लल्लू ने चिल्लाकर कहा—मैंने नहीं तोड़ी है स्लेट।

बैने कहा—तो चल रे, स्कूल चल, दुपहर आ जायगी तेरी स्लेट।
मैं छोटकर आने लगा।

बहन ने कहा—बेख, ला दीखो भाई स्लेट आज दोषहर। नहीं तो यह मुझ पे सवार होगा। कहीं तू और काम में स्लेट भूल ही जाय।

मैंने कहा—‘अच्छा’ और मैं लौट आया।

लौट आकर उसी कार्ड को लिखने लगा। जिखा—

‘.....किताब के मेरे पैसे भिजवा दें। भगवान् आपको सुखी रखेगा....’

सुना, मा को खाँसी उठ रही है।

मैंने जल्दी से कार्ड को खतम करते हुए लिखा—

‘.....शेष सब कुशल है। सविनय आपका....।’ और पता लिखकर जेब में कार्ड डाल मा की खाट के पास पहुँचा।

तब तक मा आँख मूँदकर गिर चुकी थीं।

बहन ने कहा—तू डाक्टर के गया नहीं?

मैंने कहा—‘बस, जा रहा हूँ’ और जेब में कार्ड को सँभालकर पकड़ लिया।

लौटा कि डाक आगई थी। अखबारों की फेंक लिक्राफों की छोड़ पहले कार्ड देखा,—

उस बेहद भूरे खूबसूरत कार्ड पर गिनती के ये काले हरफ चिपके हुए बैठे थे—

महोदय,

अपका वक्त यथासमय मिल गया। उत्तर में निवेदन है कि अप्रैल के आरम्भ तक पारितोषिक आपकी सेवा में पहुँच जायगा। व्यवसाय की स्थिति ऐसी ही है। क्षमा करें।

इसके नीचे 'विनीत' और 'व्यवस्थापक' के बीच में इधर-उधर को तुड़-मुड़कर लाल-लाल रेखाओं से लिखा कुछ बना था, जो शायद के चक्र की भाँति मुझे भरपूर देखता वहाँ बैठा रहा।

मैंने अपनी जेब का कार्ड निकाल, काड़ फेंका, और मैं कुर्सी पर बैठ गया। निरुद्देश्य सामने देखने लगा, और देखने लगा—सामने वह बीमार, लकड़, कल, खड़ी की खड़ी रही, और उसने भार-वार मुझे कुछ भी दिखलाई नहीं दे सका।

१५—शत्रु

[श्री सच्चिदानन्द हीराचन्द वात्सायन 'अज्ञेय']

ज्ञान को एक रात सोते समय भगवान् ने स्वप्न में दर्शन दिये, और कहा, “ज्ञान, मैंने तुम्हें अपना प्रतिनिधि बनाकर संसार में भेजा है। उठो, संसार का पुनर्निर्माण करो।”

ज्ञान जाग पड़ा। उसने देखा, संसार अन्धकार में पड़ा है, और मानव-जाति उस अन्धकार में पथ-भ्रष्ट होकर विनाश की ओर बढ़ती चली जा रही है। वह ईश्वर का प्रतिनिधि है, तो उसे मानव-जाति को पथ पर लाना होगा, अन्धकार से बाहर खींचना होगा, उसका नेता बनकर उसके शत्रु से युद्ध करना होगा।

और वह जाकर चौराहे पर खड़ा हो गया और सबको सुनाकर कहने लगा,—“मैं मसीह हूँ, पैगम्बर हूँ, भगवान् का प्रतिनिधि हूँ। मेरे पास तुम्हारे उद्धार के लिए एक सन्देश है।”

लेकिन किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। कुछ उसकी ओर देखकर हँस पड़ते; कुछ कहते, पागल है; अधिकांश कहते, यह हमारे धर्म के विरुद्ध शिक्षा देता है, नास्तिक है, इसे मारो! और बच्चे उसे पत्थर मारा करते।

× × × ×

आखिर तंग आकर वह एक अँधेरी गली में छिपकर बैठ गया, और सोचने लगा। उसने निश्चय किया कि मानव-जाति का सबसे बड़ा शत्रु है धर्म, उसी से लड़ना होगा।

तभी पास कहीं से उसने स्त्री के कण्ठ की आवाज सुनी। उसने देखा, एक स्त्री भूमि पर लेटी है, उसके पास एक बहुत छोटा-सा बच्चा पड़ा है, जो या तो बेहोश है, या मर चुका है, क्योंकि उसके शरीर में किसी प्रकार की गति नहीं है।

ज्ञान ने पूछा, “बहन, क्यों रोती हो?”

उस स्त्री ने कहा, “मैंने एक विधर्मी से विवाह किया था। जब लोगो को इसका पता चला, तब उन्होंने उसे मार डाला और मुझे निकाल दिया। मेरा बच्चा भी भूख से मर रहा है।”

ज्ञान का निश्चय और बृद्ध हो गया। उसने कहा, “तुम मेरे साथ आओ, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।” और उसे अपने साथ ले गया।

ज्ञान ने धर्म के विरुद्ध प्रचार करना शुरू किया। उसने कहा, “धर्म झूठा बन्धन है। परमात्मा एक है, अबाध है और धर्म से परे है। धर्म हमें सीमा भी रखता है, रोकता है, परमात्मा से अलग करता है; अतः हमारा शत्रु है।”

लेकिन किसी ने कहा, “जो व्यक्ति पराई और बहिष्कृता औरत को अपने पास रखता है, उसकी बात हम क्यों सुनें? वह समाज से पतित है, नीच है।”

तब लोगों ने उसे समाज-व्यत करके बाहर निकाल दिया।

x

X

x

ज्ञान ने देखा कि धर्म से लड़ने के पहले समाज से लड़ना है। जब तक समाज पर विजय नहीं मिलती, तब तक धर्म का खण्डन नहीं हो सकता।

तब वह इसी प्रकार का प्रचार करने लगा। वह कहने लगा, “ये धर्मध्वजी, ये पोंगे-पुरोहित-मुल्ला, ये कौन है? इन्हें क्या अधिकार है हमारे जीवन को बाध रखने का? आओ, हम इन्हें दूर कर दें, एक स्वतन्त्र समाज की रचना करें, ताकि हम उन्नति के पथ पर बढ़ सकें।”

तब एक दिन विदेशी सरकार के दो सिपाही आकर उसे पकड़ ले गये, क्योंकि वह वर्गों में परस्पर विरोध जगा रहा था।

X

X

X

ज्ञान जब जेल काटकर बाहर निकला, तब उसकी छाती में इन विदेशियों के प्रति विद्रोह धधक रहा था। यही तो हमारी क्षुद्रताओं को

स्थायी बनाये रखते हैं, और उससे लाभ उठाते हैं ! पहले अपने को विदेशी प्रभुत्व से मुक्त करना होगा, तब समाज को तोड़ना होगा, तब..

और वह गुप्त रूप से विदेशियों के विरुद्ध लड़ाई का आयोजन करने लगा।

एक दिन उसके पास एक विदेशी आदमी आया। वह मँले-कुचैले, फटे-पुराने स्याकी कपड़े पहने हुए था। मुख पर झुरियाँ पड़ी थीं, आँखों में एक सीखा दर्द था। उसने ज्ञान से कहा, “आप मुझे कुछ काम दें, ताकि मैं अपनी रोज़ी कमा सकूँ। मैं विदेशी हूँ, आपके देश में भूखा मर रहा हूँ। कोई भी काम आप मुझे दें, मैं करूँगा। आप परीक्षा लें। मेरे पास रोटी का टुकड़ा भी नहीं है।”

ज्ञान ने खिन्न होकर कहा, “मेरी वशा तुमसे कुछ अच्छी नहीं है, मैं भी भूखा हूँ।”

वह विदेशी एकाएक पिघल-सा गया। बोला, “अच्छा ! मैं आपके दुःख से बहुत बुखी हूँ। मुझे अपना भाई समझें। यदि आपस में सहानुभूति हो, तो भूखे मरना मामूली बात है। परमात्मा आपकी रक्षा करे। मैं आपके लिए कुछ कर सकता हूँ ?”

×

×

×

ज्ञान ने देखा कि देशी-विदेशी का प्रश्न तब उठता है, जब पेट भरा हो। सबसे पहला शत्रु तो यह भूख ही है। पहले भूख को जीतना होगा, तभी आगे कुछ सोचा जा सकेगा....।

और उसने ‘भूख के लड़ाकों’ का एक दल बनाना शुरू किया, जिसका उद्देश्य था अमीरों से धन छीनकर सब में समान रूप से वितरण करना, भूखों को रोटी देना, इत्यादि; लेकिन जब धनिकों को इस बात का पता चला, तब उन्होंने एक दिन चुपचाप अपने चरों द्वारा उसे पकड़ मँगाया और एक पहाड़ी किले में कैद कर दिया। वहाँ एकान्त में वे उसे सताने के लिए नित्य एक मुट्ठी चबैना और एक लोटा पानी दे देते, बस।

धीरे-धीरे ज्ञान का हृदय ग्लानि से भरने लगा। जीवन उसे बोझ जान पड़ने लगा। निरन्तर यह भाव उसके भीतर जगा करता कि मैं, ज्ञान, परमात्मा का प्रतिनिधि, इतना विवश हूँ कि पेट भर रोटी का प्रबन्ध मेरे लिए असम्भव है ! यदि ऐसा है, तो कितना व्यर्थ है यह जीवन, कितना छुँछा, कितना बेमानी !

एक दिन वह किले की दीवार पर चढ़ गया। बाहर खाई में भरा हुआ पानी देखते-देखते उसे एकदम से बिचार आया, और उसने निश्चय कर लिया कि वह उसमें कूदकर प्राण खो देगा। परमात्मा के पास लौटकर प्रार्थना करेगा कि मुझे इस बार से मुक्त करो; मैं तुम्हारा प्रतिनिधि तो हूँ, लेकिन ऐसे संसार में मेरा स्थान नहीं है।

वह स्थिर, मुग्ध दृष्टि से खाई के पानी में देखने लगा। वह कूबने को ही था कि एकाएक उसने देखा, पानी में उसका प्रतिबिम्ब भूलक रहा है और मानो कह रहा है, “बस, अपने-आपसे लड़ चुके ?”

×

×

×

ज्ञान सहमकर रुक गया, फिर धीरे-धीरे दीवार पर से नीचे उतर आया और किले में चक्कर काटने लगा।

और उसने जान लिया कि जीवन की सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि हम निरन्तर आसानी की ओर आकृष्ट होते हैं।

१६—खिलावन का नरक

[श्री भगवतीचरण वमा]

ठसाठस भरे थर्ड-क्लास की एक बेंच के नीचे खिलावन लेटा हुआ था। वह सो न रहा था, सोने का कोई समय भी तो न था; वह लेटा था केवल इसलिए कि कहीं टिकट-कलक्टर उसे देख न ले।

आज तीन साल बाद वह घर लौट रहा था, बम्बई से। दो दिन का सफ़र उसने एक हफ़्ते में पूरा किया था, गाड़ी पर चढ़ते और उतारे जाते। यह उसकी आखिरी मंज़िल थी, और इस समय तक उसे बिना टिकट सफ़र करने का पूरा तजुर्बा भी हो चुका था। टिकट-कलक्टर को दूर से अपने डिब्बे की ओर बढ़ते देखकर ही उसने बेंच के नीचे पनाह ली थी, और वह इस तरह लेट गया कि पन्द्रह मिनट तक गाड़ी में रहने पर भी टिकट-कलक्टर को उसकी गन्ध न मिली।

खिलावन सँकरी बेंच के नीचे अपने बदन को समेटे हुए पड़ा था—मानो इस तरह सोने का वह आदी है। बम्बई में भी तो वह इसी तरह सोया करता था—एक छोटी-सी कोठरी थी, उसमें बारह आदमी रहते थे। रात में जब लोग सोते थे, तब उन लोगों में हर एक को सोने के लिए सिर्फ़ इतनी ही जगह मिलती थी, जितनी खिलावन को बेंच के नीचे मिली थी।

उस समय खिलावन सोच रहा था; आज तीन साल बाद वह देश लौट रहा है, और देश में उसकी मा है, बाप है, छोटा भाई है, और—और उसकी सुखिया है! तीन साल पहले जब वह परदेस कमाने चला था, तब वह सुखिया कितना रोई थी—एक साल तो उसका पियाह हुए ही हुआ था।

मुखिया को याद करते ही खिलावन मुस्करा पड़ा। खिलावन के आने से मुखिया कितनी सुखी होगी—किस तरह वह उसके घर में पहुँचते ही घूँघट की ओट से तिरछी नजरों से मुस्कराते हुए उसे देखेगी, और—और खिलावन को एक धक्का-सा लगा।

मा, बाप, बीबी—सभी समझेंगे कि खिलावन कमाकर लाया है। सभी उसकी तरफ किसी आशा से देखेंगे; और फिर वह क्या कहेगा? पास में कपड़ा नहीं, लत्ता नहीं, पैसा नहीं! दो महीने की हड़ताल में जो कुछ उसने बचाया था, वह स्वाहा हो गया। मकान-मालिक जेल भिजवा रहा था, कपड़ा-लत्ता उसी कोठरी में छोड़कर अपनी जान बचाकर वह भागा था। आखिर वह घर में क्या कहेगा?

और एक झटके के साथ गाड़ी रुकी। खिलावन का सिर बेंच के पास से टकराया और उसने अपना सिर पकड़ लिया। उसी समय उसे दरवाजा खुलने की तथा बन्द होने की आवाज सुनाई दी।

चोर की तरह अब वह अपने छिपने की जगह से बाहर आया। टिकट-कलक्टर चला गया था, खिड़की से मुँह निकालकर वह बाहर देखने लगा। एकाएक बाहर रेल के खलासी ने आवाज दी, “बहादुरपुर! बहादुरपुर!!” और उसी समय गाड़ी ने सीटी दी।

खिलावन जल्दी से गाड़ी से उतर पड़ा—बहादुरपुर स्टेशन पर ही उसे उतरना था न!

गाड़ी चली गई—और खिलावन ने अपने चारों ओर देखा। ज्यादा समय न हुआ था, सिर्फ साढ़े छः बजे थे; फिर भी चारों ओर अँधेरा छाया था। आसमान पर गहरे बादल घिर आये थे और बिजली चमक रही थी।

वह बड़ी देर तक चुपचाप खड़ा रहा—हत बुद्धि-सा। स्टेशन सुनसान था; दो एक मुसाफिर उतरे थे; दूर से उनके चलने की आवाज खिलावन को सुनाई पड़ रही थी, पर वह आवाज धीरे-धीरे हलकी होती

जाती थी। स्टेशन के खलासी ने स्टेशनवाला लोहे का फाटक बन्द कर स्टेशन मास्टर को आवाज दी कि सब कुछ ठीक है।

खिलावन की चेतना धीरे-धीरे लौट आई। तार लाँघकर अब वह सड़क पर आगया था। रुककर उसने हिसाब लगाया—उसका गाँव वहाँ से डेढ़ कोस की दूरी पर है। फिर उसने आसमान की ओर देखा; बादल भरे हुए खड़े थे, किसी भी समय वे बरस सकते थे !

खिलावन चल पड़ा, अपने गाँव की ओर ! लेकिन जैसे उसके पाँव घर की ओर उठते ही न थे। भरसक जोर लगाकर वह तेज चलने की कोशिश कर रहा था, पर उसके मन की शिथिलता उसके सारे शरीर में व्याप्त हो गई थी।

कितनी देर खिलावन चलता रहा, उसे इसका ज्ञान न था। वह उस समय विचार-शून्य और भावना-शून्य था। पर एकाएक वह चौंक पड़ा—एक बड़ी-सी बूँद उस पर पड़ी, और दूसरी पड़ी; और देखते ही देखते मूसलाधार पानी गिरने लगा !

खिलावन एक पेड़ के नीचे खड़ा हो गया—सामने करीब दो फ़लांग पर उसका गाँव था। और पानी इस तरह बरस रहा था मानो प्रलय की वर्षा हो रही थी। देखते ही देखते पेड़ से भी पानी छन-छनकर गिरने लगा।

उसी समय बिजली चमकी। और बिजली के प्रकाश में खिलावन ने वह टूटा हुआ पुराना मन्दिर देखा, जिसमें अपने लड़कपन में अक्सर खेला करता था। अब उसे पता लगा कि वह मन्दिर से करीब बस गज की दूरी पर ही है। तेजी से वह मन्दिर में धुस गया।

मन्दिर में पहुँचकर उसने सन्तोष की गहरी साँस ली। मन्दिर के अन्दर गहरा अन्धकार था, और बाहर हवा जोरों के साथ चल रही थी, बादल गरज रहे थे और बिजली चमक रही थी।

और खिलावन को ऐसा लगा मानो मन्दिर के अन्दरवाले खण्ड में और भी कोई है। उसके कान धड़े हुए, ध्यान से सुनने की कोशिश

की—कोई कह रहा था—“यह बारिश भी अजब बेमौके शुरू हो गई। भगवान् जाने कब तक होती रहे !”

और उसका उत्तर मिला, “तुम्हें क्या—मुसीबत तो हमारा है। अम्मा जी पुछिहें—कहाँ रही—तब का कहब ? और अम्मा जी बड़ा जी से एक-एक की सौ-सौ जड़ि है !”

खिलावन के मानो काटो तो खून नहीं; यह आवाज तो मुखिया की थी। मुखिया उस समय इस मन्दिर में, और उसके साथ आवमी ! बबे पाँवों यह और भीतर खिसका।

मर्द ने कहा, “अरी कुछ न होगा। तेरी सास बक-भककर चुप हो जायगी। हाँ—उस दिन तेरे समुर ने जो मुझे बेख लिया था, तो क्या हुआ ?”

“होता क्या ?” आवाज औरत की थी—“पहले तो बहुत बिगड़े, कहिन की हम नाक कटाय बीन्ह—घर से निकासें की धमकी बीन्ह। लेकिन जब चाँदी की हँसली दीखिन और अम्मा जी हमरे अँचरा माँ बंधे पाँच रुपैया जो हमें दीन्हे रहब खोल के उनके सामने रख दीन्हिन, तो शान्त हुई गे !” और स्त्री हँस पड़ी।

खिलावन के मुख पर पसीने की बूँदें आ रही थीं।

मर्द ने फिर कहा, “और वह तेरा वह—उसकी कुछ खबर मिली !”

“कहाँ—आज छः महीना से न एक रुपिया भेजिस और न कौनों चिट्ठी-पत्री लिखिस। मालूम होत है कौनों राँड़ के फेर माँ पड़िगा। नास होय ऊका ! इहाँ घर मा सब भूखन मरत हैं, तुम्हरे पाँच रुपैया से आज खाना मिलत है”—और कुछ रककर स्त्री ने फिर कहा, “हमरे देवर का एक आध बीघा जमीन दियाय देव ! ज़िलादार आप तो इतनी नहीं करि सकत हौ ?”

खिलावन चुपचाप मन्दिर के बाहर चला आया। उसी समय बिजली चमकी, और उसने देखा कि उसकी धोती चिथड़ा है; उसका कुरता फँक देने के क़ाबिल है।

खिलावन चल पड़ा भीगता हुआ, घर की तरफ नहीं, स्टेशन की तरफ ! पानी मूसलाधार पड़ रहा था—हवा तेजी के साथ चल रही थी; बादल गरज रहे थे और बिजली चमक रही। और खिलावन चला जा रहा था, तेजी के साथ—मानो वह भागा जा रहा हो।

और दूर पर वह कभी-कभी चमक उठनेवाली बिजली के प्रकाश में स्टेशन की जमीन में धँसी हुई-सी इमारत को देख लेता था।

स्टेशन पर आकर उसने साँस ली। भीगता हुआ वह प्लेटफार्म पर खड़ा था और स्टेशन की इमारत को देख रहा था। वह उस समय बहादुरपुर के स्टेशन की और बम्बई के विक्टोरिया टर्मिनस स्टेशन की तुलना कर रहा था—वह उस समय अपने चारों ओर फैले हुए शून्य से भरे हुए अन्धकार और बम्बई की चहल-पहल से भरे प्रकाश पर सोच रहा था; और इस प्रकार वह गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था; उस गाड़ी की जो उसे एक नरक से निकालकर दूसरे नरक में ले चले !

१७—गँडेरी

[श्री यशपाल]

दफ़्तर बन्द होने का सरकारी समय पाँच बजे है। परन्तु बड़े बाबू छः-साढ़े-छः से पहले नहीं उठते। उनसे पहले उठकर चल देना बेअदबी है। तिस पर जगमोहन ठहरा अप्रेंटिस। बड़े बाबू के उठने के बाद, कुछ दूर उनके पीछे-पीछे जा, तब एक गली से घूमकर वह घर आता है।

उस रोज़ जगमोहन दफ़्तर से घर लौट, कहीं बाहर न गया। टूंक खोल, उसने धोबी की धोई क्रमीज़ और धोती निकाली। बहू ने विस्मय से आँख उठाकर पूछा—“यह क्या; अभी तीन ही दिन तो कपड़ा बदले हुए हैं, अभी से?”

“हैं, एक जगह जाना है।”—जगमोहन ने उत्तर दिया।

“कहाँ जाओगे?”

“ऐसे ही एक जगह!”

बहू चौंके में चली गई। उसे डर था, अधिक पूछने से नाराज़ हो जायेंगे। अभी उस रोज़ भी नाराज़ हो गये थे।

जगमोहन सोचने लगा—न जाने क्या खयाल करेगी, कहीं जा रहा हूँ? बता देने में डर क्या है? ज़रा दिल बहलाने जा रहा हूँ। आखिर दफ़्तर में बैठे-बैठे आदमी थक भी तो जाता है। आदमी हूँ, पत्थर तो नहीं। न सिनेमा, न तमाशा। वह तो कहो गनीमत हुई कि इतना जोर डालने पर, राधेलाल ने लड़के के मुण्डन पर, मुजरा कराना मंज़ूर कर लिया। कैसा वजूस है कि पैसा खर्चना ही नहीं चाहता...। इसे तो वहाँ जाना नहीं... फिर इसके जानने न जानने से बनता-बिगड़ता क्या है?

जल्दी-जल्दी खाना खाया। बहू से कहा—“दफ़्तर के एक बाबू के यहाँ जाना है, ज़रा जा रहा हूँ। देर हो जायगी। तुम सो रहना। बाहर से ताला लगा जाऊँगा।”

नये कपड़े पहन, ऊरुहस्त के लिए जेब में चार पैसे डाल, वह घर से निकला। बाज़ार में आते ही इच्छा हुई, एक सिगरेट ले ले। पैसे में पासिंग-शो का एक सिगरेट आता है, बीड़ियाँ बारह आती हैं। लेकिन महफ़िल में बीड़ी पीते हुए जाना ठीक नहीं। घर की बात दूसरी है। महफ़िल में सिगरेट ही पीना चाहिए और अच्छी सिगरेट पीना चाहिए। आबरू का ख़याल लखना ज़रूरी है।

उसने फ़ंसला किया, वह क़ंचो का सिगरेट ख़रीदेगा। आख़िर दफ़्तर में बाबू है और वहाँ सब बाबू लोग होंगे। क़ंचो का सिगरेट डेढ़ पैसे में आता है, इसलिए तीन पैसे के दो लेने पड़ते हैं। तीन पैसे एक साथ ख़र्चना फ़िज़ूल है। कोई मेहमान हो, तो एक बात भी है। सोचा एक सिगरेट और एक पान ले लेगा और दो पैसे ख़र्च कर देगा। ग़ेज़-रोज़ का ख़र्च थोड़े ही है? हुआ एक दिन, इतना ही सही।

पान चबाते और सिगरेट पीते हुए वह महफ़िल में पहुँचा। सब लोग आ चुके थे। एक ओर साज़िन्दे और बाई जी भी बैठी थीं। केवल बड़े बाबू की प्रतीक्षा थी। बाई जी की ओर देखकर लोग राधेलाल पर फ़बतियाँ कस रहे थे। कोई पूछता—“कहो यार! क्या चबन्नी पर ठहराया है?” कोई कहता—“नहीं भाई, पुराने ताल्लुकात है!”

मतलब यह कि बाई जी उम्र से उतर चुकी थीं। रंग-रूप भी वंसा ही-सा था। राधेलाल ने ढीठ होकर कहा—“शक्ल से क्या होता है? हम गुग देखते हैं। जानते हो, जानकी बाई तवे-सी काली थीं!”

बड़े बाबू आये और मुजरा शुरू हुआ। साज़िन्दों ने साज़ मिलाये। बाई जी ने घुँघरू की ताल देकर हाथ-पैर हिलाने शुरू किये। किसी के दिल में उमंग न उठी। किसी के भी दिल में स्पन्दन न हुआ। बाई जी ने ख़ुशी-से कांपती आवाज़ में गाना शुरू किया—

“पी के हम तुम जो चले भूमते मयजाने से...”

जगमोहन की बगल से किसी ने आवाज कसी—“वाहरी; पंतरा लो खूब लेती है।”

दूसरी आवाज आई—“अजी पूरी पटेबाज है।”

किसी ने कहा—“अरे इसके हाथ में ठाल-तखवार बे दो तो लीली घोड़ी का नाच अच्छा करेगी।”

यह सब कुछ बड़े बाबू के अदब से बहुत धीरे-धीरे कहा गया। दस-पन्द्रह मिनट तक मुजरा देखकर बड़े बाबू चले गये। उन्हें कुछ ज़क़ाम की शिकायत थी। उनके जाने पर नौजवानों का सौका आग्रा। आवाज़ें बेधड़क कसी जाने लगीं।

दर्शकों के असंतोष और विरोध का सामना बाई जी ने चेहरे पर मुस्कराहट लाकर किया। निरुत्साहित न हो उन्होंने कमर को और बल दिया। स्तर में ‘दर्व’ का पुट देने की चेष्टा कर और सीने पर हाथ रखकर गाया—

“गुज़र गया है ज़माना गले लगाये हुए....।”

पर रखे गले से ‘दर्व’ पैदा न हुआ; निम्नैज आँखों में चमक न आई न कमर ही बल खाई।

तमाशबीन निराश हो गुल करने लगे। उस गुल को दबा देने और बाई जी को उत्साहित करने के लिए, साजों को खूब जोर से बजाया गया। बाई जी ने भी घुंघरू बंधे पैरों को जोर-जोर से पटककर और कमर को बायें-बायें अधिक लचाकर गाना और नाचना शुरू किया। पर जान पड़ता था जैसे उनके पैर लड़खड़ा रहे हों।

किसी ने ताना दिया—“वाहरे राधेलाल! तुम भी चमड़े के मोल भेंस ले आये।”

दर्शकों के व्यवहार से राधेलाल को क्रोध आ रहा था। वे सोच रहे थे—अच्छा-भला मुजरा हो तो रहा है। कोई गुल मचाये और न

सुने, तो क्या हो ? एक तो वे जेब का पैसा खर्च करें दूसरे उन्हीं को परेशानी हो ! उनके लड़के का मुण्डन है तो क्या हुआ ?

उन्हें बाई जी पर भी क्रोध आ रहा था। साली, मुजरा नहीं जानती थी तो आई क्यों ? हम जेब से पैसे निकालकर देंगे, कोई मज्जाक थोड़े ही है। वे परेशान हो रहे थे—जैसे दर्शक और बाई जी दोनों ही उन्हें लूटने के लिए षड्यन्त्र किये बैठे हों।

बाई जी की सांस फूल गई। उन्होंने एक बीड़ा और बड़ी-सी चुटकी भर तम्बाकू स्फूर्ति के लिए होठों में दबा, अदा से एक हाथ फेला, नये तर्ज से नई चीज कहना शुरू किया—

“मिलना गले से शेरों के, हमसे बहानेबाजियाँ।

आये जब मेरे सामने, पर्व में मुंह छिपा लिया ॥”

बाई जी के अरोचक और सूखे शरीर के गले लग जाने के संकेत और हाव-भाव से दर्शकों के शरीर में स्फूर्ति के स्पन्दन की अपेक्षा ग्लानि ही हुई और उससे महफ़िल में बढ़नेवाले शोर के कारण कुछ सुनना सम्भव न रहा।

जगमोहन को याद आगया एक बरस पहले का एक नाच ! सेठ जीतूमल के यहाँ नाच हुआ था। बड़े-बड़े आदमियों की भीड़ थी। कनातों की संघों से जगमोहन ने वह नाच देखा था।

कल्पना-सी सुन्दर वह परी, मानो वसन्त का पहला पुष्प नन्दन कानन से लाकर, महफ़िल में रख दिया गया हो। उसकी वह गर्व से उठी गर्दन, उसकी वे मस्तानी आँखें, वंशी-सा सुरीला उसका स्वर ! सुनते हैं, एक रात के उसने पाँच सौ लिये थे। नाच में मोहरें बरसी थीं। सुना था, उस एक रात में नरगिस ने एक हज़ार बना लिया था।

वह सोचने लगा—राधेलाल है एक ही कंजूस। साले ने पाँच रुपल्ली से एक कौड़ी ज्यादा खर्च नहीं किया होगा। यहाँ कोई दुअग्री दिवाल नहीं। बाई जी भरसक नाच और अदा से सबके सामने घूम-घूम गई

पर किसी ने जेब में हाथ न डाला। बल्कि घृणा के स्वर में किसी ने कहा—“भुक्खड़ साली कहीं की!”

जगमोहन भी सोच रहा था—जब नाचते-गाते बन नहीं पड़ता तो यह यहाँ आई क्यों? मज्जा बिगाड़ दिया। जब गाना नहीं जानती तो रुपये कोई काहे को देगा? तभी सहसा उसे ध्यान आगया बड़े बाबू की धमकी का। डिसपैच के रजिस्टर में टिकटों का हिसाब उसका दो बक्के गलत हो चुका था। बड़े बाबू ने मामला साहब के सामने पेश कर दिया और उन्होंने हुकुम दिया, अब गलती करे तो काम पर से हटा दो। तनख्वाह काम के लिए दी जाती है। जगमोहन कुछ सुस्त-सा पड़ गया और फिर खयाल आया बाई जी को गाने और नाचने के लिए पैसे मिलेंगे...पाँच रुपये!

वह समस्या को पैसों के हिसाब से सोचने लगा—एक सारंगीवाला है, एक मजीरेवाला, एक हारमोनियमवाला और एक मशालची। कुल पाँच रुपये। एक-एक रुपया भी तो नहीं पड़ेगा। और फिर कौन रोज़-रोज़ मुजरा कराता है? तिस पर इस बेचारी का...?

उसने देखा बाई जी का गाना कोई नहीं सुन रहा। सब लोग अपनी अपनी गपशप में लगे हैं। सिर्फ़ राधेलाल कभी-कभी गुस्ते में डाँट देता है। “अरे ठीक ढंग से गाओ!”

उसने देखा बाई जी निढाल होकर गा रही हैं। उनकी आँखों में न मद है न मस्ती; बल्कि हैं निराशा और कातरता। मानो वे दोनों आँखें कह रही हैं—मैं तुम्हें रिझा रही हूँ, तुम रीझते क्यों नहीं! तुम्हारा मनोरंजन हो, तुम्हारा दिल बहले तो एक टुकड़ा हमें भी मिले। देखो, मैं सब कुछ करने को तैयार हूँ, तुम खुश हो जाओ! मैं तो तुम्हारा मन बहलाने के लिए जान लड़ाये दे रही हूँ, तुम खुश क्यों नहीं होते?

ऊँचे स्वर में चिल्लाकर किसी ने कहा—“राधेलाल, साली को एक पैसा भी गत देना! क़ब्र में पैर लटक रहे हैं, चली है मुजरा करने?”

कई आवाजों ने इस राय की साईद की "हां साली को कुछ नहीं मिलना चाहिए।"

जगमोहन सोचने लगा, लोगों की रिश्तानों की इतनी मेहनत करके बेचारी का यह हाल है, और आगे क्या होगा? मेहनत करने पर भी कोई खुश न हो तो क्या किया जाय? ...साहब कैसे डाँट देते हैं-- काम नहीं होता तो सैनाटीजन खाया करो।

बिजली के उज्ज्वल प्रकाश में जगमोहन की नम आँखें चमक रही थीं। उसके सामने महफ़िल नहीं, एक दूसरा ही दृश्य था--

बाई जी चीथड़ों में लिपटी, टीन का कटोरा लिए, गली के कोने पर खड़ी, दुआ देकर चुटकी भर आटा माँग रही है। उनके चारों ओर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। लोग उस ओर से नज़र फेरे चले जा रहे हैं;--वहाँ जहाँ ताज़े गुलाब को लज्जित करनेवाली नरगिस, सुगन्ध के बादलों में लिपटी नरगिस अपनी कटीली आँखें सैकड़ों दिलों के पार कर रही है...स्वर की लहरों पर थिरक रही है। वह नरगिस जो सैकड़ों भद्र पुरुषों का स्वप्न है, जो सैकड़ों धनाधीशों की कामना है। जिस नरगिस के स्रयाल में उसके गाये पदों की अधमुंदी आँखों से गुनगुनाकर सहस्रों सभ्य पुरुष लम्बी साँसें खींच लेते हैं।

गली में खोमचेवाले ने तीखे स्वर से पुकारा--"गुल बवाली गँडेरियाँ!"

जगमोहन ने सोचा--नरगिस है गुलाबवाली गँडेरी, जिसके बरान से ही शीतलता और स्फूर्ति मिलती है। बाई जी भी गँडेरी है परन्तु बाँतों में दबाकर चूसी जा चुकी है। अब उनमें रस कहाँ? अब उनका क्या दाम?

लोगों के उठ खड़े होने से मुजरा बन्द कर दिया गया। क्रोध में झुझलते हुए राधेलाल कह रहे थे--'साली, बड़ी कलावंत बनती थी, दगा और हमसे! एक पैसा नहीं मिलेगा!'

जगमोहन की जेब में दो पैसे थे और उँगली में ब्याह की अँगूठी। साजिन्दे राधेलाल को घेरकर उजरत के लिए भगड़ा कर रहे थे और

बाई जी एक तरफ अँधेरे में खड़ी, हाँफती हुई आँचल से पसीना पोः रही थीं।

जगमोहन की आँखें डबडबा आईं। कहणा के आवेश में विचार ठिकाने न रहे। उसने उँगली से अँगूठी खींच, बाई जी के हाथ पर रख दी और चुपचाप घर लौट आया।

बूसरे दिन खाली उँगली देख बहू ने पूछा—“हाय, अँगूठी क्या हुई?”

भँपते हुए जगमोहन ने उत्तर दिया—“कहीं गिर गई।”

बहू ने शंका से पूछा—“सच?”

जगमोहन के पैर फिसल गये, बोला—“दे दी।”

—“रात मुजरे में?”

—“हाँ, पर बहू बात नहीं... बहुत गरीब थी!”

बहू रोने लगी।

बहू कई दिनों रोती रही—“यह ऐसा करेंगे तो हमारा कौन ठिकाना है?”

जगमोहन चाहता था बहू को समझा दे। उसे गुलाबवाली गँडेरी और खूँसी हुई गँडेरी की बात समझा दे। पर ठीक से कहने में बर्नाता था।।

१८—अतीत के चल-चित्र

[श्रीमती महादेवी वर्मा]

इतने वर्ष बीत जाने पर भी मेरी स्मृति, अतीत के दिन-प्रतिदिन गाढ़े होनेवाले धुंधलेपन में एक-एक रेखा खींचकर उस कदण-कोमल मुख को मेरे सामने अंकित ही नहीं सजीव भी कर देती है।

छोटे गोल मुख की तुलना में कुछ अधिक चौड़ा लगनेवाला पर दो काली रुखी लटों से सीमित ललाट, बचपन और प्रौढ़ता को एक साथ अपने भीतर बन्द कर लेने का प्रयास-सा करती हुई, लम्बी बरीनियोंवाली भारी पलकें और उनकी छाया में डबडबाती हुई-सी आँखें, उस छोटे मुख के लिए भी कुछ छोटी सीधी-सी नाक और मानो अपने ऊपर छपी हुई हँसी से विस्मित होकर कुछ खुले रहनेवाले ओंठ, समय के प्रवाह से फोके भर हो सके हूँ, धुल नहीं सके।

घर के सब उजले-मँले, सहज-कठिन कामों के कारण, मलिन रेखा-जाल से गूथी और अपनी शेष लाली को कहीं छिपा रखने का प्रयत्न-सा करती हुई कहीं कोमल, कहीं कठोर हथेलियाँ, काली रेखाओं में जड़े कान्तिहीन नखों से कुछ भारी जान पड़नेवाली पतली उँगलियाँ, हाथों का बोझ सँभालने में भी असमर्थ-सी दुबल, रुखी पर गौर बाहें और मारवाड़ी लहंगे के भारी घेर से थकित-से, एक सहज सुकुमारता का आभास देते हुए, कुछ लम्बी उँगलियोंवाले दो छोटे-छोटे पैर, जिनकी एड़ियों में आँगन की मिट्टी की रेखा मटमैले महावर-सी लगती थी। भुलाये भी कैसे जा सकते हैं! उन हाथों ने बचपन में न जाने कितनी बार, मेरे उलझेबाल सुलझाकर बड़ी कोमलता से बाँध दिये थे। वे पैर न जाने कितनी बार, अपनी सीखी हुई गम्भीरता भूलकर मेरे लिए द्वार खोलने, आँगन में एक ओर से दूसरी ओर दौड़े थे। किस तरह मेरी अबोध अष्ट-

वर्षीय बुद्धि ने उससे भाभी का सम्बन्ध जोड़ लिया था, यह अब बताना कठिन है। मेरी अनेक सहपाठिनियों के बहुत अच्छी भाभियाँ थीं; कदाचित् उन्हीं की चर्चा सुन-सुनकर मेरे मन ने, जिसने अपनी तो क्या दूर के सम्बन्ध की भी कोई भाभी न देखी थी, एक ऐसे अभाव की सृष्टि कर ली, जिसको वह मारवाड़ी विधवा बधू दूर कर सकी।

बचपन का वह मिशन स्कूल मुझे अब तक स्मरण है, जहाँ प्रार्थना और पाठ्यक्रम की एकरसता से मैं इतनी रूआसी हो जाती थी कि प्रतिदिन घर लौटकर, नींद से बेसुध होने तक, सबेरे स्कूल न जाने का बहाना सोचने से ही अवकाश न मिलता था।

उन दिनों मेरी ईर्ष्या का मुख्य विषय तौकरानी की लड़की थी, जिसे चौका-बर्तन करके घर में रहने को तो मिल जाता था। जिस कठोर ईश्वर ने मेरे भाग्य में नित्य स्कूल जाना लिख दिया था, वह मा के ठाकुर जी से कोई है या मिशन की सिस्टर का ईसू, यह निश्चय न कर सकने के कारण मेरा मन विचित्र दुविधा में पड़ा रहता था। यदि वह मा के ठाकुर जी में है तो आरती-पूजा से जी चुराते ही क्रुद्ध होकर मेरे घर में रहने का समय और कम कर देगा और यदि स्कूल में है तो बहाना बनाकर न जाने से पढ़ाई के घंटे और बढ़ा देगा, इसी उधेड़-बुन में मेरा मन पूजा, आरती, प्रार्थना सबमें भटकता ही रहता था।

इस अन्धकार में प्रकाश की एक रेखा भी थी। स्कूल निकट होने के कारण बूढ़ी कल्लू की मा मुझे किताबों के साथ वहाँ पहुँचा भी आती थी और ले भी आती थी और इस आवागमन के बीच में, कभी सड़क पर लड़ते हुए कुत्ते, कभी उनके भटकते हुए पिल्ले, कभी किसी कोने में बैठकर पंजों से मुंह धोती हुई बिल्ली, कभी किसी घर के बरामदे में लटकते हुए पिंजड़े में मनुष्य की स्वर-साधना करता हुआ गंगाराम, कभी बतख और तीतरों के झुंड, कभी तमाशा दिखानेवालों का टोपी लगाये हुए बन्दर, ओढ़नी ओढ़े हुए बेंदरिया, नाचनेवाला रीछ आदि स्कूल की एकरसता दूर करते ही रहते थे।

हमारे ऊँचे घर से कुछ ही हटकर, एक ओर रंगीन, सफ़ेद, रेशमी और सूती कपड़ों से और दूसरी ओर चमचमाते पीतल के बर्तनों से सजी हुई एक नीबी-सी दूकान में जो बूढ़े सेठ जी बैठे रहते थे, उन्हें तो मैंने कभी ठीक से देखा ही नहीं, परन्तु उस घर के पीछेवाले द्वार पर पड़े हुए पुराने टाट के परदे के छेद से जो आँखें मुझे प्रायः आते-जाते देखती रहती थीं उनके प्रति मेरा मन एक कुतूहल से भरने लगा। कभी-कभी मन में आता था कि परदे के भीतर भाँककर देखूँ पर कल्लू की मा मेरे लिए, उस जन्तु-विशेष से कम नहीं थी जिसकी बात कह-कहकर बच्चों को डराया जाता है। उसका कहना न मानने से वह महलाते समय मेरे हाल ही में छिड़े कपड़ों की लौ दुखा सकती थी, छोटी बाँधते समय बालों को खूब खींच सकती थी, कपड़े पहनाते समय तंग गलेवाले फ़ाक को आँखों पर अटका सकती थी, घर में और स्कूल में मेरी बहुत-सी भूठी-सच्ची शिकायतें कर सकती थी—सारांश यह कि उसके पास प्रतिशोध लेने के बहुत-से साधन थे।

परन्तु कल्लू की मा को चाहे उन आँखों की स्वामिनी से मेरा परिचय न भाता हो, पर उसकी कथा सुनाने में उसे अवश्य रस मिलता रहा। यह अनाथिनी भी है और अभागी भी। बूढ़े सेठ सबके मना करते-करते भी इसे अपने इकलौते लड़के से ब्याह लाये और उसी साल लड़का बिना बीमारी के ही मर गया। अब सेठ जी का इसकी चञ्चलता के मारे नाक में दम है। न इसे कहीं जाने देते हैं न किसी को अपने घर आने। केवल अमावस, पूनी एक ब्राह्मणी आती है जिसे वे अपने आप खड़े रहकर, सीधा दिलवाकर बिदा कर देते हैं। वे बेचारे तो जाति-बिरादरी में भी इसके लिए बुरे बन गये हैं और इसकी निर्लज्जता देखो—ससुर दूकान में गये नहीं कि यह परबे से लगी नहीं। घर में कोई देखनेवाला है ही नहीं। एक नमंद है जो शहर में ससुराल होने के कारण जब-तब आ जाती है और तब इसकी खूब ठुकाई होती है इत्यादि-इत्यादि सूचनायें कल्लू की मा की विशेष शब्दावली और विचित्र भाव-भंगियों के साथ मुझे स्कूल तक

मिलती रहती थीं। परन्तु उस समय वे सूचनायें मेरे निकट उतना ही महत्त्व रखती थीं, जितना नानी से सुनी हुई बेला रानी की कहानी। कथा में बेचैन कर देनेवाला सत्य इतना ही था कि कहानी की राजकुमारी की आँखें पुराने टाट के परदे से, सुननेवाली बालिका को नित्य ताकती ही रहती थीं। यह स्थिति तो कुछ सुखद नहीं कही जा सकती। यदि सुनी हुई कहानी के सब राजा, रानी, राजकुमार, राजकुमारी, दैत्य, दानव आदि सुननेवालों को इस प्रकार देखने लगे तो कहानी सुनने का सब सुख चला जावे, यह कल्लू की मा की कहानी और परदे के छेद से देखनेवाली आँखों ने मुझे समझा दिया था।

भूरे टाट में जड़ी-सी बे काली आँखें मेरी कल्पना का विषय ही बनी रहतीं, यदि एक दिन पानी बरसने से कल्लू की मा रुक न गई होती, पानी भरते ही मैं स्कूल से अकेले ही न चल बी होती और गीली सड़क पर उस परदे के सामने ही मेरा पैर न फिसल गया होता। बच्चे गिरकर प्रायः छोट के कारण न रोकर लज्जा से ही रोमें लगते हैं। मेरे रोने का भी कदाचित् यही कारण रहा होगा क्योंकि छोट तो मुझे यदि नहीं आती।

कह नहीं सकती कि परदे से निकलकर, कब उन आँखों की स्वामिनी ने मुझे आँगन में खींच लिया परन्तु सहसा विस्मय से मेरी हलाई रुक गई। एक दुर्बल पर मुकुमार बालिका जैसी स्त्री अपने अंचल से मेरे हाथ और कपड़ों का कीचड़ मिला पानी पोंछ रही थी और भीतर दालान से बुद्ध तेठ का कुछ विस्मित स्वर कह रहा था—‘अरे यह तो वर्मा साहब की बाई है।’

उसी दिन से वह घर, जिसमें न एक भी भरोखा था न रोशनदान, न एक भी नौकर दिखाई देता था, न अतिथि और न एक भी पशु रहता था न पक्षी, मेरे लिए एक आकर्षण बनने लगा। उस सभाभि-भ्रंसे घर में लोहे के प्राचीर से घिरे हुए के समान वह किशोरी बालिका बिना किसी

संगी-साथी, बिना किसी प्रकार के आमोद-प्रमोद के, मानो निरन्तर वृद्धा होने की साधना में लीन थी।

वृद्ध एक ही समय भोजन करते थे और वह तो विधवा ठहरी ! दूसरे समय भोजन करना ही यह प्रमाणित कर देने के लिए पर्याप्त था कि उसका मन विधवा के संयमप्रधान जीवन से ऊबकर किसी विपरीत विधा में जा रहा है।

प्रायः निराहार और निरन्तर मिताहार से दुर्बल देह से वह कितना परिश्रम करती थी यह मेरी बालक बुद्धि से भी छिपा न रहता था। जिस प्रकार उसका, खंडहर-जैसे घर और लम्बे-चौड़े आँगन को बैठ-बैठकर बुहारना, आँगन के कुएँ से अपने और समुद्र के स्नान के लिए ठहर-ठहरकर पानी खींचना और धोबी के अभाव में, मैले कपड़ों को काठ की मोगरी से पीटते हुए रक-रककर साफ़ करना, मेरी हँसी का साधन बनता था, उसी प्रकार केवल जलती लकड़ियों से प्रकाशित, दिन में भी अंधेरी रसोई की कोठरी के घुटते हुए धुएँ में से रह-रहकर आता हुआ खाँसी का स्वर, कुछ गीली और कृच्छ्र सूखी राख से चाँदी-सोने के समान चमकाकर तथा कपड़े से पोंछकर (मारवाड़ में काम में लाने के समय ही बर्तन पानी से धोये जाते हैं) रखते समय शिथिल उँगलियों से उठते हुए बर्तनों की झनझनाहट मेरे मन में एक नया विषाद भर देती थी।

परन्तु काम चाहे कैसा ही कठिन रहा हो, शरीर चाहे कितना ही क्लान्त रहा हो, मैंने न कभी उसकी हँसी से आभासित मुखमुद्रा में अन्तर पड़ते देखा और न कभी काम रुकते देखा। और इतने काम में भी उस अभागी का दिन द्रौपदी के चौर से होड़ लेता था। सबेरे स्नान, तुलसी-पूजा आदि में कुछ समय बिताकर ही वह अपने अंधेरे रसोईघर में पहुँचती थी; परन्तु दस बजते-बजते समुद्र की खिला-पिलाकर, उसी टाट के परदे से मुझे शाम को आने का निमन्त्रण देने के लिए स्वतन्त्र हो जाती थी। उसके बाद चौका-बर्तन, कूटना-पीसना भी समाप्त हो जाता, परन्तु

तब भी दिन का अधिक नहीं तो एक प्रहर शेष रह ही जाता था। दूकान की ओर जाने का निषेध होने के कारण वह अवकाश का समय उसी टाट के परदे के पास बिता देती थी, जहाँ से कुछ मकानों के पिछ-वाड़े और एक-दो आते-जाते व्यक्ति ही दिख सकते थे, परन्तु इतना ही उसकी चञ्चलता का ढिंढोरा पीटने के लिए पर्याप्त था।

उस १९ वर्ष की युवती की दयनीयता आज समझ पाती हूँ जिसके जीवन के सुनहरे स्वप्न गुड़ियों के घरोंदे के समान दुर्दिन की वर्षा में केवल बह ही नहीं गये, वरन् उसे इतना एकाकी छोड़ गये कि उन स्वप्नों की कथा कहना भी सम्भव न हो सका।

ऐसी दशा में उसने आठ वर्ष की बालिका को ही अपने संगीहीन हृदय की सारी ममता सौंप दी; परन्तु वह बालिका तो उसके संसार में प्रवेश करने में असमर्थ थी, इसी से उसने उसी के गुड़ियोंवाले संसार को अपनाया।

बूढ़ भी अपनी बहू के लिए ऐसा निर्दोष साथी पाकर इतने प्रसन्न हुए कि स्वयं ही बड़े आदर-यत्न से मुझे बुलाने—पहुँचाने लगे।

और मा तो उस माता-पिता-हीन विधवा बालिका की कथा सुनकर ही मुख फेरकर आँखें पोंछने लगती थीं। इसी से धीरे-धीरे मेरी कुछ नाटी गुड़िया, उसका बेडौल सिरवाला पति, उसकी एक पैर से लँगड़ी सास, बैठने में असमर्थ ननंद और हाथों के अतिरिक्त सब प्रकार से आकारहीन दोनों बच्चे सब एक-एक कर भाभी की कोठरी में जा बैठे। इतना ही नहीं उनकी चक्की से लेकर गहनों तक सारी गृहस्थी और डोली से लेकर रेल तक सब सवारियाँ उसी खँडहर को बसाने लगीं :

भाभी को तो सफ़ेद ओढ़नी और काला लहंगा या काली ओढ़नी और सफ़ेद बूटीदार कत्थई लहंगा पहने हुए मने देखा था; पर उसकी ननंद के लिए हर तीज-त्यौहार पर बड़े सुन्दर रंगीन कपड़े बनते थे। कुछ भाभी की बटोरी हुई कतरन से और कुछ अपने घर से लाये हुए कपड़ों से गुड़ियों की लज्जा-निवारण का सुचारु प्रबन्ध किया जाता था। भाभी घाँघरा,

काँचली आदि अपने वस्त्र सीना जानती थी, अतः मेरी गुड़िया मारवाड़िन की तरह शृंगार करती थी; मैंने स्कूल में ढीला पैजामा और घर में कलीदार कुरता सीना सीखा था, अतः गुड़ड़ा पूरा लाला जान पड़ता था; चौकोर कपड़े के टुकड़े के बीच में छेद करके वही बच्चों के गले में डाल दिया जाता था, अतः वे किसी आदिम युग की सन्तान-से लगते थे।

(भाभी के लिए काला अक्षर भेंस बराबर था; इसलिए उस पर मेरी विद्वत्ता की धाक भी सहज ही जम गई थी। प्रायः सभी पशुओं के अँगरेजी नाम बताकर और तस्वीरोंवाली किताब से अँगरेजी की कविता बड़े राग से पढ़कर मैं उसे विस्मित कर चुकी थी, हिन्दी की पुस्तक से 'माता का हृदय', 'भाई का प्रेम' आदि कहानियाँ सुनाकर उसकी आँखें गीली कर चुकी थी और अपने मामा को चिट्ठी लिखने की बात कहकर उसके मन में बीकानेर के निकट किसी गाँव में रहनेवाली बुआ की स्मृति जगा चुकी थी।) वह प्रायः लम्बी साँस लेकर कहती—'पता नहीं जानती, नहीं तो तुमसे एक चिट्ठी लिखवाकर डाल देती।'

सबसे कठिन दिन तब आते थे जब बूढ़ सेठ की सौभाग्यवती पुत्री अपने मँहूर आती थी। उसके चले जाने के बाद भाभी के दुर्बल गोरे हाथों पर जलने के लम्बे काले निशान और पैरों पर नीले दाग रह जाते थे, पर उनके सम्बन्ध में कुछ पूछते ही वह गुड़िया की किसी समस्या में मेरा मन अटका देती थी।

उन्हीं दिनों स्कूल में कशीदा काढ़ना सीखकर मैंने अपनी धानी रंग की साड़ी में बड़े-बड़े नीले फूल काढ़े। भाभी को रंगीन कपड़े बहुत भाते थे इसी से उसे देखकर वह ऐसी विस्मय-विमूग्ध रह गई, मानो कोई सुन्दर चित्र देख रही हो।

मैंने क्यों मैं से हठ करके बैसा ही कपड़ा मँगवाया और क्यों किसी को बिना बताये हुए छिपा-छिपाकर उस ओढ़नी पर नीले फूल काढ़ना आरम्भ किया, यह आज भी समझ में नहीं आता।

वह बेचारी बार-बार बुलवा भेजती, नये-नये गुड़ियों के कपड़े दिखाती,

नये-नये घरोंबे बनाती; पर फिर भी मुझे अधिक समय तक ठहराने में असमर्थ होकर बड़ी निराश और करुण मुद्रा से द्वार तक पहुँचा जाती।

उस दिन की बात तो मेरी स्मृति में गर्म लोहे से लिखी जान पड़ती है, जब उस ओढ़नी को चुपचाप छिपाकर मैं भाभी को आश्चर्य में डालने गई। शायद सावन की तीज थी क्योंकि स्कूल के सीधे-सादे बिना बमक-दमकवाले कपड़ों के स्थान में मुझे गोटा लगी हुई लहरिये की साड़ी पहनने को मिली थी और सबेरे पढ़ने बैठने की बात न कहकर मा मे हाथों में मेंहदी भी लगा दी थी।

वह दालान में बरवाजे की ओर पीठ किये बैठी, कुछ बीन रही थी, इसी से जब दबे पाँव जाकर मैंने उस ओढ़नी को खोलकर उसके सिर पर डाल दिया तो वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। रंगों पर उसके प्राण जाते ही थे, उस पर मैंने गुड़ियों और खिलौनों से दूर अकेले बैठ-बैठकर अपने नन्हें हाथों से उसके लिए उतनी लम्बी-झोड़ी ओढ़नी काढ़ी थी। आश्चर्य नहीं कि वह क्षण भर के लिए अपनी उस स्थिति को भूल गई, जिसमें ऐसे रंगीन वस्त्र वर्जित थे और नये खिलौने से प्रसन्न बालिका से समान एक बेमुअपन में उसे ओढ़, मेरी ठुड्डी पकड़कर खिलखिला पड़ी।

—और जब किसी का विस्मय-विजड़ित 'धींदनी' (बहू) सुनकर उसकी मुधि लौटी तब हतबुद्धि से ससुर माँ को गिरने से बचने के लिए बौखट का सहारा ले रहे थे और क्रोध से जलने अंगारे-जैसी आँखोंवाली, खुली तलवार-सी कठोर ननब देहली से आगे पैर बढ़ा चुकी थी। अचश्य ही तीज रही होगी क्योंकि वृद्ध स्वयं पुत्री को लेने गये थे।

इसके उपरान्त जो हुआ वह तो स्मृति के लिए भी अधिक करुण है। क्रूरता का वैसा प्रदर्शन मैंने फिर कभी नहीं देखा। बचाने का कोई उपाय न देखकर ही कदाचित् मैंने जोर-जोर से रोना आरम्भ किया, परन्तु बच तो वह तब सकी जब मन से ही नहीं शरीर से भी बेसुध हो गई।

वृद्ध मुझे कैसे घर पहुँचा गये, घबराहट से मैं कितने दिन ज्वर में पड़ी रही, यह सब तो गहरे कुहरे में छिप गया है। परन्तु बहुत दिनों के

बाद जब मैंने फिर उसे देखा तब उन बचपन-भरी आँखों में विषाद का गाढ़ा रंग चढ़ चुका था और वे ओठ जिन पर किसी दिन हँसी छिपी-सी जान पड़ती थी, ऐसे काँपते थे, मानो भीतर का क्रन्दन रोकने के प्रयास से थक गये हों। उस एक घटना से बालिका प्रौढ़ हो गई थी और युवती बृद्धा।

फिर तो हम लोग इन्दौर से चले ही आये—और एक-एक करके अनेक वर्ष बीत जाने पर ही मैं इस योग्य हो सकी कि उसकी कुछ खोज-खबर ले सकूँ। पता लगा कि छोटी दूकान के स्थान में एक विशाल अट्टालिका वर्षों पहले खड़ी हो चुकी है। पता चला कि वधू की रक्षा का भार संसार को सौंपकर वृद्ध कभी के बिदा हो चुके हैं, परन्तु कठोर संसार ने उसकी कंसी रक्षा की, यह आज तक अज्ञात है। इतने बड़े मानव-समुद्र में उस छोटे बुद्बुद की क्या स्थिति है, यह मैं जानती हूँ, परन्तु तब भी कभी-कभी मन चाहता है कि बचपन में जिसने अपने जीवन के सनेपन को भूलकर, मेरी गुड़ियों की गृहस्थी बसाई थी, खिलौनों का संसार सजाया था, उसे एक बार पा सकती !

आज भी जब कोई मेरे रंगीन कपड़ों के प्रति विरक्त के सम्बन्ध में कौतुक भरा प्रश्न कर बैठता है तो वह अतीत फिर वर्तमान होने लगता है। कोई किस प्रकार समझे कि रंगीन कपड़ों में जो मुख धीरे-धीरे स्पष्ट होने लगता है वह कितना करुण और कितना मुर्झाया हुआ है। कभी-कभी तो वह मुख मेरे सामने आनेवाले सभी करुण क्लान्त मुखों में प्रतिबिम्बित होकर मुझे उनके साथ एक अटूट बन्धन में बाँध देता है।

प्रायः सोचती हूँ—जब वृद्ध ने कभी न खोलने के लिए आँखें मूँद ली होंगी तब वह, जिसे उन्होंने संसार की ओर देखने का अधिकार ही नहीं दिया था, कहाँ गई होगी !

और तब—तब न जाने किस अनिष्ट सम्भावना से, न जाने किस अज्ञात प्रश्न के उत्तर में मेरे मन की सारी ममता आर्त-क्रन्दन कर उठती है नहीं... नहीं...।

१६—तीन बच्चे

[श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान]

मेरे बच्चों में से प्रत्येक ने अपने लिए एक-एक फूलों का बगीचा लगाया था। बगीचा क्या फूलों की छोटी-छोटी क्यारियाँ थीं। एक दिन सबेरे हम लोगों ने देखा कि उन क्यारियों में फूल खिल आये हैं।

बच्चे ही तो ठहरे! हर एक को अपनी-अपनी क्यारी के फूल अधिक सुन्दर जान पड़े—और इसी बात पर उन लोगों में लड़ाई छिड़ गई। हर एक का कहना था कि उसकी क्यारी के फूल सबसे अधिक सुन्दर हैं।

बात बढ़ते-बढ़ते फूलों से हटकर दूसरे ही क्षेत्र में जा पहुँची। एक हिटलर बना, तो दूसरा मुसोलिनी और तीसरा स्टालिन। और मुझे इन तीनों की मा बनने का सौभाग्य, एक साथ ही, प्राप्त हो गया।

संग्राम में विषले वाक्यों का प्रयोग होते सुनकर, मुझे चौंके का काम छोड़, बगीचे की ओर जाना पड़ा। मुझे देखते ही सब एक साथ, अपने-अपने पक्ष का समर्थन कर, न्याय की बुहाई देने लगे। न्याय का कार्य उतना आसान न था, जितना एक अदालत के जज का होता है। जज के पथ-प्रदर्शन के लिए क़ानून होते हैं और नज़ीरें भी। चाहे लकीर की फ़क़ीरी में अन्याय ही क्यों न हो जाय, पर उसका मार्ग स्पष्ट रहता है। मेरे सामने न क़ानून था, न नज़ीर—फिर भी मुझे यह लड़ाई समाप्त करनी थी—और न्याय-पूर्वक !

मैं सोच ही रही थी कि निर्णय के लिए ज़ूरी क्यों न नियत कर दिये जायें कि इतने में ही बच्चों के काका जी आते दिखे। चीख़ना-चिल्लाना तो दूर उन्हें किसी का पंचम स्वर के ऊपर बोलना तक पसंद

नहीं है। बच्चों को लड़ते देखकर बोले—“अच्छा, यह लड़ाई किस लिए है? यदि तुम लोग लड़े-भिड़े तो मैं तुम्हारी मा को सत्याग्रह न करने दूंगा।”

मेरे हिटलर-मुसोलिनी शान्त हो गये। मा के बिना जिन्हें स्कूल जाने तक में कष्ट होता है; मा के बिना जिनका एक भी काम नहीं हो सकता; वही मेरे बच्चे जो से चाहते थे कि मैं सत्याग्रह करूँ और जेल जाऊँ।

अब मैंने उनसे पूछा कि कोई शिकायत तो नहीं है, तो सब एक स्वर से बोले उठे—“नहीं मा, सभी क्यारियों के पूल बहुत सुन्दर हैं। तुम सत्याग्रह करी और जल्दी जेल जाओ।”

हम सब भीतर जाने को उठ ही रहे थे कि बाहर से गाने की आवाज आई—गाना कोरस में था और स्वर था बच्चों का—सा—

“भगवान् दया करना इतनी,
मोरी नैया को पार लगा देना।”

और अब तो हम सभी बरबारे की ओर बौड़ पड़े। इसी समय दूसरा पद सुनाई पड़ा—“मैं तो डूबत हूँ सभधार पड़ी, मोरी बैयाँ पकड़ के उठा लेना।”

बाहर आकर देखा—तीन बच्चे थे—बो लड़कियाँ और एक लड़का। बड़ी लड़की होगी दस बरस की; छोटी आठ और सात के बीच में थी और लड़का, वह बड़ी की गोद में ही था—कोई पाँच साल का। हम लोगों को देखते ही उन्होंने गाना बन्द कर दिया। लड़के को गोद से उतारकर, बड़ी ने जमीन से माथा टँककर, हमें प्रणाम किया। उसकी देखा-देखी छोटी लड़की और लड़के ने भी जमीन से माथा टेका और तीनों ने अपने चीथड़ों में छिपे हुए पेट को दिखाकर यह बतलाया कि वे भूखे हैं। बड़ी के हाथ में एक भोली धी और छोटी के हाथ में एक टोम का डिब्बा। उन्होंने एक बार भोली की ओर देखा जो बिलकुल खाली जान पड़ती थी; फिर हमारी ओर याचना की दृष्टि से देखने लगे।

मैंने उनसे कहा—“तुम गाती तो बहुत अच्छा हो, और भी कोई गाने जानती हो?”

बड़ी के बोलने के पहले ही छोटी बोल उठी—“हमें भजन भी भारी है; बड़ी मालकिन!” और आदेश पाये बिना ही वे दोनों गाने लगीं—

“कमर कम ले रे बिलोची, तेरे संग चलूंगी।

तेरे संग चलूंगी रे तेरे साथ चलूंगी।

रामर कस ले.....।

मेरे साथ चलेगी तो तेरी अम्मा लड़ेगी.....।”

हम लोगों की हँसी अब दबाये न दबी। अम्मा के लड़ने की बात सुनते ही वह फूट पड़ी। वे सभी शर्माकर चुप हो गये। उनकी दृष्टि से ऐसा जान पड़ता था कि वे किसी अज्ञात भूल से दुखी हो गये हैं। मैंने हँसी रोककर, आश्वासन के स्वर में कहा—“बहुत अच्छा गाया।” मेरी बात सुनते ही वे फिर बैठकर लगे ज़मीन से माथा टेकने। मैंने पूछा—“तुम्हें क्या चाहिए—पका हुआ खाना या कच्चा?”

बड़ी ने फिर ज़मीन से माथा टेककर कहा—“कुछ भी खाने को चाहिए, बड़ी मालकिन! कल से कुछ नहीं खाया है।” मैंने बच्चों से कहा कि इन्हें दो-दो पूरियाँ लाकर दे दो,—और मैं अन्वर चली गई।

बच्चों ने इन्हें कितनी-कितनी पूरियाँ दीं, यह तो मैं नहीं कह सकती पर जब चोके में जाकर देखा तो न डिब्बे में एक भी पूरी थी और न कटोरे में तरकारी।

दूसरे दिन हम लोग सुबह की चाय पीकर उठने ही वाले थे कि वे बाल-गर्भयों फिर आ पहुँचे। हमें, कोमल स्वर में, सुताई पड़ा—

“साँवरिया हमें भूल गयो, सखि, साँवरिया।

बिंदरावन की कुँज गलिन में बाज रही है बाँसुरिया।

हमें भूल गयो, सखि, साँवरिया॥’

मैंने अपने बच्चों से कहा—“कल तुमने उन्हें ख़ूब पूरियाँ खिलाई थीं न ! अब वे सब फिर आगये। जैसे उनके लिए यहाँ रोज़ ही पूरियाँ धरी हैं !”

“धरी तो हैं, मा !” एक साथ ही बच्चों के मुँह से निकला और सबके हाथ एक साथ ही पूरी के डिब्बे की ओर बढ़े।

मैंने उन्हें रोकते हुए कहा—“ठहरो, ठहरो ! रोज़-रोज़ उन्हें पूरियाँ खिलाओगे तो वे दर्वाज़ा ही न छोड़ेंगे। उन्हें चावल या आटा देकर जाने को कह दो।”

एक बच्चा बोल उठा—“बिचारे छोटे-छोटे बच्चे; न जाने उनकी मा भी है या नहीं। वे भला कहाँ पकायेंगे ?”

दूसरा ताने के स्वर में बोला—“इससे तो यही अच्छा है कि उन्हें कुछ भी न दिया जाय।”

सबसे छोटा बोला—“तुम भी मा होकर ऐसा क्यों कहती हो, मा ! उन बिचारों को भी भूख लगी होगी। हमारे हिस्से की ही दे दो।”

लड़की सबमें समझदार थी। उसकी दृष्टि यही चाह रही थी कि मा का इशारा भर मिले और पूरियों का डिब्बा ले जाकर वह उन बच्चों को खिला दे।

मैंने उदासीनता से कहा—“पूरियाँ ही दे दो, पर शाम को फिर तुम्हारे लिए नाश्ता बनाना पड़ेगा।”

“मा, हम शाम को नाश्ता नहीं करेंगे”, एक स्वर में एक साथ बच्चों ने कहा और हाथ में पूरियाँ लिए हुए दरवाज़े की ओर दौड़ पड़े।

चौके का काम निपटाकर, मैं भी बाहर गई। देखा वे तीनों बड़े मजे में पूरियाँ खा रहे थे और मेरे बच्चे भी बड़े उत्साह से उन्हें परस रहे थे। जब वे खा-पीकर उठे तो मैंने कहा—“देखो भाई ! तुमने पूरियाँ तो खा लीं। अब बिना गाना सुनाये न जाने पाओगी।” उन्होंने कृतज्ञता-पूर्वक माथा ज़मीन पर टेककर गाना शुरू किया—

“अब न रहूँगी कान्हू, तोरी नगरिया।

हाट-बाट मोरी गैल न छोड़े,
पनघट पर मोरी फोरे गगरिया।

अब न रहूंगी.....॥”

गाना गा चुकने के बाद उन्होंने फिर जमीन से माथा टेका, जैसे हमें आशीर्वाद देकर जाने के लिए उद्यत हों, पर मैंने उन्हें रोककर पूछा—“क्या तुम तीनों भाई-बहन हो?”

“हां, बड़ी मालकिन”—बड़ी लड़की ने कहा।

मैंने पूछा—“तुम्हारा नाम क्या है?” अपना नाम उमने ‘ईठी’, छोटी बहन का नाम ‘सीठी’ और भाई का नाम ‘प्रेमा’ बतलाया।

‘ईठी, सीठी, प्रेमा’ उनका नाम दुहराते हुए मैंने पूछा—“क्या तुम्हारे मा-बाप कोई नहीं हैं? तुम कल भी अकेले आये थे, आज भी।”

छोटी लड़की बड़ी तत्परता से बोल उठी—“मा भी है और बाप भी है, बड़ी मालकिन;—हमारे सब कोई हैं।”

“कहाँ है तुम्हारे मा-बाप जो तुम्हें इस तरह अकेले फिरने को भेज देते हैं?”

“बाप अमरावती में है और मा.....”

“अमरावती में तुम्हारा बाप क्या करता है?” मेरा छोटा लड़का बीच में ही पूछ बैठ।

“जेल में है, छोटे बाबू!” बड़ी लड़की ने उत्तर दिया।

“जेल में है? मैंने कुछ अनास्था से पूछा—“जेल क्यों हुई उसे?”

लड़की बोली—“वह दारू जो पीता था! और दारू पीकर वह चुप भी नहीं रहता था। दंगा करता था, मा को मारता था, गाली देता था और इसी लिए तो.....(लड़की आँख उठाकर मेरी ओर देखते हुए बोली) बड़ी मालकिन, पुलिसवालों ने उसे पकड़ा; और सब लोग कहते हैं पुलिसवालों ने ठीक किया।”

“और तुम्हारी मा, वह अब कहाँ है?” मैंने पूछा।

लड़की बोली—“मा?.....वह भी तो जेल में है। और लती के

साथ हमारा सबसे छोटा भाई भी है। वह तो (अपने भाई की ओर उंगली से दिखाकर लड़की ने कहा) प्रेमा से भी छोटा है। वह रोता नहीं। इससे अच्छा है।”

“बेचारे बच्चे !” मेरे मुंह से निकल पड़ा—“मा-बाप दोनों जेल में और ये अनाथ सड़क पर भीख माँगते फिरते हैं।”

मैंने फिर पूछा—“तुम्हारी मा ने क्या किया था ?”

लड़की बोली—“हमारी मा ने पुलिसवाले को मारा था—जिसने हमारे बाप को पकड़ा था न, उसी को। और फिर वे मा को भी पकड़ ले गये। बड़े बुरे होते हैं पुलिसवाले—हमारी मा को भी ले गये। मा के बिना हमको भी बुरा लगता है पर यह प्रेमा तो रात-दिन रोता ही रहता है।”

मैंने लड़के की ओर देखा—बेचारा छोटा-सा बच्चा; मुश्किल से पाँच बरस का; फटे चीथड़े में लपटा हुआ; सिर में महीनों तेल का नाम नहीं; रुखे बिखरे बाल; न जाने कब से नहाया नहीं था; शरीर पर एक मेल की तह-सी जम गई थी; गालों पर आँसुओं के निशान बने हुए थे; आँसुओं के साथ-साथ उस स्थान की मैल जो धुल गई थी। मुझे उस बच्चे पर बड़ी दया आई। मैंने उस लड़की से पूछा—“तुम लोग अपनी मा से जेल में मिलने नहीं जातीं ?”

छोटी बोल उठी—“जाती हैं बड़ी मालकिन।” बड़ी ने कहा—तीन महीने में एक बार मुलाकात होती है। एक बार मुलाकात करने गये थे; दूसरी बार तीन महीने के बाद जब हम लोग गये तब मालूम हुआ कि मा को यहाँ के जेल में भेज दिया है। तो हम लोग सब काली मा के साथ यहाँ चले आये। काली मा भी भीख माँगती है।”

“तुम लोग रात को कहाँ रहती हो ? सोती कहाँ हो ? तुम्हें डर नहीं लगता ?” मैंने पूछा।

बड़ी लड़की ने कहा—“जेल के पास एक ताला है। हम लोग रात

को वहीं पुल के नीचे मा की बातें करते-करते सो जाते हैं। कभी-कभी कालो मा भी आ जाती हैं, पर वह रोज नहीं आती।”

“मा की सजा कितने दिन की है?”

“दो साल की” बड़ी लड़की ने कहा, “हम रोज जेल को देखते हैं। हमारी मा वहीं तो हैं। जब मा छूटेगी हम उसको साथ लेकर देश जायेंगे।” एक प्रकार की खुशी से बालिका पुष्कित हो उठी। अपनी मा को लेकर जैसे वह सचमुच देश जाने की तैयारी कर रही हो।

मैंने लड़की से पूछा—“तुम लोग नहानी हो कभी?”

संकोच से बड़ी लड़की चुप रही। छोटी ने कहा—“हमारे पास दूसरे कपड़े नहीं हैं त।”

मेरा इशारा पाते ही मेरे बच्चों ने अपने पुराने कपड़ों में से, उनके पहनने के लिए, बहुत से कपड़े ला दिये।

मेरा चित्त उदास हो गया। मैं कमरे में बैठकर कुछ सोचने लगी और वे बच्चे कपड़े लेकर खुशी-खुशी चले गये।

कुछ दूर से गाने की आवाज़ आई—

“मैं तो डूबत हूँ मझधार पड़ी,

सोची बैंगों पकड़ के उठा लेना।”

बहुत से सुन्दर-सुन्दर पद पढ़े, लिखे और सुने थे। पर स्वर और आत्मा का ऐसा संयोग तो कहीं नहीं देखा था, शब्द और वस्तु का ऐसा मेल तो कभी चित्रित नहीं हुआ।

मैं उन्हें बुलाने के लिए भपट्टी, परन्तु तब तक वे दूर निकल गये थे।

इस घटना के दूसरे ही दिन, मैं भी युद्ध-विरोधी सत्याग्रह करके, जेल की अतिथि बनी, मेरे और बच्चों ने तो हँसी-खुशी से बिप्राई दी पर सबसे छोटी-मिनू बहुत छोटी होने के कारण, मुझे छोड़कर घर में न रह सकती थी। अतएव वह मेरे साथ ही गई।

उस समय जबलपुर जेल में कोई अन्य राज-बन्दिनी न थी। अकेली होने के कारण मैं अस्पताल में रखी गई। मेरी सेवा के लिए दो साधारण क़ैदी स्त्रियाँ रात में मेरे साथ रहती थीं। दिन में सब लोग एक साथ रह सकते थे।

क़ैदखाने की दुनिया भी एक विचित्र ही वस्तु है।

यह कौन है? चोर!

यह? यह चरस बेचती थी और इसने अपने नवजात शिशु की हत्या करने की चेष्टा की थी, पर मा होकर यह हत्या कर सकती थी—इसका मुझे विश्वास न हुआ।

और यह लड़की? यह तो अभी बहुत कम उमर है! इसने क्या किया था? इसने अपने पति और सास को ज़हर दिया था!! मैं काँप उठी। विधाता! क्या यह सचमुच स्त्रियाँ हैं? क्या तुम्हारी ही आज्ञा से इनका भी सृजन हुआ था?

किन्तु, इसी समय जैसे कोई अन्दर से बोल उठा—‘यह तसबीर का एक ही पहलू है—इसकी दूसरी ओर भी देखो! सम्भव है ये निर्बोध हों; सम्भव है ये देवियाँ हों।’

मेरी सेवा के लिए जो दो औरतें तैनात थीं, उनमें से एक तो अल्हड़-सी थी, जिसे कुछ काम-काज न आता था पर दूसरी समझदार थी। वह प्रौढ़ा थी। उसकी गोद में भी एक बच्चा था। वह बड़ी फ़िक्र से सब काम करती थी। वह अधिकतर चुप रहती थी, जैसे सदा मन ही मन कुछ सोचा करती हो। मिनू को तो उसने इस प्रकार हिला लिया था जैसे वह उसी की बच्ची हो। उसका ख़ुब का बच्चा पाँव-पाँव चलता और मिनू चलती उसकी गोदी पर। वह पानी भरती तो मिनू उसके साथ होती; दाल बलती तो मिनू उसके साथ और बरतन मलती तो मिनू भी उसके साथ छोटी-छोटी कटोरियाँ और गिलास मलती दीख पड़ती। अन्त को बात इतनी बढ़ी कि वह मिनू को अपनी पीठ से बांधकर भाड़ू बने लगी। उसका नाम था—लक्ष्मिया।

लखिया और मिनू के इस स्नेह-सम्बन्ध से, लखिया के बच्चे को जो अभाव ज्ञात हुआ उसकी पूर्ति में उसे मिनू के फल और मिठाइयाँ दे-देकर करने लगी। वह प्रायः मेरे ही पास खेला करता। फल और मिठाइयाँ खाने से इस बच्चे को और पानी भरने, बरतन मलने तथा बर्गीचा सींचने से मिनू को थोड़े ही दिनों में स्वास्थ्य का लाभ होता दिखाई पड़ा।

मैं बहुत सोचती थी कि यह लखिया कौन है ? वह जेल क्यों आई ? एक दिन अचानक मैंने गेटून से पूछा, जिसका उत्तर मिला—“ओह, ये बड़ा खतरनाक औरत है। इसने पुलिस को मारा है—पुलिस को। पर हमने उसका दिमाग ठीक कर दिया है। आपको कोई तकलीफ तो नहीं देता ?”

अचानक मुझे उन बच्चों का खगल आगया। उनकी मा भी तो पुलिस को मारने के कारण जेल भेजी गई थी और उसके साथ भी तो एक छोटा बच्चा था। पूछना मैंने कई बार चाहा पर लखिया की गरभीर और उदास मुद्रा देखकर, हिम्मत मेरी एक बार भी न हुई।

एक दिन रात को खूब पानी बरसा। खूब दहाड़-दहाड़ कर बादल गरजे और कड़क-कड़ककर बिजली चमकी। मुझे अपने बच्चों की याद आगई। छोटा लड़का डरा होगा। दूसरे फ्लॉग पर सोने पर भी वह बादलों के गरजते ही मेरे पास आकर सो जाता था। इसके साथ मुझे उन तीनों बच्चों की भी याद आई जो बिचारे पुल के नीचे सोते थे। कहीं.....आगे सोचने की मेरी हिम्मत न पड़ी। मैंने प्रार्थना की “हे ईश्वर सब माओं के बच्चों को अच्छी तरह रख और सबके बाद मेरे बच्चों की भी रक्षा कर।”

जेल में मेरे पास अखबार आया करते थे। जेल की सभी क़ैदी स्त्रियाँ लड़ाई की खबरे सुनने को उत्सुक रहा करती थीं। उन्हें विश्वास था कि एक दिन ऐसा होगा जब जेल के फाटक टूट जायेंगे और अबधि

से पहले ही उनका छुटकारा हो जायगा। मैं भी उन्हें योरप की लड़ाई और भारत के सत्याग्रह की खबरें सुना दिया करती थी।

उस दिन शाम को अखबार आया और पढ़ते-पढ़ते मेरा जी धक से रह गया ! जबलपुर की ही खबर थी—

‘कल रात एकाएक पानी बरसा और खूब बरसा। जेल के पास के नाले में तीन गरीब बच्चे बह गये। उन तीनों की लाशें मिली हैं। बहुत खोज करने पर भी उनकी शिनाख्त नहीं हो सकी। दो लड़कियाँ हैं और एक लड़का। ऐसा सुना गया है कि वे गाना गाकर भीख माँगा करते थे।’

मेरे घर पर आकर गानेवाले उन तीन बच्चों का चित्र हठात् मेरी आँखों के सामने खिच गया और ऐसा जान पड़ा जैसे दूर से कोई गा रहा है—

“मैं तो डूबत हूँ मङ्गधार पड़ी,
मोरी बैयाँ पकड़ के उठा लेना।”

अखबार रखकर मैं आँसू रोकने का प्रयत्न करने लगी। अचानक मेरे मुँह से निकल गया—‘बेचारे बच्चे !’

लखिया पास ही बैठी मेरे लिए चाय तैयार कर रही थी। उसने पूछा—“क्या खबर है, बाई साहब ! अरे, उदास क्यों हो गईं ? बच्चों की याद आ रही है ?”

मैं उसे कुछ भी उत्तर न दे सकी। वह फिर बोली—“बोड़े ही दिन तो और हैं, बाई साहब ! कट ही जायेंगे। फिर बच्चे अपने बाप के साथ तो हैं; फिर क्यों करती हो।”

उसकी ओर देखने की मेरी हिम्मत नहीं थी पर मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे उसने बात खतम होते न होते एक गहरी साँस ली और आँखों के आँसू पोछ लिये। मैंने अपनी सब शक्ति संचित करके उससे पूछा—“लखिया तेरे और बच्चे हैं, या यही एक है ?”

आँखों में आँसू और ओंठों पर एक क्षीण मुस्कराहट के साथ वह

बोली—“एक ही क्यों बाई साहब, (मेरी बच्ची की ओर इशारा करके)
यह बिटिया भी तो है।”

मंने कहा—“ये तो जेल के भीतर हैं। जेल के बाहर कितने हैं?”

लखिया एक गहरी सांस लेकर बोली—“जेल के बाहर बाई
साहब ! वो तो भगवान् के हैं—अपने कैसे कहें?”

और इसके बाद वह अखबार की खबर पूछती ही रह गई पर मं उसे
कुछ भी न बतला सकी।
